ीवन का द्वार

माण सागर

दिव्य जीवन का द्वार

लेखक
मुनि प्रमाण सागर

आवरण :
संतोष जडिया
102/3 एल.आई.जी. कॉलोनी
इंदौर - 452008
फोन : 557928
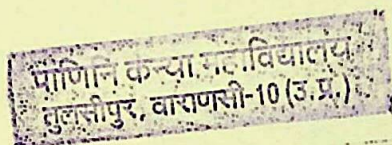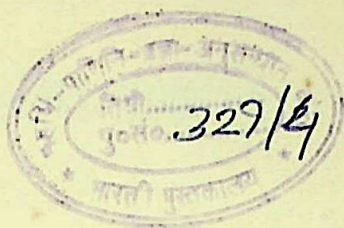
दिव्य जीवन का द्वार
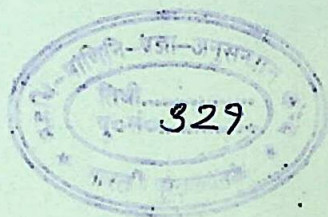
दिव्य जीवन का द्वार

प्रवचन संग्रह

प्रवचन अनुकंपा

१०८ मुनि श्री प्रमाणसागर जी

दिव्य जीवन का द्वार
प्रवचनकार - मुनिश्री प्रमाण सागर महाराज

संकलन - श्री विजय मोदी, श्रीमती रश्मि मोदी, कु. कल्पना जैन

सहयोग - शशांक जैन, विजय जैन
मुद्रण सहयोग - ब्र. प्रदीप शास्त्री, पीयुष

प्रथम संस्करण : १९९८
प्रतियां : २२००

प्रकाशक
श्री अरविन्द कुमार जैन
बाहुबली कालोनी सागर, © 28275

मूल्य - १५/-

लेजर कम्पोजिंग
एक्टिव कम्प्यूटर्स, सागर, © 25445

आवरण- संतोष जडिया
छायांकन- प्रदीप जैन अंकुर स्टुडियो सागर

प्राप्ति स्थान -
1- आनंद सिंघई, सिंघई पेपर मार्ट, कमानिया गेट, जबलपुर © 345931 (S), 22620 (R)
2- जय स्टेशनरी मारवाडी रोड, भोपाल © 543922 (S), 542922 (R)
3- अरविन्द कुमार जैन बाहुबली कालोनी, सागर © 28275
4- बाबूलाल सुमत कुमार अरवाई वाले, अशोक नगर © (07543), 22620(R) 22615 (S)

समर्पण

संत शिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के परम शिष्य मुनि श्री समता सागर जी, मुनि श्री प्रमाण सागर जी एवं ऐलक श्री निश्चयसागर जी महाराज के सानिध्य से सागर की धरती धन्य हो उठी है। मुनि संघ के सागर प्रवास और ऐतिहासिक चातुर्मास ने पूरे सागर के जनमानस को उद्वेलित कर रखा है। अनेक रचनात्मक उपलब्धियों एवं प्रभावना पूर्ण ढंग से सम्पन्न यह चातुर्मास सागर समाज के जनमानस पर अपना स्थायी असर बनाये रखा है। सत्संग की गरिमा और महिमा से अभिभूत होने का यह स्वर्ण अवसर विरलों को ही मिलता है।

इसी ऐतिहासिक चातुर्मास के मध्य मुझे मुनिश्री प्रमाणसागर जी के निकट रहने का सुअवसर मिला। मुनिश्री का गहन-गंभीर ज्ञान, सहज-शान्त वृत्ति और वीतराग-निस्पृह चर्या ने मुझे भीतर तक प्रभावित किया है। मुनि श्री की वाणी में ओज है, लालित्य है और है अद्भुत आकर्षण। आपके मुख से निकलने वाला एक-एक शब्द श्रोता समुदाय पर मंत्र सा जादुई असर छोड़ता है। यही कारण है कि हजारों हजार श्रोताओं की भीड़ आपके प्रवचन सुनने आतुर रहती है। पूज्य मुनिश्री के सामीप्य से सागर का हर वर्ग आज अपने आपको धन्य महसूस कर रहा है।

प्रस्तुत कृति मुनिश्री के तेरह प्रवचनों का संग्रह है। यह प्रवचन अनुकम्पा 'दिव्य प्रवचन माला' के अन्तर्गत अ[illegible]र कालोनी के सुधी श्रावकों के मध्य हुई थी। ये सभी प्रवचन ''पण्डित आशाधरजी'' द्वारा रचित ''सागार धर्मामृत'' के निम्न श्लोक पर आधारित है -

न्यायो पात्त धनोयजन् गुणगुरुन्सद्गीस्त्रिवर्गभजन्
नन्योन्याणुगुणं तदर्हगृहणी स्थानालयो ह्रीमय:
युक्ताहारविहार आर्य समिति प्राज्ञ: कृतज्ञो वशी
श्रृण्वन धर्म कथां दयालु रघभि: सागारधर्मं चरेत्

मानवीय मूल्यों पर केन्द्रित मुनिश्री के ये प्रवचन व्यक्ति को एक नयी दिशा देते हैं। इन

प्रवचनों में मौलिकता है, प्रवाह है और चिन्तन की गहराई है। गृहस्थ को सदगृहस्थ बनाने की प्रेरणा है। अनेक लोगों की यह भावना थी कि इन प्रवचनों को संगृहीत कर प्रकाशित कराना चाहिए ताकि मुनिश्री के इन मौलिक विचारों से सभी जन लाभान्वित हो सकें। मुनिश्री से बार-बार आग्रह करने पर उन्होंने इसके प्रकाशन का आशीष प्रदान कर मुझे अनुगृहीत किया है। इसके लिए मैं मुनिश्री के प्रति कृतज्ञ हूँ।

यह कृति अब ''दिव्य जीवन का द्वार'' के नाम से प्रकाशित हो रही है। मुझे विश्वास है यह कृति व्यक्ति के दिव्य जीवन का द्वार बनेंगी। इसी आशा के साथ पूज्य मुनिश्री के चरणों में अपना नमोस्तु निवेदित करता हुआ मैं इसे पाठकों को सौंप रहा हूँ।

गुरु चरणों का अनुरागी
अरविन्द कुमार जैन
बाहुबली कालोनी सागर
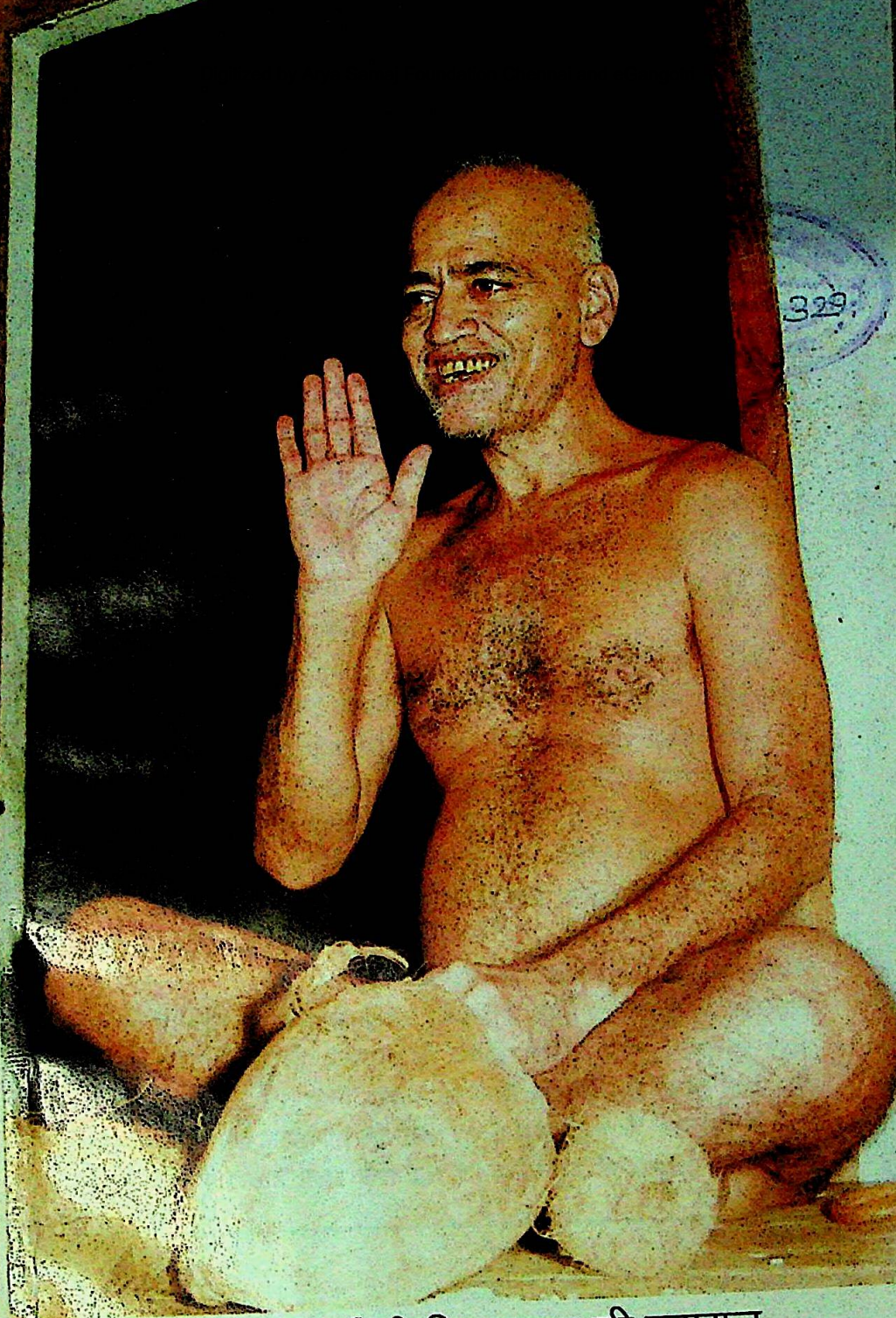
१०८ आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज

अनुभूतियों का चिन्तन

प्राचीन काल से ही वक्ता और श्रोता की परम्परा हमारी संस्कृति की एक प्राणवान चेतना रही है। तपोवन की संस्कृति में पनपी, यह अभिव्यक्ति शैली ही कालांतर में प्रवचन परम्परा में ढ़ल कर विख्यात हुई और लोक जीवन में प्रतिष्ठा पाई। यही आगे चलकर गुरुशिष्य के पुनीत सम्वन्धों की उद्भावक भी बनी। गुरु अपनी विवेक छाया में अध्यापन कराता हुआ, गुरुकुल में संस्कारों का प्रणेता बना। शिष्य श्रोता का प्रबुद्ध रूप बनकर ऋषि की मंत्र वाणी को अपने में आत्मसात करता हुआ संस्कारों का संवाहक बना। गुरु शिष्य के इन्हीं पावन सम्बन्धों में परम्पराओं का नवीनीकरण और मेधा का परिष्करण हुआ और चेतना ने प्रतिष्ठा पाई। युग पीढ़ी में जीवन मूल्यों का निर्माण हुआ और संस्कृति का बीज पनपा। यह हमारी आध्यात्मिक चेतना का विलक्षण पक्ष है जिसमें 'श्रुतियों' और 'स्मृतियों' की रचना हुई और 'पुराणों' की परिकल्पना लोककल्याण की नियामक हुई।

कथा, दृष्टांत, प्रबंध और उद्धरण इत्यादि इस शैली के महत्वपूर्ण अंग बने जिनके माध्यम से वक्ता ने जीवन के विविध गंभीर तथ्यों की सहज व्याख्या कर श्रोता की बुद्धि को विवेक की ओर प्रवृत्त किया। गुरु शिष्यों की तरूणाई को निखारता, तराशता जीवन को नवीन दिशा देता, मूल्यों का प्रणेता बना। हमारी जीवन शैली की यह अनूठी प्रवृत्ति ही राष्ट्रीय अस्मिता की अवधारणा बनी। जिसने मातृभूमि के प्रति चैतन्य जाग्रत किया। लोक जीवन को मुखर बनाया और **"आत्मनो मोक्षार्थ जगद्धिताय च"** के सिद्धांत को चरितार्थ किया।

इसी गुरु शिष्य परम्परा और संतत्त्व की दीक्षा के अन्यतम स्वरूप हैं, मुनि श्री प्रमाणसागर जी। जिन्होंने अपने दीक्षा गुरु की क्रांतिकारी चेतना और वाणी की प्रखरता को अपने भीतर उतारा, अनुभूत किया, आत्मसात किया और अपने संतत्त्व की निधि बनाकर उसे व्यक्त किया। इस तरुण संत ने उस शक्तिपात को पहचाना जो गुरु सहज ही, अनजाने में अपने शिष्यों को देकर उन्हें प्रखर बना देता है। अपने गुरु विद्यासागर की तपसिद्धि

की छाया में तरुण मुनि ने अपने को पहचाना, भीतर मुड़कर देखा, आत्म प्रक्षालन किया और अपनी प्रवचन वाणी से लोकजीवन से पहचान बनाता चला। एक वीतरागी सन्यासी की भांति लोक से संलग्न हुआ और अपने गुरु के मंतव्य, लोक चेतना के जागरण में संलग्न रहकर क्रांति की वाणी का उद्भावक बना। संत कमल के फूल की भांति लोक जीवन के वारिधि में रहता है, संतरण करता है, डुबकियाँ लगाता है, किन्तु डूबता नहीं। यही इस सदी के प्रखर क्रांतिचेता आचार्य विद्यासागर का मंत्र घोष है। शंख-नाद और सिंह नाद! जिसे मुनि प्रमाणसागर ने साकार किया।

ये प्रवचन संकलन इसी की अभिव्यक्ति है। प्रतिफलन है, आत्म मंथन और चिंतन, मनन का। इनका अपना अलग वैशिष्ट्य है। मुनि श्री की व्यक्ति चेतना की अपनी निजता ही इनका प्राण बिन्दु है। दरअसल, साधु की निजता ही उसकी समूची पूंजी होती है। श्री प्रमाणसागर जी के इन प्रवचनों में इसी निजता के दर्शन होते हैं। शब्द-शब्द में उनकी क्रांति चेतना का प्रतिबिम्बन है; जो प्रवचन के कलेवर में श्रोता को संलग्न कर निरंतर चैतन्य बनाए रहते हैं। आचार्य की दीक्षा चेतना में तरुण तपस्वी प्रमाणसागर ने व्यक्ति वोध से युग बोध तक की जो अस्मिता यात्रा की है, उसी का प्रतिफलन इन शब्द ध्वनियों में अनुगुंजित है, तरुणाई की ऊर्जा और निष्ठा की प्रखरता बनकर और प्रभावी इतना कि शब्द अंतर को भेदते हुए हमारे मन को आंदोलित कर एक दिव्य चेतना दे देते हैं।

दरअसल, संकलित शीर्षक न तो निबंध है, न लेख और न गद्य के अन्य रूप ही। ये केवल प्रवचन हैं, प्रवचन-सार हैं। 'सार' इसलिए कि अपने विस्तीर्ण कलेवर में प्रत्येक शब्द और पंक्ति कहीं भी अपने मूल मंतव्य से भटक नहीं पाई है। और विशेषता यह है कि लम्बे विस्तार और व्याख्या दृष्टांतों के बीच भी विषय का एक तारतम्य बना हुआ है। बल्कि श्रोता की जिज्ञासा और कथन की परिसमाप्ति पर उद्देश्य की व्यग्रता में ये प्रवचन उसे निरंतर बांधे रहते हैं। यह प्रमाणसागर जी का वैशिष्ट्य है और ऐसा करने में उन्हें कहीं प्रयास नहीं करना पड़ा। ये शब्द अंतः स्फूर्ति से अनायास फूटते चलते हैं। भाव-तरंगों में चिंतन की अठखेलियाँ खाते शब्द इतनी गंभीरता से निसृत होते हैं कि भावक श्रोता बनकर इनमें डूब जाता है। ये शब्द हमें भीतर

तक झकझोर कर हमारे चिंतन की चेतना को क्रियाशील कर देते हैं।

आपाधापी की इस अंधी गति में जहाँ मनुष्य संवेदन शून्य बनकर निष्प्राण सा भाग रहा है। वह चेतना के विध्वंस और संस्कृति के दमन की इस अभिशप्त बेला में बेखबर है, अपनी अस्मिता के प्रति। ये प्रवचन उसे थमकर, बैठकर शांति से सोचने-विचारने का आत्म बोध देते हैं। जो इन प्रवचनों की आत्मा और युग बोध है और संतत्त्व का महत्त्वपूर्ण क्षण।

मैं स्वयं एक भावक श्रोता के रूप में इन प्रवचनों में उपस्थित रहा हूँ। संत वाणी में अवगाहन भी किया है और एक अद्‌भुत प्रतीति में डूबा भी हूँ। अपने को संवेद्य बनाकर, उनकी संवेदनशीलता से तादात्म्य करने का सौभाग्य भी उस संतवाणी में मुझे मिला है। मेरा विश्वास है कि ये प्रकाशन इसे युग वाणी का रूप देगा। मेरी निष्पत्ति का एक और पक्ष है, जहाँ मैं समीक्षक के निकष और मानदण्डों के परे बहुत कुछ आत्मसात कर सका हूँ और अपनी निष्पत्तियों को परख सका हूँ ; एक दृढ़ विश्वास से। ऐसी रचनाएँ केवल संप्रेषण और व्यापक प्रसार के लिए ही उद्‌भूत होती हैं। इनमें निकष नहीं बल्कि ये स्वयं मनुष्यत्व को जाग्रत कर उसकी कसौटी बन जाती हैं।

जहाँ भाषा एक निर्झर की भांति निर्बाध गति से प्रवाहमान है, कहीं पाण्डित्य का बोझ नहीं और न ज्ञान का अहंकार अथवा प्रतिभा का दम्भ ही। जो कुछ है वह अपनी निष्ठा, निर्भीकता और संतत्व की प्रखरता हृदय की गहराईयों से निकली शब्द-सम्पदा। अद्‌भुत कला है, मुनि श्री के पास, वह भी ईश्वर प्रदत्त। गुरु के प्रसाद की भांति! मानों गुरु स्वयं इन तरुण शिष्यों में उच्चरित हो रहा है परम्परा का इतना श्रेष्ठ इतना तेजस् और इतना प्रभावी रूप क्या विश्व की किसी और संस्कृति में मिल सकता है? जहाँ गुरु बोलता है शिष्य की तेजस्विता में। और इसी कारण प्रत्येक श्रोता इसमें बंध जाता है। दृष्टांतों के वृत्त में, और प्रसंगों के व्यास में। उसे जो मिलता है वह तलछट होकर उसकी अमूल्य निधि बन जाती है। जन मानस को आज जिस चेतना की महती आवश्यकता है वह स्फुरण इन प्रवचनों की आध्यात्मिकता में है। यही हमारी सांस्कृतिक अस्मिता है जिसका निरंतर क्षरण हो रहा है। किन्तु संत इसी की ओर इंगित कर रहा है।

जब इन प्रवचनों को लिपिबद्ध पढ़ा जाता है तब एक

काल्पनिक छवि इनके प्रणेता की हमारे मानस पटल पर अंकित होती चलती है। हम पढ़ते हैं, इन शब्दों को और कल्पना से देखते हैं मुनि श्री की प्रखर ऊर्जावान छवि को। कहीं पाठक श्रोता बनता है तो कहीं श्रोता पाठक। विभेद करना कठिन हो जाता है। कहीं दोनों का समाहार हो जाता है। जैसा भरत मुनि के 'नाट्य शास्त्र' में सहृदय प्रेक्षक है 'दर्शक' नहीं क्योंकि उसमें श्रोता और दर्शक का विलक्षण सामंजस्य हो जाता है। न जाने कब एकमेव हो जाते हैं- सुनते सुनते रंग-मंच में उसकी पूरी अस्मिता का विलय हो जाता है, वह सो जाता है, वही 'प्रेक्षक' बनता है।

इसी भांति प्रवचनों को लिपिबद्ध पढ़ता हुआ पाठक कब, कैसे मुनि श्री का सान्निध्य प्राप्त कर लेता है वह बेखबर विभोर और किसी सीमा तक मुग्ध, उन्हीं में समा जाता है। उनका अनुगमन करता हुआ उसकी चेतना का पर्यवसान हो जाता है; जीवन के गूढ़, दार्शनिक विषयों के प्रतिपादन और निष्पत्तियों में और युक्ति पा जाता है उनमें डुबकियाँ लगा लेने को ताकि वह डूबे नहीं। आज इसी चेतना की आवश्यकता है, यही दृष्टि हमारी संस्कृति है। जो भारत भूमि की अन्यतम धरोहर रही है। जिसका उद्घोष हो रहा है मुनि श्री प्रमाणसागर की वाणी में तेजस् और श्रेष्ठ बनकर!

'बसेरा'
शांति विहार
मकरोनिया, सागर

डॉ. आर.डी. मिश्र
पूर्व प्राचार्य
शा. महाविद्यालय, सागर

१०८ मुनि श्री प्रमाणसागर जी

प्रवचन क्रम –

❑

❑ ❑

"धर्म और धंधा"

धर्म जीवन का परम आधार है। एक ऐसी जीवन पद्धति है, जो स्व के अनुशासन से संचालित होती है। आंतरिक संवेदनाओं से जुड़ी हुई जीवन शैली धर्म है। जो व्यक्ति 'स्व' के अनुशासन और आंतरिक संवेदनाओं से जुड़ता है उसका जीवन मानवीय गुणों से ओतप्रोत हो जाता है, उसके प्रत्येक विचार और व्यवहार में मानवीयता प्रतिबिम्बित रहती है। जितने भी धर्माचार्य और महामनीषी चिंतक हुए हैं; सबकी एक ही अभिप्रेरणा रही कि मानव, मानव मूल्यों को समझे अपने कर्तव्यों का वहन करे। धर्म का मूल ध्येय यही है- सबसे बड़ा धर्म है मानवता मानव के अन्दर मानवता को प्रतिष्ठापित करना ही धर्म का मूल लक्ष्य है। इस संदर्भ में हमारे आचार्यों ने बड़ा गहरा चिंतन किया है। उन्होंने जीवन के संदर्भों को ध्यान में रखते हुए हमें जो आचार पद्धति दी है, वह भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विरासत है। उन्होंने हमें एक ऐसा मार्ग दिया है जिसमें गृहस्थ अपने गार्हस्थिक उत्तरदायित्वों का निर्वाह करते हुए भी धर्म का पालन कर सके। हम जहां रहें; वहां रहते हुए भी अपने कर्तव्यों का निष्ठापूर्वक निर्वाह कर सकें। सागार धर्मामृत में पण्डित आशाधरजी ने एक कारिका के माध्यम से हमारे पूरे जीवन को 'स्व' में अनुशासित करने की प्रेरणा दी है। उसमें उन तमाम् गुणों का समावेश-समाहार किया गया है जो एक मानव को सच्चा मानव बनाते है, एक मानव को मानव बनने का प्रमाण पत्र प्रदान करते है।

न्यायोपात्त धनो यजन् गुण गुरून सद्गीस्त्रिवर्गं भज
न्नयोन्यानुगुणं तदह गृहणी स्थानालयो ह्रीमयः
युक्ताहार विहार आर्य समिति प्राज्ञः कृतज्ञो वशी
श्रृण्वन धर्म कथां दयालु रघभिः सागारधर्मं चरेत्

ये ऐसे गुण हैं जो प्रत्येक गृहस्थ को सद्गृहस्थ बना देते हैं। गृहस्थ होना एक स्थिति है, पर सद्गृहस्थ बनना एक गुण है। हर गृहस्थ, सद्गृहस्थ नहीं बन सकता। वही गृहस्थ सद्गृहस्थ बनता है, जो मानवीय मूल्यों को आत्मसात करता है। जिसका जीवन मानवीय गुणों से अनुप्राणित रहता है। वह गृहस्थ, गृहस्थ नहीं बनता, सद्गृहस्थ बन जाता है और सद्गृहस्थ बनते ही धर्म की भूमिका दिनोंदिन मजबूत होती जाती है। उसकी धार्मिक चेतना का दिनोंदिन विकास होने लगता है। उक्त कारिका एक ऐसी कारिका है जो प्रत्येक गृहस्थ को सद्गृहस्थ बनाने में सक्षम है, समर्थ है। पन्द्रह विशेषताएं एक गृहस्थ के जीवन में होनी चाहिए वे सभी विशेषताएं इस कारिका में गुंथित है :

(१) गृहस्थ न्यायमूलक धन अर्जित करे (२) वह गुणों की उपासना करे (३) अपनी वाणी में मिठास रखे (४) गृहस्थ के लिए धर्म, अर्थ और काम ये तीन पुरूषार्थ बताये गये है इन तीनों पुरूषार्थों में सम्यक् संतुलन रखे (५) इन तीनों पुरूषार्थों के योग्य गृहिणी को स्वीकारे (६) फिर ऐसे ही घर में निवास करे जहां इन तीनों पुरूषार्थों का समाहार होता हो, (७) उसके मन में पाप। दुष्कर्म के प्रति, हमेशा शर्म हो, (८) अपने आहार और विहार में विवेक रखे, युक्त आहार विहार करें (९) संतजनों का समागम करे (१०) अपने विवेक की आंख को खुला रखे (११) हमेशा अपने प्रति किये गये उपकार और उपकारी को स्मरण रखें, कृतज्ञ बना रहे (१२) अपनी इंद्रियों और मन पर नियंत्रण रखें। (१३) धर्म की कथा को निरंतर सुनता रहे (१४) उसका मन दया से भीगा रहे और (१५) प्रतिपल पाप से भीति बनी रहे। ये गुण जिसके जीवन में आ गये, समझ लेना वह गृहस्थ नहीं; सद्गृहस्थ की श्रेणी में आ गया। वह मानव नहीं, एक आदर्श मानव की कोटि में आ गया। उसका जीवन सामान्य जीवन नहीं, आदर्श जीवन बन गया।

हम अपने जीवन को आदर्श जीवन बना सकते हैं यदि इन मानवीय

आदर्शों को आत्मसात करें, आज मुझे आपसे चर्चा करनी है, पहले गुण की, वह है न्यायोपात्त धन –

गृहस्थ के लिए – धन की आवश्यकता है। साधु का जीवन बिना धन के चल जाता है, उसी में उसकी शोभा रहती है। उसे किसी चीज की आवश्यकता नहीं, भोजन की आवश्यकता है वह समाज में उन्हें पर्याप्त मिल जाता है लेकिन आप गृहस्थ दूसरों के घर जाकर अपना पेट नहीं भर सकते। गृहस्थ के लिए धन की आवश्यकता है, हर गृहस्थ यह चाहता है कि मैं धन्ना सेठ बनूं, हर गृहस्थ यह अपेक्षा करता है कि मेरे पास बढ़िया कार और बंगले हों, हर गृहस्थ यह सोचता है कि लक्ष्मी मेरे घर में डेरा डाले, हर गृहस्थ यह सोचता है कि मेरे यहां धन–सम्पदा की रेलमपेल हो और आज के इस अर्थ प्रधान युग में यह बात स्पष्ट हो गई कि अर्थ है, तो कुछ अर्थ है, नहीं तो सब कुछ व्यर्थ है। जिस गृहस्थ के पास कौड़ी नहीं वह तीन कौड़ी का है। ठीक है हम आपका धन छुड़ाने के लिए नहीं कहते, धन छोड़ने और छुड़ाने का निर्देश भी हमारे मनीषियों ने नहीं दिया। उनका कहना है कि ठीक है, धन तुम्हें आवश्यक प्रतीत होता है तो रखो, धनार्जन करो पर एक शर्त रखी "न्यायोपात्त धनं"– तुम्हारा धन, न्याय से उपार्जित होना चाहिए। अन्याय और अनीति से नहीं। जब कभी भी आज के इस परिवेश में लोगों से बात की जाती है तो सहज मन से निकल पड़ता है कि आज के जमाने में न्याय–नीति से हम पैसा कैसे कमा सकते हैं ? दरअसल यह तो हमारे मन की दुर्बलता है। धन की प्राप्ति न्याय और नीति से ही हो सकती है। अन्याय और अनीति से नहीं ! आपको यह लगता है कि हम न्याय और नीति का अनुशरण करेंगे तो धन दौलत कैसे इकट्ठा करेंगे ? कार और बंगला को कैसे Mantain करेंगे ? पर आप भूल में हैं। देखने में हमें लगता है कि अन्याय और अनीति का आश्रय लेने वाले कार और बंगला Mantain करते हैं पर यह सत्य नहीं है। असत्य के पैर नहीं होते और अनीति की जड़ नहीं होती। कोई भी व्यक्ति असत्य का आचरण करके अपने जीवन का विकास नहीं कर सकता, अपने जीवन को समृद्ध नहीं बना सकता, चाहे वह व्यक्ति कितना ही अन्याय और अनीति का आश्रय क्यों न लेता हो। पर उस व्यक्ति को भी अपने सम्मान और प्रतिष्ठा को कायम रखने के लिए सदाचरण का मुखौटा पहनना पड़ता है। असत्य तो पंगु है,

उसे चलने के लिए सत्य को बैंसाखी बनाना पड़ता है। और जिस क्षण इसका पर्दाफाश होता है तो सुखराम-दुखराम बन जाते हैं, उनका सुख और आराम हमेशा को छिन जाता है।

हम इतिहास जानते हैं। जिन-जिन ने भी असत्य का आश्रय लिया है उनके जीवन की यही परिणति हुई है, इसलिए हम अगर यह मानते हैं कि अन्याय या असत्य से जीवन का विकास संभव है तो यह हमारे मन की कमजोरी है। हमारी मानसिक दुर्बलता का ही प्रतीक है। जिसके मन में न्याय नीति, धर्म और कर्तव्य के प्रति आस्था है, वह व्यक्ति अपने् मुख से कभी ऐसी बात कर ही नहीं सकता।

दूसरी बात मैं आपको और बता दूं कि अन्याय और अनीति से उपार्जित धन व्यक्ति को कभी सुखी और समृद्ध बना ही नहीं सकता। जिसके पास अन्याय और अनीति का पैसा होता है वह बीमारी; संकट और परेशानियों से हमेशा दुखी रहता है। वह सुखी नहीं हो सकता। उसे रात-दिन डाक्टर के चक्कर लगाना पड़ते हैं। दवाई, डाक्टर और कोर्ट के अतिरिक्त उसके पास कुछ बचता ही नहीं। वह कोर्ट कचहरी के चक्कर लगाते-लगाते परेशान हो जाता है। ऐसी स्थिति में सुख और चैन कहाँ ? जहां अनीति है वहाँ सुख-चैन रह ही नहीं सकता। जो व्यक्ति दूसरों का शोषण करता है वह व्यक्ति अपना पोषण नहीं कर सकता। बड़े-बड़े सेठ साहूकारों को आप देख लो जो गलत तरीकों से धन उपार्जित करते हैं, वे धन का उपभोग भी नहीं कर पाते। उनके कुत्ते तो कार में घूमते हैं पर सेठ जी बिस्तर पर करवटें बदलते-बदलते रात गुजारते हैं। कुत्ते कार में घूम रहे है, नौकर-चाकर गुलछर्रे उड़ा रहे हैं पर सेठ जी को मूंग की दाल के पानी और रूखे फुलके पर संतोष करना पड़ता है क्योंकि उसके साथ तीन-तीन बीमारी जुड़ी हुई हैं, हार्टपेशेंट हैं, ब्लड प्रेशर भी अनियमित है और साथ में डायविटीज भी है, सब कुछ छुड़वा दिया गया, यह क्यों ? यह अनीति का फल है। इसलिए हमारे आचार्यों ने कहा कि तुम्हारे लिए आजीविका की आवश्यकता है, आजीविका को अपनाओ लेकिन सम्यक् आजीविका हो। सम्यक्, आजीविका का अर्थ है न्याय और नीति के पथ पर चलने वाली आजीविका, क्योंकि अन्याय और अनीति से तुम्हें सुख नहीं मिल सकता, जिसके जड़ में पाप है वह सुख कैसे दे सकता है ? किसी वृक्ष को हम नमक से सींचते रहें और सोचें कि इसमें मीठे फल लगें तो यह संभव नहीं

है, यह तो उल्टी गंगा बहाने वाली बात है। पाप का मार्ग अपनाकर पुण्य का फल चाहने की बात है। कहावत है पाप का पैसा कभी पचता नहीं और बचता भी नहीं है; जहां से आता है वहीं चला जाता है।

हमारे जीवन का मूल लक्ष्य धन का अर्जन नहीं, सुख और समृद्धि होना चाहिए। उसके लिए तो व्यक्ति को न्याय-नीति और धर्म का अनुसरण करना चाहिए। अन्याय, अनीति और अधर्म का आश्रय लेने वाला व्यक्ति कभी सुखी नहीं हो सकता। किसी के भोजन में अगर जहर मिला हुआ है तो जहरीला भोजन हमारे लिए बड़ा घातक होता है। जिस धन में अन्याय-अनीति का जहर चढ़ा हुआ है। हमारे जीवन के लिए हमेशा घातक साबित हुआ है। यहां पर भी हुआ है परलोक में भी घातक सिद्ध हुआ है, इसलिए भारतीय मनीषा हमेशा यह कहती रही है कि पाप से भीति रखो और अन्याय अनीति के मार्ग से बचो, सम्पत्ति बढ़ाना है, बढ़ाओ, सम्पत्ति बढ़ाने का निषेध नहीं, पर पहले सम्पत्ति शब्द को ध्यान में रखो, सम्पत्ति का अर्थ क्या है ? ***"सम्यक् प्रति पत्ति सम्पत्ति"***, जिसकी प्राप्ति सम्यक् प्रकार से हो, जो भली प्रकार से अर्जित किया जाए-वह सम्पत्ति है, बाकी सब विपत्ति है, सम्यक् प्रकार से अर्जित सम्पत्ति हमारे जीवन के विकास का कारण बनती है, और यदि हमने उसकी उपेक्षा कर दी तो वह हमारे विनाश का कारण बनती है।

"शुभ और लाभ" दो शब्द भारतीय संस्कृति की सशक्त अभिव्यक्तियां हैं। व्यापारी अपने खाते-बही में शुभ-लाभ लिखा करते हैं। इसके प्रतीकाशय को समझें, हमारे लिए लाभ को शुभ नहीं कहा गया। मात्र लाभ की ही चर्चा भारत में नहीं की गई; लाभ के साथ शुभ भी जुड़ा होना चाहिए। शुभ मंगल, कल्याण और विकास का प्रतीक है। भारतीय और पश्चिमी संस्कृति में इतना ही फर्क है, वहां सिर्फ लाभ की बात है, भारत में लाभ के पहले शुभ पर जोर दिया जाता है। शुभ-लाभ ही हमारे जीवन का आधार होना चाहिए। जो इसे ध्यान में रखता है उसके द्वारा अशुभ अनैतिक कार्य कभी हो ही नहीं सकते।

मनुष्य ने अपने सारे मानदंडों को एक तरफ कर दिया है। भारतीय संस्कृति में जितने भी मानदंड स्थापित किए गए हैं आज उन सब की उपेक्षा की

जा रही है। जहां आत्मा और परमात्मा को महत्त्व दिया गया है, जहां परमेश्वर ही हमारी संस्कृति में प्रधान माना गया है- आज उसका स्थान पैसे ने ले लिया है। पैसा ही परमेश्वर बन गया है। अब तो व्यक्ति का एक ही लक्ष्य है जैसे तैसे कैसे भी हों बस ! पैसे हो-किसी भी मार्ग से हो पर पैसा हो। आज के इस अर्थप्रधान युग ने पैसे को इतनी प्रतिष्ठा दे दी कि वो परमेश्वर की तरह पूजा जाने लगा, अगर किसी व्यक्ति के पास पैसा है तो सारी दुनिया उसे पूजती है, और जिसके पास पैसा नहीं है उसे तो अपने भी भुला देते हैं, शायद इसे ही देख कर व्यक्ति पैसा कमाने के लिए पागल होने लगा है। जिस देश में कभी कहा जाता था

'भज गोविन्दम् भंज गोविन्दम् गोविन्दम भज मूढ़ मते !
उस देश में लोग गाने लगे है -
भज कलदारं भजं कलदारं कलदारं भज मूढ़ मते !

पैसा भजो यह सोच बन गई है, क्योंकि पैसे को हमने अपनी प्रतिष्ठा का आधार बना लिया है। ध्यान रखना इस लोक में तुम्हें पैसा प्रतिष्ठा दिला सकता है पर परलोक में कोई पक्षपात नहीं होता। परलोक में पैसे के आधार पर कभी कोई प्रतिष्ठा महीं मिलती। वहां तो जैसी करनी-वैसी भरनी की उक्ति ही चरितार्थ होती है।

मैंने सुना कि एक आदमी मरकर के स्वर्ग पहुंचा (सपने में) आदमी कैसे भी काम करे सपने तो स्वर्ग के ही देखता है। स्वप्न में स्वर्ग पहुंचा देखता क्या है कि पूरे के पूरे स्वर्ग को सजाया गया है। उसने स्वर्ग के किनारे पर बैठे एक आदमी से पूछा - "भाई आज बात क्या है।" उसने कहा "तुम्हें पता नहीं आज मृत्युलोक के एक सेठ ने स्वर्ग में जन्म लिया है उसके जन्मोत्सव की यह खुशी मनाई जा रही है।" उसने सोचा कि स्वर्ग में जन्म लेने वाले के स्वागत की यही परंपरा होगी और वह एक किनारे पर बैठ गया। इस आशा में कि थोड़ी देर बाद मेरे लिए भी ऐसे ही जलसा किया जायेगा। ऐसे ही ठाठ-बाट वाले गाजे-बाजे आयेंगे और लोग मुझे ले जायेंगे। काफी देर प्रतीक्षा करने के बाद सिर्फ दो द्वारपाल आये और उन्होंने उससे कहा कि आपका स्वर्ग में आमंत्रण है, प्रवेश कीजिये। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ क्योंकि वह तो इस आशा में था कि हजार-दो हजार की भीड़

आयेगी पर वहाँ सिर्फ दो- बहुत संकोच में था। उसके संकोच को देखकर द्वारपालों ने कहा- "आप चलिए हम आपको ही लेने आये हैं" "मुझे लेने आये हो" हद हो गई मैने तो सुना था कि सिर्फ मृत्युलोक में पक्षपात होता है पर तुम्हारे स्वर्ग में भी पक्षपात होने लगा। द्वारपालों ने पूछा "क्या बात हो गई।" किसान ने कहा- "अभी अभी मैंने देखा कि एक सेठ ने स्वर्ग में जन्म लिया तो उसके लिए इतना ज्यादा जलसा किया गया, जन्मोत्सव मनाया गया, और मैं सीधा-साधा किसान जिसने आज तक कोई अन्याय-अनीति नहीं किया, कोई पाप का कार्य नहीं किया उसके लिए सिर्फ दो जन! वह भी बिना-बाजा गाजा के, यह पक्षपात नहीं तो और क्या है ! उन्होंने समझाया कि भाई पक्षपात की बीमारी तो मनुष्यों में है, स्वर्ग में नहीं, हमारे यहां कोई पक्षपात नहीं है। बात सिर्फ इतनी है कि आप जैसे सीधे-साधे ईमानदार लोग तो रोज ही इस स्वर्ग में जन्म लेते रहते हैं इसलिए हम लोगों को कोई खास फर्क नहीं पड़ता, पर ये सेठ लोग साल, दो साल में एकाध कोई पैदा होते हैं अतः हम लोग भी थोड़ी खुशी मना लेते हैं। कितना तीखा व्यंग्य है। व्यंग्य नहीं यह यथार्थ है अन्याय और अनीति के रास्ते पर चलने वाला कभी स्वर्ग नहीं पहुंच सकता। व्यक्ति को अपने संबंध में विचार करना चाहिए कि यह अन्याय और अनीति का मार्ग तुम्हें कहां ले जाएगा।

आज हर जगह नीति हीनता पर लोग चिंता करते हैं, आज हर जगह नैतिक मूल्यों की बात करते है, मूल्यबोध करने की बात की जाती हैं लेकिन ऐसे बहुत कम लोग हैं जो कि इन मूल्यों पर आस्था रखते हैं और ऐसे लोग तो और भी कम हैं जो अपने मूल्यों पर आस्था रखते हुए वैसा आचरण करते हैं। बार-बार मैं विचार करता हूँ कि आखिर बात क्या है? जब हर आदमी यह समझता है कि जीवन के लिए सोने-चांदी की आवश्यकता नहीं। हमारा पेट सोने चांदी की रोटियों से नहीं भरता। पेट तो अनाज की रोटी से भरता है फिर भी आदमी धन-दौलत को इकट्ठा करने के पीछे पागल क्यों है ? हर आदमी यह जानता है कि मैंने जो कुछ भी एकत्रित किया है, उसका एक कण भी मेरे नहीं जावेगा फिर भी वह रात-दिन दौलत एकत्रित करने की आपाधापी रहता है? हर व्यक्ति यह जानता है कि मैं संतान के लिए विरासत में [illegible] का प्रयत्न करूं तो भी वह वही रह जावेगा। अगर संतान योग्य होगी

कुछ स्वयं अर्जित कर लेगी और यदि अयोग्य होगी तो मैं जो कुछ भी अर्जित करके छोड़ जाऊंगा वह सब कुछ यहीं पर नष्ट कर देगा। हर व्यक्ति यह जानता है फिर भी अन्याय और अनीति के मार्ग का अनुसरण क्यों करता है ? मैंने विचार किया कि नीतिहीनता के सिर्फ तीन कारण हो सकते हैं तीन कारणों से पीड़ित होकर व्यक्ति अन्याय और अनीति के पथ का अनुसरण करता है। उसमें पहला विलासिता बहुल वृत्ति, दूसरा आय से अधिक व्यय और तीसरा कारण है कृत्रिम अपेक्षाओं का विस्तार।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। हर मनुष्य का अपना एक स्तर होता है। लेकिन हर मनुष्य का समान स्तर बन जाए यह कोई जरूरी नहीं और आज मनुष्य अपने स्तर को बढ़ाने के लिए विलासता को बढ़ाने लगा यह तो और अधिक अभिशाप है। आज मनुष्य के जीवन का स्तर उसकी विलासता से नापा जाने लगा है। अपने जीवन स्तर को बढ़ाने के लिए मनुष्य अधिकाधिक विलासी होने लगा है और यह विलासिता अमीरी का अभिशाप बन गया है। यह व्यक्ति को अन्याय और अनीति के मार्ग में ढकेलना है। जब व्यक्ति के चित्त पर विलासिता हावी हो जाती है तो उसके विवेक पर परदा आ जाता है, परदा आ जाता है तो व्यक्ति का आत्मबोध समाप्त हो जाता है और जहां आत्मबोध समाप्त हो जाता है वहां अन्याय और अनीति के अतिरिक्त कभी कुछ बचता नहीं। व्यक्ति को अपनी विलासिता पर अंकुश लगाना चाहिए उसे ***"सादा जीवन और उच्च विचार"*** को अपने जीवन का आधार बनाकर चलने का प्रयत्न करना चाहिए। दूसरा कारण है आय से अधिक व्यय। जब व्यक्ति आय और व्यय में समायोजन नहीं कर पाता तो सारे के सारे संतुलन बिगड़ जाते हैं ***"तेतै पांव पसारिये जेती लम्बी सौर"*** यह जो बात है; यह जो चिंतन है इस सामाजिक और पारिवारिक पृष्ठभूमि में बड़ा महत्वपूर्ण है। तुम्हारी जितनी क्षमता है उसके अनुरूप काम करो तुम्हारा काम चल जायेगा। आय के आधार पर मनुष्य अपना पेट भर सकता है आय से अधिक व्यय करेंगे तो निश्चित ही किसी गलत रास्ते पर चलना पड़ेगा। गलत रास्ते पर चलने वाला व्यक्ति अपने जीवन को हमेशा बर्बाद करता है। इसलिए हमेशा हर व्यक्ति को आय के अनुरूप ही व्यय करना चाहिए। सीमित आय है तो आप सादा रहो धार्मिक चिंतन इसमें आपको बहुत सहायक होगा

क्योंकि जो व्यक्ति धार्मिक चिंतन से अनुप्राणित रहता है वह हमेशा संयम और सादगीपूर्ण जीवन जीता है। संयम और सादगीपूर्ण जीवन,व्यक्ति के जीवन को संतुलित बनाता है। व्यक्ति के व्यय पर अंकुश लगाता है और जब व्यय पर अंकुश लगता है तो अनावश्यक धन की कोई आवश्यकता ही नहीं रहती फिर व्यक्ति गलत धन के प्रति आकर्षित ही नहीं होता।

तीसरा कारण है कृत्रिम अपेक्षाओं का विस्तार- मनुष्य के लिए बहुत सारी चीजें आवश्यक होती हैं, आवश्यकताओं की पूर्ति करी जा सकती है लेकिन आवश्यकता जब कृत्रिमता का मुखौटा पहनकर आती है तो वह अंतहीन हो जाती हैं। आज मनुष्य की आवश्यकताएं, आकांक्षा का रूप धारण कर उसके ऊपर हावी होती जा रहीं हैं। वह उनकी पूर्ति करते-करते अपना जीवन पूर्ण कर देता है पर वह अपूर्ण रहती हैं, उनकी कभी पूर्ति नहीं होती। व्यक्ति को अपनी आवश्यकताओं का नियमन करना चाहिए। यह देखना चाहिए मेरे लिए क्या- कितना जरूरी है तभी उसके जीवन का उद्धार होगा।

आज के समय में तो भ्रष्टाचार-शिष्टाचार बनता जा रहा हैं। आज कहीं भी जाओ ऊपर से नीचे तक सब भ्रष्ट है, थोड़े से पैसे दीजिये और आदमी की आत्मा तक को खरीद लीजिये। आज ऐसे-ऐसे देश भक्त हैं जो दौलत लेकर पूरे देश को बेचने को तैयार है। अब किसकी बात करें, आज व्यापारी व्यापार कर रहा है पर उसके व्यापार की नीति खराब हो रही है, अधिकारी अपनी कुर्सी पर बैठा है पर बिना रिश्वत के कोई काम नहीं कर रहा है, डाक्टर अगर कोई आपरेशन करना चाह रहा है तो पहले पैसे की बात है और न्याय देने के लिए न्यायालय की कुर्सी पर बैठा है उसने भी आज पैसा लेकर न्याय को बेचना शुरू कर दिया है। बंधुओ, यह अन्याय और अनीति बड़ी गलंत चीज है, धर्म को हमें उसके व्यापक संदर्भों में समझने की आवश्यकता है। हमारा धर्म हमें कभी यह नहीं कहता कि तुम सिर्फ मंदिर में बैठकर भगवान की पूजा-आराधना कर लो तुम्हारा धर्म हो जावेगा। बंधुओ, धर्म का क्षेत्र इतना सीमित नहीं, वह बहुत व्यापक और विस्तीर्ण है, चाहे आप दुकान में हों दफ्तर में हों कहीं भी हों आपका धर्म आपके साथ होना चाहिए। धर्म का अर्थ है नीति और सदाचार। आपकी नैतिकता, आपका सदाचार आपके प्रत्येक व्यवहार में, आपके प्रत्येक विचार में प्रतिबिंबित और

प्रतिध्वनित होना चाहिए। तभी आप समझियेगा कि आपके जीवन में धर्म की कोई भूमिका है। धन-दौलत के मोह में यदि व्यक्ति कोई अनैतिक आचरण करता है तो कभी-कभी उसे इतना पश्चाताप करना पड़ता है कि जीवन पर्यन्त उसका प्रायश्चित करने के बाद भी वह पूरा नहीं कर पाता।

एक पुलिस इंस्पेक्टर का बेटा था, स्कूल में पढ़ा करता था। रोज सुबह १० बजे जाता, ५ बजे लौटकर आ जाता। आज काफी देर हो गई, वह लौटकर नहीं आया। मां को बड़ी चिंता हो रही है। इधर पुलिस इंस्पेक्टर को फोन पर सूचना मिली कि अनियंत्रित वेग से चलता हुआ एक ट्रक किसी स्कूली बच्चे को कुचलकर भाग खड़ा हुआ। जैसे ही उसे सूचना मिली, वह घटना स्थल पर जाने की जगह ट्रक का पीछा करने के लिए दौड़ा। ट्रक ड्राइवर ने ट्रक रोक ५०० रुपये पकड़ाये और चलता बना। अब वह निश्चिंत हो गया। उसे घटना स्थल तक पहुंचने की कोई चिन्ता नहीं हुई, ५०० रूपये लेकर अपने घर आया और पत्नी को थमाते हुए कहा - देख आज की यह कमाई स्वीकार कर। नोट को देखकर पत्नी की आंखें चमक उठी, पर उसने कहा कि आज अपना बेटा अभी तक स्कूल से नहीं लौटा क्या बात हो गई, थोड़ा पता लगाओ, ७ बज गये हैं अभी तक नहीं आया। अब इंस्पेक्टर के मन में थोड़ी सी शंका हुई कि बेटा लौटा क्यों नहीं। अपनी मोटर साइकिल उठाकर स्कूल की तरफ बढ़ा तभी एक स्थान पर उसने भीड़ देखी, वह घटनास्थल था.जहां एक लड़के का क्षत-विक्षत शरीर लहुलुहान पड़ा था। वहां वह पहुंचा तो हतप्रभ रह गया। वह कोई और नहीं, उसका ही अपना बेटा था जो उसी ट्रक से कुचल कर मारा गया था। बंधुओ, यह स्थिति रोज होती है तब उसने अपनी आत्मकथा में लिखा कि रिश्वत ने मेरी आत्मा को भी खरीद लिया और तबसे उसने रिश्वत लेने का हमेशा-हमेशा के लिए त्याग कर दिया। जब व्यक्ति के पास कुछ प्रलोभन आता है तो वह सब कुछ भूल जाता है अपना ईमान तक भूल जाता है। सोचो, विचार करो कि तुम पैसा इकट्ठा करके आखिर ले कहां जाओगे ? हर आदमी बेईमानी कर रहा है सिर्फ अधिकारी ही नहीं। अधिकारी रिश्वत लेता है, व्यापारी भी बेईमानी करता है वह डंडी मारता है, वह मिलावट करता है, भावताव में कमोवेशी करता है, यह भी अन्याय है, यह भी अनीति है।

मैंने सुना कि एक आदमी के मन में आत्महत्या करने की भावना हुई और

बाजार से जाकर जहर खरीदा, जहर खरीदकर आने के बाद उसने पिया लेकिन मरा नहीं। उसने कहा – "हद हो गई, आजकल लोग जहर में भी मिलावट करने लगे, कैसा मिलावट का जमाना आ गया। जहर में भी आदमी मिलावट करने लगा।"

मैंने एक व्यंग्य पढ़ा, उसमें लिखा था यदि आप बीमार हों तो डाक्टर को दिखायें, इसलिए कि डाक्टर जी सके। डाक्टर जो दवा लिखे वह आप खरीदें इसलिए कि दवा विक्रेता और निर्माता जी सके। आप उसे खायें नहीं इसलिए कि आप जी सकें यह आज की स्थिति है। हमें विचार करने की जरूरत है। सब अनीति है, यह सब बेईमानी है। बेईमानी अनीति की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि मनुष्य की धूर्तता, उसकी वक्रता, उसका कपट, उसकी माया, जिसे वह छिपाने का प्रयत्न करता है, वह सब अन्याय है, अनीति है, चोरी है, माया है और तिर्यन्च गति का कारण है। *"मायातैर्यग्योनस्य"* सूत्र को बड़े व्यापक संदर्भों में समझना चाहिए यदि आज कहीं कुछ बेईमानी कर रहे हैं तो माया कर रहे हैं। इसे कूट व्यवहार कहा गया है। कूटव्यवहार तिर्यंच गति का कारण है, जो मनुष्य को एकदम नीचे ले जाता है।

मनुस्मृति में दो प्रकार के चोर बताए गये हैं। प्रकाश चोर और अप्रकाश चोर यानि गुप्त चोर। जो डंडी मारता है, जो रिश्वत लेता है, जो तस्करी करता है, जो बेईमानी करता है, जो मिलावट करता है, वह प्रकाशचोर है क्योंकि इनका काम दिन-दहाड़े होता है। दूसरे हैं गुप्त चोर जिन्हें हम चोर कहते हैं जो किसी के घर पर सेंध लगाते हैं जो किसी का ताला तोड़ते हैं, जो किसी का जेब काटते हैं, इस प्रकार के जो चोर-उचक्के लोग हैं वे गुप्त चोर हैं क्योंकि वे छिपकर काम करते हैं, अंधेरे में काम करते हैं।

अन्याय अनीति से अपने जीवन को विभूषित करने की अपेक्षा हमें रूखा सूखा खाकर संतुष्ट रहना चाहिए। हम रूखे-सूखे से अपना काम चला लें हमारा जीवन कम से कम चिरस्थाई तो रहेगा, लेकिन अन्याय-अनीति से पेट भरने का काम हम कभी न करें। हमारे धर्मग्रंथ हमेशा-हमेशा से यह कहते आऐ हैं लेकिन मनुष्य सुन तो लेता है व्यवहारिक रूप से उसका पालन करने में कई बार बड़ी कठिनाई महसूस करता है। उससे जब कहा जाय कि रिश्वत न लिया जाए, सोचता

तो है कि न ले। जब सामने नोट के बंडल आते हैं तो इधर-उधर देखते हैं कोई नहीं देख रहा है ले लो क्या फर्क पड़ता है। बंधुओ, कोई देखे या न देखे अगर आप भगवान पर आस्था रखते हैं तो भगवान तो सर्वचक्षुष्मान है वह तो लोक के चराचर को देख रहे हैं। दुनिया की आंखों में धूल फेंक सकते हो पर भगवान से बचकर कहां जाओगे। पाप मनुष्य की परछाईं की तरह उसका पीछा करता है।

हम सब कुछ करें; न्याय को न भूलें। पैसे को परिग्रह और पाप कहा गया है। पाप के अर्जन के लिए और अधिक पाप करना इससे ज्यादा गलत कोई कार्य नहीं हो सकता, इससे ज्यादा गलत कोई व्यवहार नहीं हो सकता, व्यक्ति को इसके प्रति संभलना चाहिए। जैन व्यक्ति को तो कम से कम जैन होने के नाते अपने जैनत्व को सुरक्षित रखना चाहिए। जैन कौन है ? JAIN है इसका अर्थ क्या है ? जैन वह है जिसमें

J - जस्टिस

A - अफेक्शन

I - इन्ट्रास्पेक्सन

N - नॉवेल्टी

जिसमें न्याय-निष्पक्षता हो, दूसरा जिसके अंदर प्रेम हो, तीसरी बात जो गहन अध्यात्मिक रूचि वाला हो, चौथा जिसका मन दया से भीगा हो, वह जैन है। पहली ही बात कही न्याय निष्पक्षता की, अगर व्यक्ति जैन होने के उपरांत अन्याय और अनीति का आश्रय लेता है तो वह जैनत्व को लांछित करता है। जैनत्व का अर्थ है मानवता। वास्तव में सच्चा जैन ही सच्चा मानव है। जैन होने का अर्थ पूरी तरह से नैतिक, सदाचारी और ईमानदार बनना है। जो व्यक्ति नैतिक है, सदाचारी है, ईमानदार है भले ही वह जन्म से कुछ भी क्यों न हो कर्म से उसे जैन ही मानना चाहिए क्योंकि वह जिन के उपदेश को आत्मसात करके चल रहा है।

जीवन के साथ नैतिकता का बड़ा गहरा संबंध है। हम सब कुछ छोड़ दें नैतिकता को न छोड़ें। नैतिकता और जीवन का उतना ही संबंध है जितना नदी और उसके जल का। नदी की शोभा तभी तक है जब तक उसमें जल है, जल

का प्रवाह है। हमारे जीवन की शोभा तभी है जब जीवन में नैतिकता का प्रवाह हो, नैतिकता की धार हो। जिसके जीवन से नैतिकता की धार सूख गई उसका जीवन तो जलविहीन नदी की तरह है, सूखी नदी की तरह है, उसके जीवन में कोई प्रवाह नहीं रहता। कई-कई बार हमें यह लगता है कि अन्याय पर चलने वाले व्यक्ति एकदम से बढ़ जाते हैं, पर बंधुओं; यह विकास स्थाई विकास नहीं है, क्योंकि जिस महल की नींव मजबूत नहीं है, जिस महल का आधार मजबूत नहीं वह महल कितना भी ऊँचा क्यों न हो वह कभी भी धराशायी हो सकता है। उसे भूसात होने में कोई देर नहीं लगती। अन्याय-अनीति से व्यक्ति को कभी चिरस्थाई सफलता मिल ही नहीं सकती। आपने देखा होगा बरसात के दिनों में एरण्ड का पेड़ लगता है, दो ढाई महीने में इतना बड़ा हो जाता है कि उसमें फल-फूल लगने लगते हैं, मानो चार-पांच साल पुराना पेड़ हो। दूसरी तरफ बड़ का वृक्ष है, चार पांच वर्षों में टहनियां दिखाई पड़ती है, फल-फूल लगने की बात तो बहुत दूर है। बड़ का वृक्ष खड़ा होने में बड़ा होने में समय लेता है, लेकिन चिरस्थाई होता है, उसकी छाया अच्छी होती है, वह हजारों वर्षों तक खड़ा रहता है लेकिन एरण्ड का पेड़ तभी दिखाई पड़ता है जब तक बरसात होती है। बरसात के खत्म होते ही वह कहां सूख जाता है ? उसका कोई पता नहीं। अन्याय और अनीति का विकास एरण्ड के वृक्ष के विकास की तरह है जो चार दिन में विकसित दिखाई पड़ता है पर कब सूख जाता है कोई पता नहीं और न्याय नीति के आधार पर जीवन का जो विकास होता है वह हमेशा चिरस्थाई होता है कहा है-

अन्यायोपार्जितं वित्तं दश वर्षाणि तिष्ठति।
जायते त्वेकादशे वर्षे समूलं विनश्यति।।

अन्याय से अगर कोई व्यक्ति धन इकट्ठा करता है दस वर्ष से ज्यादा नहीं टिकता। ग्यारहवें साल आते ही वह मूल सहित चला जाता है ***"समूलं विनष्यते"।*** कहीं नकदी से वह चला जाता है क्योंकि वह एरण्ड के पेड़ की तरह है कभी भी नष्ट हो सकता है। इसलिए अपने जीवन को न्यायनीति से जोड़ने का प्रयत्न कीजिये। जीवन तभी सुखी और समृद्ध होगा। कहा गया है ***"यो अर्थे शुचि स हि शुचि"*** जिसका अर्थ-धन शुद्ध है, वही शुद्ध है। अंर्थ की पवित्रता पर सभी की

पवित्रता होती है। साधन की पवित्रता से साध्य की पवित्रता पर भारतीय संस्कृति में बहुत जोर दिया गया है। आप लोग मुनियों के हाथ में ग्रास देते है, साधु-संतों को आहार देते हैं, उसमें भी न्याय-नीति का ही आहार होना चाहिए। अन्याय अनीति का आहार, अपवित्र अनाज अगर किसी को दिया जाये तो वह तो साधु-संतों के मन को भी अपवित्र कर देता है। उसके संबंध में यही कहा जाता है कि जो अनीति से सना हुआ होता है वह कभी हमारे जीवन में धर्म को नहीं भर सकता। इसलिए न्याय नीति से जुड़ना चाहिए।

महाभारत का एक प्रसंग है। जब भीष्म पितामह ने पांडवों को उपदेश दिया, उस समय द्रौपदी ने उनसे पूछा कि अब आप हमें इतना बड़ा उपदेश दे रहे हैं, उस समय आपका, विवेक कहां चला गया था जब भरी सभा में मेरा चीर हरण किया जा रहा था ? पितामह ने कहा कि द्रौपदी उस समय मेरे रक्त में अन्याय और अनीति समायी हुई थी क्योंकि मैं अन्याय का अन्न खाता था। इसलिए मेरी बुद्धि कुंठित हो गई थी। आज मैं शरशय्या में लेटा हुआ हूं इन बाणों के आघात से मेरा सारा दूषित रक्त बाहर हो गया है और उसका यह परिणाम है कि आज मेरे अंदर सद्बुद्धि जाग्रत हो गई इसलिए आज तुम्हें उपदेश दे रहा हूं। विचार करें कितनी बड़ी बात कही गई, अन्याय का अन्न हम खायेंगे तो हमारा रक्त भी दूषित हो जावेगा।

हम रूखा खा लें, सूखा खा लें, दान-धर्म न कर सकें न सही पर न्याय नीति को न छोड़ें। आचार्यों ने कहा है कि जो व्यक्ति दान देने की भावना से गलत तरीके से पाप करके पैसा कमाता है वह व्यक्ति तो अपने शरीर को इसलिए कीचड़ से लिप्त कर रहा है कि अभी हमें नहाना है। बेहतर है कि हम कीचड़ में पैर डालें ही नहीं। यह तो उनके लिए है जिनका पैर कीचड़ में लिप्त हो गया है वह अब उसका प्रक्षालन कर लें। इसलिए हमारे लिए हमेशा-हमेशा कहा गया है कि कुछ न कर सको न सही पर अन्याय और अनीति का मार्ग कभी न अपनाओ। सूखे रहो; रूखे; रहो संतोष से अपना जीवन बिताओ। अन्याय पेट के लिए नहीं करना पड़ता; अन्याय पेटी के लिए करना पड़ता है और पेटी आज तक किसी की भरी नहीं। इस विषय में काफी चर्चा पहले हो चुकी है इसलिए पेट भरने का विचार करो। पेटी भरे तो भरे पर पेटी न्याय से ही भरो किसी भी व्यक्ति के पास

अन्याय अनीति के बिना धन बढ़ नहीं सकता। आचार्य गुणभद्रस्वामी ने बड़ी अच्छी बात कही कि

शुद्धै र्धनै र्विवर्धन्ते सतामपि न हि संपदः।
नहि स्वच्छाम्बुभिः पूर्णा क्वचिदपि सिन्धवः।।

सज्जनों की संपदा भी शुद्ध धन से नहीं बढ़ती–उन्होंने उदाहरण दिया कि नदी में बाढ़ साफ पानी से नहीं आता। धन की बाढ़ अन्याय अनीति के बिना आ ही नहीं सकती इसलिए व्यक्ति को धन की बाढ़ लाने की कभी कोशिश करनी ही नहीं चाहिए। व्यक्ति को न्याय और नीति के मार्ग का आश्रय लेना चाहिए। यह उसकी न्याय संपन्न विभवो या न्यायोपात्त धन की कसौटी के लिए आधार है। हम इसे समझें, नैतिकता को अपने जीवन का आधार बनाएं। नैतिक मूल्यों के प्रति हम सबके मन में प्रतिबद्धता जाग्रत हो। इसी शुभ भावना के साथ मैं अपनी वाणी को विराम देता हूँ।

गुण ग्रहण का भाव रहे नित

लुकमान हकीम से किसी ने पूछा "आपने तमीज किससे सीखी ?" "बदतमीजों से" उन्होंने जबाव दिया

"वह कैसे ?" सामने वाले ने आश्चर्य के साथ पूछा

उन्होंने जवाब दिया कि मैंने बदतमीजों की प्रवृत्ति देखी और उनसे परहेज किया। इसका परिणाम निकला कि मैंने तमीज सीख ली।

आज के संदर्भ में ये प्रसंग बहुत प्रेरणाप्रद है। गृहस्थ को सद्गृहस्थ बनाने वाले गुणों की चर्चा करते हुए आज हमें उसके दूसरे गुण, गुणोपासना पर चर्चा करनी है। गृहस्थ गुणोपासक होता है। जैन धर्म में गुणोपासना की बात की गई है, व्यक्ति की उपासना की बात नहीं की गई है। ये नहीं कहा कि किसी तीर्थंकर को पूजो। यह भी नहीं कहा कि किसी अर्हंत को पूजो, अपितु यह कहा गया है कि गुण की पूजा करो, गुणों की उपासना करो।

हम भगवान की मूर्ति की पूजा करते हैं मंदिर में, भगवान की पूजा करते हैं। वह किसी भगवान की मूर्ति नहीं वरन् गुणों की मूर्ति है, उन तमाम गुणों की मूर्ति है, जिनकी हम रोज आराधना करते हैं, जो उनमें अभिव्यक्त हो गए हैं, जिन गुणों की अभिव्यक्ति के बाद हम सब के अंतरंग में भगवत्ता प्रकट होती है ***"वन्दे तद्गुणलब्ध्ये"*** कहा गया है कि हम भगवान की वंदना करते हैं सिर्फ इसलिए कि उनके गुणों की प्राप्ति हो, हम उनके गुणों का अनुसरण कर सकें, हम अपनी आत्मा का गुणात्मक परिवर्तन कर सकें गुणात्मक विकास कर सकें, इसलिए

गुणपूजा पर जोर दिया गया और ये कहा गया कि गुण देखने की कोशिश करो तो तुम्हें सब जगह मिल सकता है और जहां से जो भी गुण तुम्हें दिखाई पड़े, तुम गुण ग्रहण करने का भाव हमेशा रखो, *"गुण ग्रहण का भाव रहे नित दृष्टि न दोषों पर जावे"* तुम हमेशा गुण को ग्रहण करने की अपनी दृष्टि बनाओ। आचार्यश्री ने एक बड़ी अच्छी बात कही कि चाहे कितनी भी ऊंची अट्टालिका हो या गरीब की छोटी सी झोपड़ी, कम से कम उसमें प्रवेश करने का एक द्वार तो जरूर ही होगा। ऐसे ही संसार में कितना ही अवगुणी से अवगुणी जीव क्यों न हो, उसमें प्रवेश करने के लिए एक न एक गुण तो जरूर होगा। यदि गुणग्राही दृष्टि हो तो अवगुणी व्यक्ति के जीवन से भी गुण निकाल सकते हैं। यही दृष्टि एक सद्गृहस्थ की होती है, रोज वह यह भावना भाता है

"गुणी जनों को देख हृदय में मेरे प्रेम उमड़ आवे,
बने जहां तक उनकी सेवा करके यह मन सुख पावे"

इस संसार में अच्छाईयां भी हैं- बुराईयां भी हैं, नेकी भी है- बदी भी है, पाप भी है- पुण्य भी है, तमाम चीजें इस संसार में हैं, और यह सब हमारी सोच पर निर्भर करता है। हमारे अपने चुनाव पर निर्भर करता है कि हम उसमें से क्या चुनते हैं ? एक आदमी अगर किसी बगीचे में जाता है तो बगीचे में एक ओर जहां डालियों पर अपना सौरभ लुटाते हुए फूल दिखाई पड़ते हैं तो दूसरी तरफ वहीं कांटे भी दिखाई पड़ते है, वहां नीचे सूखी खाद और सड़ी गली पत्तियों की गंदगी भी दिखाई पड़ सकती है। अब यह हमारे ऊपर है कि बगीचे में जाने के बाद उन फूलों की मकरन्द से अपने चित्त को आनन्दित करते हैं या वहां की गंदगी को देखकर अपने मन में गंदगी भरते हैं। यह बात सत्य है कि फूलों के सौरभ का आनंद लेने वालों की संख्या कम है, पर महत्त्व उन्हीं का है। वे लोग ज्यादा हैं जो फूलों के बीच में जाने के बाद भी अपनी दृष्टि शूलों पर लगाए रहते हैं, ऐसे व्यक्ति के जीवन का कभी विकास नहीं हो सकता।

आज के प्रसंग का सार सिर्फ यही है कि संसार की बगिया में से सिर्फ फूल चुनो, शूल को भूल जाओ, कांटो को भूल जाओ। जो फूल चुनता है, उसका जीवन फूल सा सौरभ बिखेरता है, उसके जीवन में फूल सी सुरभि निकलती है, फूल की

मकरन्द सारे वातावरण को सुवासित कर देती है। वे सब हमारे अपने दृष्टिकोण पर निर्भर करता है, यह सब हमारी अपनी सोच पर निर्भर करता है। कहावत है ***"जैसी दृष्टि–वैसी सृष्टि"*** मनुष्य की जैसी दृष्टि होती है जैसी विचारधारा होती है उसे सब कुछ वैसा ही दिखाई पड़ता है। अगर आदमी अंदर से भला है, तो उसे सभी भले दिखाई देंगे और अगर आदमी अंदर से बुरा है तो उसे सभी बुरे दिखाई देंगे।

महाभारत का एक प्रसंग मुझे याद आ रहा है, द्रोणाचार्य कौरवों और पांडवों को सर संधान सिखा रहे थे, दिन ढलने को था। उन्होंने दुर्योधन को बुलाया और कहा कि दुर्योधन अंधेरा होने को है पता लगाओ पास का गांव कैसा है ? वहां के लोग कैसे हैं, ताकि हम सभी रात्रि वहां बिता सकें। दुर्योधन उस गांव में गया, उसने अकड़ कर लोगों से बातचीत की और लौटकर द्रोणाचार्य से कहा कि गुरूदेव आपने मुझे कैसे गांव में भेज दिया। यहाँ तो सारे के सारे लोग मक्कार और अभिमानी हैं। मुझे तो एक भी आदमी में शिष्टता और शालीनता जैसी कोई चीज ही नहीं दिखी। दुर्योधन की बात को द्रोणाचार्य ने सुना और थोड़ी देर बाद युधिष्ठिर को उसी गांव में भेजा। युधिष्ठिर उस गांव में गये, लौटकर द्रोणाचार्य से कहा "गुरूदेव! बहुत अच्छा गांव है। यहां का हर आदमी बड़ा सभ्य और शालीन है, अतिथि सेवा को यहां के लोग अपनी मूलपूजा मानते हैं।" इस प्रसंग से मैं सिर्फ इतना ही कहना चाहता हूं कि एक ही गांव में दुर्योधन और युधिष्ठिर दोनों गये दुर्योधन को सभी मक्कार दिखे क्योंकि उसके अंदर मक्कारी भरी हुई थी, युधिष्ठिर को सभी लोग शालीन दिखे क्योंकि उनके अंदर शालीनता थी, उनके अंदर शिष्टता थी, उनके अंदर सरलता थी। सरल व्यक्ति को सभी सरल और धूर्त व्यक्ति को सभी धूर्त नजर आते हैं।

आज यही हमारे साथ हो रहा है। इस लोक में दुर्योधन की वृत्ति के लोग ज्यादा हैं, युधिष्ठिर की वृत्ति के कम। आज का प्रसंग हमें बताता है, हम अपने आप को युधिष्ठिर की प्रवृत्ति का बनाने का प्रयत्न करें, युधिष्ठिर जैसी वृत्ति अपनाने की कोशिश करें, क्योंकि जीवन का विकास युधिष्ठिर जैसे व्यक्ति को आदर्श बनाकर चलने से ही होगा। युधिष्ठिर को धर्म का प्रतीक माना जाता है तो दुर्योधन पाप का प्रतीक है। पाप को जो अपना आदर्श मानकर चलते हैं उनके

जीवन का सुनिश्चित पतन होता है और जो धर्म को अपने जीवन का आदर्श बनाकर चलते हैं, उनके जीवन के विकास का द्वार प्रतिपल खुलता जाता है। बस अपनी दृष्टि को बदलने की जरूरत है।

नजरें तेरी बदली नजारे बदल गये।
किश्ती ने बदला रूख तो किनारे बदल गये।।

नजर बदलने भर की देर है। हम थोड़ी सी नजरें बदल लें क्योंकि वस्तु वैसी नहीं होती जैसी कि हमें दिखाई पड़ती है। वस्तुतः वस्तु वैसी दिखती है जैसी कि हम देखते हैं जैसे कि हमारी आँख होती है। आँख अगर ठीक है तो सब कुछ ठीक दिखाई पड़ता है और आँख में अगर एक काला चश्मा लग जाये तो कश्मीर की हरियाली भी हमें काली दिखाई पड़ती है और अगर आंख पर हरा चश्मा चढ़ा दिया जाए तो रेगिस्तान की रेत में भी कश्मीर जैसी हरियाली देखी जा सकती है। जैसी हमारी आँख होती है, जैसी हमारी दृष्टि होती है, वैसा हमें सब कुछ देखने को मिल ज़ाता है।

रामायण की कथा पर आधारित एक बड़ा अच्छा प्रसंग है, जो व्यक्ति की दृष्टि को रेखांकित करता है। हुआ यह कि जब युद्ध पूरा हो गया, साधुवाद समारोह चल रहा था, हर व्यक्ति अपने युद्ध के संस्मरणों को बढ़ा-चढ़ाकर सुना रहा था। उस समारोह में हनुमानजी भी अपना भाषण दे रहे थे, वे अपने पौरूष और पराक्रम का वृतान्त सुना रहे थे, बढ़-चढ़कर वह अपनी बातें दे रहे थे। अपनी कथा सुनाते-सुनाते उन्होंने अशोक वाटिका का चित्रण करना शुरू कर दिया। उन्होंने कहा क्या बताऊं, अशोक वाटिका इतनी सुन्दर थी कि मैंने आज तक इतनी सुन्दर वाटिका देखी ही नहीं, बड़ी सुन्दर और बड़ी भव्य वाटिका थी, अनेक पेड़ पौधे उसमें लगे थे। सब फल-फूलों से लदे हुए थे, उसमें एक भी ऐसा पेड़ नहीं था जो निष्फल हो। मैने उन सब को तहस-नहस कर दिया, पूरी तरह से उजाड़ दिया। पर मैने वहां एक विशेषता देखी कि वहां जितने भी फूल थे सब के सब लाल थे। सीताजी ने तुरंत टोकते हुए हनुमान से कहा कि हनुमान जी आप यह क्या कहते हो कि वहां के सारे फूल लाल ही लाल थे, मुझे तो एक भी फूल लाल दिखाई नहीं दिया, सारे के सारे फूल सफेद थे। आप लाल कैसे कह रहे हैं?

हनुमान ने कहा- "माते, ऐसी बात नहीं है। मैंने अपनी आंखों से देखा है वहां के सभी फूल लाल ही लाल थे। सीताजी कहतीं हैं कि तुम तो एक दिन के लिए गए थे मैं तो लम्बे समय तक वहां ठहरी हूं। मुझे तो एक भी फूल लाल नहीं दिखाई पड़ा, सभी फूल सफेद थे। सीताजी अपनी बात पर अड़ी रहीं, हनुमानजी भी कब मानने वाले थे वो कहते रहे लाल थे, दोनों ही अपनी-अपनी बात पर अड़े रहे। रामचन्द्रजी ने दोनों की बात सुनी और कहा कि भाई झगड़ते क्यों हो, बात बिल्कुल सही है तुम दोनों सही कहते हो। यह सुन हनुमान जी ने कहा कि ऐसा कैसे होगा प्रभु सही तो कोई एक होगा या तो फूल लाल होंगे या सफेद होंगे। रामचन्द्र जी ने कहा तुम्हें इसका रहस्य नहीं मालूम मैं बताता हूं तुम सुनो। जिस समय तुम लंका गये थे तुम्हारी आंखें क्रोध से लाल हो रही थीं इसलिए सारे फूल लाल-लाल दिखाई पड़ रहे थे। और सीता का मन सात्विकता और शुक्लता से भरा हुआ था इसलिए उन्हें सारे फूल सफेद दिखाई दे रहे थे। जैसी दृष्टि होती है। वैसी सृष्टि होती है। आंखे यदि क्रोध से आरक्त हो तो हर व्यक्ति उसे क्रोधी दिखाई देता है।

हमारे अंदर यदि बुराई भरी हो तो हमें सब कुछ बुरा-बुरा दिखाई पड़ता है और यदि हमारे अंदर अच्छाई हो तो हमें सब कुछ अच्छा दिखाई पड़ता है। यह हमारे ऊपर है अपनी दृष्टि पर सब कुछ निर्भर करता है। दृष्टि की पवित्रता हमें सब तरफ पवित्रता प्रदान करती है और दृष्टि में अपवित्रता हो तो हमें सब कुछ अपवित्र दिखाई देगा। एक पवित्र हृदय वाला व्यक्ति हर व्यक्ति में पवित्रता देखता है और जिसके अंदर कलुषता भरी होती तो वह हर व्यक्ति के जीवन में अवगुण ही अवगुण देखता है। इसलिए हम कहते हैं ***"गुणीजनों को देख हृदय में, मेरे प्रेम उमड़ आवे"*** की बात आत्मसात करना है तो गुणानुरागी दृष्टि अपनाने की जरूरत है। आज व्यक्ति का अनुराग गुण के प्रति नहीं रहा, गुणवान के प्रति नहीं रहा, जहां गुणवान के प्रति हमारा चित्त प्रफुल्लित होना चाहिए वहां विद्वेष और मात्सर्य की बात उत्पन्न हो जाती है। जहां गुणवान को देखकर उसके प्रति हमें हर्षित होना चाहिए वहां उन्हें देखने के बाद व्यक्ति के मन में ईर्ष्या उत्पन्न होने लगती है। यही हमारे जीवन के विनाश का एक बहुत बड़ा कारण बनने लगता है यहीं से हमारा पतन प्रारंभ हो जाता है।

विडम्बना भी तो देखिये कि आज व्यक्ति जो कभी किसी दुराचारी व्यक्ति से किसी के मन में ईर्ष्या उत्पन्न नहीं होती, कभी किसी पापी अनाचारी गुंडे के प्रतिं किसी के मन में ईर्ष्या उत्पन्न नहीं होती, ईर्ष्या उत्पन्न होगी तो धर्मात्मा से होगी, ईर्ष्या उत्पन्न होगी तो गुणवान से होगी, ईर्ष्या उत्पन्न होगी तो प्रतिभावान से होगी, सामान्य व्यक्ति से कभी किसी को ईर्ष्या उत्पन्न नहीं होती। कैसा मानदंड है ? इसलिए मैं अब हमेशा कहता हूं कि तुम इस बात पर बहुत सावधान रहना, देख लेना यदि कोई तुम्हारा नया ईर्ष्यालु पैदा हुआ है तो अपने मन को टटोलकर देखना जरूर तुम्हारे अंदर कोई नया गुण पैदा हुआ होगा। गुणवान से ही व्यक्ति ईर्ष्या करता है, अवगुणी से कोई ईर्ष्या नहीं करता।

बंधुओ! हमारी संस्कृति तो कहती है गुणवान की कद्र करो। गुण को ग्रहण करोगे तो तुम्हारे जीवन का विकास होगा, उसके लिए अपनी दृष्टि बदलने की आवश्यकता है। यदि तुम अपनी दृष्टि में सुधार लाते हो, तो कहीं से भी गुण प्राप्त कर सकते हो। हम देखते हैं जो धूलशोधक होते हैं वो धूल में से भी सोना निकाल लेते हैं। जिस धूल को हम धूल मान कर उपेक्षित कर देते हैं उसी धूल को छांन-छान कर धूलशोधक सोना निकाल लेते हैं। यह दृष्टि की विशेषता है जिसकी दृष्टि नहीं है वह तो अपने हाथ के सोने को भी धूल में मिला देता है वह कभी उस सोने का उपयोग नहीं कर पाते। हमें अपनी दृष्टि को सुधारने की जरूरत है धूल में से भी सोना निकालने की दृष्टि, नाम है गुणानुराग वृत्ति, ऐसी वृत्ति जिसके जीवन में प्रकट होती है वह जहां भी जाता है उसे गुण ही गुण दिखाई पड़ते हैं। नीतिकारों ने दो प्रकार की वृत्ति कही है- एक मक्खी की वृत्ति, दूसरी भ्रमर की वृत्ति। मक्खी के सामने एक तरफ मिठाईयों का थाल रखा जाए दूसरी तरफ विष्ठा का वह मिठाई के थाल की उपेक्षा कर विष्ठा (मल) पर बैठना अधिक पसंद करती है, सुंदर सुवासित तेल और उत्तोमत्तम वस्त्र पर न बैठकर शरीर में फोड़ा हो तो वहां बैठना ज्यादा पसंद करती है यह मक्खी की वृत्ति है। दूसरी तरफ है भँवरा फूल पर बैठकर उसका रस चूसता है उसका मधु चूसता है वह कांटे पर कभी भूलकर भी नहीं बैठता। बस यही वृत्ति है एक भले आदमी की और एक बुरे आदमी की। जो बुरा आदमी होता है वह दुनिया की बुराई देखता है। वह मक्खी की वृत्ति का होता वह सद्गुणों के थाल की उपेक्षा करके दुर्गुणों के मल पर बैठना

अधिक पसंद करता है। लेकिन जिसके अंदर गुणानुरागी वृत्ति होती है वह भ्रमर की वृत्ति का होता है, वह जहां भी जाता है गुण ही गुण ग्रहण करता है। आखिर गुणानुरागी वृत्ति नहीं होने का कारण क्या है ? सिर्फ दो कारण हैं पहला ईर्ष्या दूसरा है मात्सर्य । ईर्ष्या और मात्सर्य के कारण व्यक्ति कभी गुणानुरागी नहीं बन पाता है। ये ईर्ष्या और मात्सर्य दो ऐसी चीजें है जो व्यक्ति को कभी किसी के गुंण को सहने नहीं देतीं। जब हमारा मन ईर्ष्या से भरा होता है, हमारे चित्त में मात्सर्य छाया होता है तो कोई किसी की कितनी भी प्रशंसा करे सामने वाला प्रशंसा करेगा और हमारे चित्त में आग लगेगी। वह अंदर ही अंदर झुलसता जाता है, कभी उस पर विचार नहीं करता और यह सब ओछी मानसिकता का प्रतिफल है। ओछी मानसिकता का अर्थ है, ऐसे जीव जिनके जीवन का कोई स्तर नहीं जिनका जीवन बड़ा उथला है, जिनके अंदर कोई गहराई नहीं वो किसी की बात को सुन नहीं सकते किसी की बात को सहन नहीं कर सकते।

ऐसे व्यक्ति ईर्ष्या में ज्यादा जीना जानते हैं। पर बंधुओ ईर्ष्या हमारे जीवन का बड़ा खतरनाक तत्त्व है। जो व्यक्ति जितना अधिक ईर्ष्या में जीते हैं, दूसरे को नीचा दिखाने का प्रयत्न करते हैं वे चाहते हैं कि येन-केन प्रकारेण सामने वाले को हम किसी भी प्रकार से मात दे दें। पर वे नीचे गिरें या ना गिरें हम तो इतना जानते हैं जो दुनिया को नीचा गिराने का प्रयत्न करता है, वह स्वयं नीचे गिर जाता है। और दूसरों को ऊंचा उठाने का प्रयत्न करता है, वह निरंतर ऊंचा उठता जाता है, एक आदमी कुआँ खोदता है, तो जितना-जितना खोदता है, वह उतना-उतना नीचे जाता है, और एक आदमी दीवाल चुनता है तो जितनी-जितनी उसकी दीवाले ऊंची होती हैं, वह स्वयं भी उतना-उतना ऊँचा उठता जाता है। जो दूसरे को गिराने की कोशिश करेगा वह उतना ही नीचे गिरता जायेगा, जो दूसरे को उठाने की कोशिश करता है वह उतना ही ऊंचा उठता जाता है। इसलिए हमारे सन्त कहते हैं कभी किसी को नीचा मत गिराओ, तुम किसी के प्रति ईर्ष्या करते हो, तुम किसी के प्रति विद्वेष करते हो, तुम्हारे मन में किसी के प्रति जलन और कुढ़न पैदा होती है, तो ये कोई जरुरी नहीं कि तुम उसका अहित कर सको, पर उस क्षण तो तुम अपने आप का अहित कर ही रहे हो, उस क्षण तो तुम अपने आप का विनाश कर ही रहे हो तुम अपने खून को तो जला ही रहे हो।

बन्धुओ ईर्ष्या में जीने वाले व्यक्ति का ऐश्वर्य छिन जाता है जो व्यक्ति ईर्ष्या में जीते हैं वह ऐश्वर्यहीन होते हैं। आचार्य कुन्दकुन्द ने अपने तिरुकुरल नामक ग्रन्थ में बड़ी अच्छी बात की है। यह ग्रन्थ बड़ा अलौकिक ग्रन्थ है, इसे तमिल का वेद माना जाता है। इस ग्रन्थ में लिखा है कि

"जो व्यक्ति ईर्ष्या करते हैं, उसके घर से लक्ष्मी चली जाती हैं, और वह अपनी छोटी बहन दरिद्रता को उनकी देख रेख के लिए छोड़ जाती है।"

कितनी बड़ी बात कही गई। लक्ष्मी चली गई और अपनी छोटी बहन दरिद्रता को तुम्हारी देख-रेख के लिए छोड़ गई, जीवन का विकास वहीं समाप्त हो जाता है।

अपने ऐश्वर्य का विकास करना चाहते तो, तो ईर्ष्या पर अंकुश लगाने की जरुरत है। पर आज ईर्ष्या की बहुलता होती जा रही है। दो प्रकार के लोग होते हैं- कुछ लोग ईश्वर में आस्था रखकर जीने वाले होते हैं, कुछ लोग ईर्ष्या की आग में जलने वाले होते हैं। ईर्ष्या की आग में जलने वाले व्यक्ति का जीवन हमेशा विनाश की ओर जाता है और ईश्वर पर आस्था रख कर चलने वाले व्यक्ति का जीवन हमेशा ऐश्वर्यमय बनता जाता है। वह अपनी भीतरी समृद्धि दिनोंदिन विकसित करते जाते हैं। उनकी चेतना का दिनों दिन विकास होता जाता है इसलिए आज व्यक्ति को ईर्ष्या से बचने की कोशिश करना चाहिए।

समकक्ष व्यक्ति के प्रति मन में ईर्ष्या होती है। आज विद्वान की विद्वान से ईर्ष्या होती है, साधु की साधु से ईर्ष्या होती है, भाई-भाई से ईर्ष्या करता है, पड़ोसी की पड़ोसी से ईर्ष्या होती है, जो जिसके जितने अधिक करीब है वह उससे उतना ही अधिक ईर्ष्या करता है और उस ईर्ष्या का कभी-कभी तो ऐसा उल्टा परिणाम होता है कि उसे जीवन भर पछताना पड़ता है।

एक बार एक श्रीमंत के यहाँ दो विद्वान पधारे। दोनों बड़े ख्यातिप्राप्त थे। श्रीमंत ने उनका बड़ा अच्छा आतिथ्य किया। रात भर सोने के बाद जब सुबह उठे, एक विद्वान अपनी नित्य क्रिया से निवृत होने के लिए गये तो सेठजी ने सोचा समय का सदुपयोग करना चाहिए। उन्होंने दूसरे विद्वान से पहले विद्वान की प्रशंसा शुरू कर दी और कहा "पंडित जी हमने सुना है कि डाक्टर साहब बड़े विद्वान

हैं, बनारस में बड़ा नाम है उनका, पी.एच.डी. भी की है अनेक पुस्तकों के सम्पादक हैं, कई लोगों को उन्होंने अपने निर्देशन में पी.एच.डी. की उपाधियां भी दिला दी हैं, और बहुत अच्छा प्रवचन भी देते हैं, बड़ा गहरा ज्ञान है, बड़े अनुसंधाता हैं, क्या विचार है आपका? इतना सुनना था कि उनका चेहरा बदल गया। एक विद्वान दूसरे विद्वान की प्रशंसा सुन ले तो वह विद्वान कैसा ! उसने कहा ''क्या बोलते हो साहब चार किताबें क्या पढ़ लीं और लोगों को मूर्ख बनाता है। पी.एच.डी. क्या की उसने तो नकल की है। दस किताबों के अंश निकाल कर एक नई किताब बना ली। आपको पता नहीं किसी एक पुस्तक का कोई अंश निकालना साहित्यिक चोरी है और दस पुस्तक के अंश निकाल कर ग्यारहवीं पुस्तक बनाना शोध है पी.एच.डी. है। उसे बिल्कुल कुछ आता जाता नहीं है। आप बुद्धू मत बनो वह तो निरा बैल है।''

श्रीमंत को सुनने में तो अच्छा नहीं लगा पर वे बड़े पहुँचे हुए थे उनने सब कुछ सुन लिया। इस बीच वे विद्वान फ्रेश होकर आ चुके थे। अब इनकी बारी थी। वह फ्रेश होने के लिए गये। श्रीमंत ने दूसरे विद्वान की प्रशंसा करना शुरू कर दी-पंडितजी हमने सुना है कि पंडितजी की बड़ी अच्छी पकड़ है, संस्कृत और न्याय में पारंगत हैं काशी में उनका बड़ा नाम है उनके पढ़ाए हुए अनेक शिष्य बड़े बड़े पदों पर आसीन हैं। देश में बहुत सारे विद्वान उनके नाम से जलते हैं। आपका क्या ख्याल है उनके संबध में? विद्वान ने कहा-"कहाँ की बात सुन ली भैया, यह सब तो दुनिया को बुद्धू बनाने के चक्कर हैं। उसको कुछ आता जाता नहीं, वह आदमी निपट गधा है।"

एक निरा बैल दूसरा निपट गधा, अब तक दूसरे पंडित जी भी फ्रेश होकर आ गये थे। जब दोनों बैठ गये सेठ जी को अब दोनों के लिए नाश्ता लेने जाना था तो सेठजी एक टोकने में भूसा और एक टोकने में घास लेकर उनके सामने प्रस्तुत हो गए। उन्होंने कहा-"पंडितजी इन्हें स्वीकार कीजिए।" यह देखना था कि दोनों आग बबूला। श्रीमंत ने जबाब दिया कि, ''पंडितजी इसमें मेरा कोई अपराध नहीं। आज तक मैंने पंडितों के वचनों को प्रमाण माना है और हमेशा पंडितों की ही बात को मान कर चला हूँ। मैंने अपनी तरफ से कुछ नहीं किया। आप में से एक ने दूसरे को बैल बताया, दूसरे ने एक को गधा बताया तो मैंने सोचा बैल के

लिए भूसा और गधे के लिए घास से बढ़ कर अच्छा और कौन सा नाश्ता हो सकता है।" दोनों का मुंह उतर गया।

यह ईर्ष्या का परिणाम है। व्यक्ति जब किसी के प्रति ईर्ष्या करता है, तो ऐसी ही स्थिति हो जाती है। कभी उसको स्वयं ही मुँह की खानी पड़ जाती है, खुद अपनी ही नजरों में वह गिर जाता है। स्वयं को नीचा गिरा देता है। इसलिए व्यक्ति को सम्हलने की जरूरत है। ईर्ष्या बड़ा खतरनाक रोग है, जो व्यक्ति को अंदर से खोखला कर देता है। जब व्यक्ति के मन में किसी के प्रति ईर्ष्या उभरती है, तो उसकी सोच को कुंठित कर देती है। उसके विवेक को खत्म कर देती है। ईर्ष्या के कारण व्यक्ति अपना सब कुछ नष्ट करने पर भी तुल जाता है। उसकी ईर्ष्या बढ़ते हुए मात्सर्य का रूप धारण कर लेती है। और जब व्यक्ति के ऊपर मात्यर्स हावी होता है वह अपना ही सर्वनाश करने को तैयार हो जाता है। मेरा सब कुछ नष्ट हो जाए तो हो जाए, पर उसका विकास नहीं होना चाहिए। ऐसी वृत्ति जन्म ले लेती है। अपना सर्वनाश भले ही कर ले लेकिन दूसरे का विकास नहीं देख सकता। इससे जघन्य सोच और क्या हो सकती है। पर यह ऐसी ही सोच है, जो हमारे जीवन के विनाश का कारण बनती है।

ईर्ष्या का उदाहरण मैंने आपको बताया। मात्सर्य का भी बहुत पुराना किस्सा मैंने पढ़ा कि एक लोभी था दूसरा मत्सरी। दोनों ने एक बार एक देवी की आराधना की। आराधना से देवी प्रसन्न हुई और प्रकट होकर बोली, "कि तुम दोनों की आराधना से मैं प्रसन्न हूँ। माँगो क्या चाहते हो पर एक शर्त है तुम दोनों में से जो पहले माँगेगा दूसरे को मैं उससे दुगुना दूँगी। इतना सुनना था कि लोभी ने सोचा यह तो बड़ा गड़बड़ हो जावेगा। मैं अगर पहले माँगता हूँ तो सामने वाले को दुगुना मिल जावेगा, तो ये मुझे सहन नहीं होगा। वह एकदम चुप हो गया कि माँगने दो इसको पहले। और मत्सरी ने सोचा कि यह कैसे होगा, मैं पहले मागूँगा तो वह आगे निकल जावेगा, यह मुझसे सहन नहीं होगा। थोड़ी देर प्रतीक्षा के बाद दोनों ने कुछ नहीं बोला तो देवी झल्लाती हुई बोली कि "तुम लोगों को माँगना है तो मांगो नहीं तो मैं चली।" तब मत्सरी सोचता है अच्छा यह लोभी, लोभ के कारण पहले नहीं मांग रहा है। ठहरो! इसके लोभ का मजा चखाता हूं और उसने देवी से कहा क्या तुम ठीक कहती हो कि जो पहले मांगेगा दूसरे को उससे दुगना दूंगी "हां मैं बिल्कुल दुगना दूंगी।" तो उसने कहा ठीक है देवी यदि तुझे मुझसे

दुगना देना है तो ऐसा करदे मेरी एक आंख फोड़ दे और मेरे घर के बाहर एक कुंआ खोद दे। इतना सुनना था कि लोभी देवी के चरणों में गिर पड़ा माता ऐसा मत करना क्योंकि इसकी एक आंख फूटेगी तो मेरी दोनों ही फूट जायेगी और घर के बाहर यदि दो कुंए खुद जायेंगे तो मेरा क्या होगा। इसलिए मेरे साथ ऐसा कभी नहीं करना लेकिन देवी ने कहा तुम्हें तुम्हारी करनी का फल मिल गया अब मैं कुछ नहीं कर सकती। और कहते हैं उसने तथास्तु कहा। इसकी एक आंख फूटी, एक कुंआ खुदा, उसकी दोनो आंखें फूट गयी। दो कुंए खुद गए।

ये हमारी परिणति है। पता नहीं इस कथा में कल्पना है या सच्चाई पर इसका कथन सौ फीसदी सत्य है। इसकी सच्चाई पर कोई संदेह नहीं किया जा सकता ऐसा ही तो होता है कि आदमी दूसरे नुकसान के लिए अपना बड़ा नुकसान सहने को भी तैयार हो जाता है पर दूसरे का नुकसान हो यह हमारी ओछी प्रकृति का परिणाम हैं। जब व्यक्ति गुणानुरागी वृत्ति अपनाता है तो इन सारी वृत्तियों पर विजय पाने में उसे सहज सुविधा हो जाती है। यह गुण पूजा की जो बात की गई है वह सिर्फ इसलिए की गई है कि व्यक्ति गुणानुरागी बने जितना-जितना गुणानुरागी बनेगा उसकी अंदर की ईर्ष्या उतनी-उतनी कम होगी उसके गुणों का उतना-उतना विकास होता जायेगा और जितने-जितने गुणों का विकास होगा जीवन का स्तर उतना-उतना ऊंचा उठता जायेगा हम अपने गुणों के विकास के बारे में सोचें। निरंतर हमारी ये कोशिश होनी चाहिए कि हमारे गुण विकसित होते जायें।

संस्कृत में एक कहावत है *"यत्र ध्यायते तद्र भवतिः"* व्यक्ति जैसी भावना भाता है वैसा उसका जीवन बनता है। आज का मनोविज्ञान भी ये बात कहता है कि हम जैसा सोचते हैं हमारे अवचेतन मन पर वैसे संस्कार बन जाते हैं और वे संस्कार ही हमारे जीवन का निर्माण करते हैं। जैसे हमारे संस्कार बनते हैं वैसा जीवन जीने के लिए हमें मजबूर होना पड़ता है। एक व्यक्ति यदि अवगुण तलाशता है, तो उसके अंदर अवगुणों के संस्कार हावी हो जाते हैं और एक व्यक्ति यदि गुणों की उपासना करता है, तो उसके चित्त चेतना में गुणों के संस्कार विकसित हाने लगते हैं। गुण के संस्कार जीवन में जम जाते हैं। जब जीवन में गुणों के संस्कार जमने लगते हैं तो व्यक्ति के जीवन का विकास अपने आप होता जाता

है। इसलिए कहा गया है अपने गुणों का विकास करने प्रयत्न करो, निरन्तर गुणों को बढ़ाने का प्रयास करो। अवगुण हमारे जीवन में न आयें अवगुण की तरफ यदि तुम्हारा ध्यान जाएगा तो अवगुण ही अवगुण मिलेंगे और गुण की तरफ तुम्हारा ध्यान जायेगा तो गुणों के फूल खिलते रहेंगे। इसलिए हमेशा गुणों की तरफ ध्यान रखो अवगुण की हमेशा उपेक्षा करो। किसी के अवगुण देखने की कभी कोई कोशिश मत करो और कहीं यदि गुण दिख जायें तो अपनी आंखों को मूंदने का प्रयत्न मत करो, गुण दिखे उसे सहज स्वीकार करो, अवगुण दिखें उसकी उपेक्षा कर दो। पर आज तो व्यक्ति को गुण दिखता है तो देखा नहीं जाता अंदर ही अंदर जलता रहता है। तुम्हारे जलने से क्या होगा, किसी का गुण छिप जायेगा क्या? अगर फूल है वह खिला है तो उसकी सुरभि फैलेगी, उसकी महक वातावरण में घुलेगी ही तुम्हारे द्वारा कितनी भी नाक भौं सिकोड़ने से कोई फर्क नहीं पड़ेगा। अगर फूल अपनी सुरभि लुटा रहा है, तो फूल का क्या कसूर, फूल की क्या कमी, कमी तो तुम्हारे नाक की है, यदि तुम्हारी नाक में वह सहन नहीं होती तो नाक के आगे रूमाल रख लो, पर फूल को कोसने की कोशिश मत करो। गुण का सत्कार कर सकते हो तो करो, पर गुणी का तिरस्कार तो मत करो, क्योंकि यदि तिरस्कार करोगे तो तुम्हारे अंदर के गुण भी निकल जायेंगे। हमारी भारतीय परंपरा में कहा गया, गुण को देखो और ऐसे वैसे न देखो।

परगुण परमाणुनमपि पर्वती कृत्य नित्यं।
निजहृदि विकसन्तः सन्तः सन्ति कियन्तः।।

जो दूसरों के परमाणु बराबर गुण को भी अपने हृदय में विकसित करते हुए सुमेरू के बराबर कर देते हैं, ऐसे सन्त कितने हैं। एक परमाणु बराबर भी अगर किसी का गुण है, उसे विकसित करके मेरू के बराबर बना देने वाले सन्त कितने हैं बहुत थोड़े हैं। पर जो हैं महत्व उन्हीं का है, ऐसे लोग बहुत थोड़े हैं। आज ऐसे लोगों की बहुलता है जो किसी का थोड़ा सा दोष देखते हैं और उसको राई का पहाड़ बना देते हैं। थोड़ा सा दोष देखा और उसे प्रचारित कर दिया उसे फैला दिया। आज व्यक्ति को जब किसी की कोई कमी मालूम पड़ती है तब वह जब तक उसे फैला नहीं देता, तब तक उसको चैन नहीं पड़ती। एक बार ऐसा हुआ तीन विद्वान इकट्ठे हुए, तीनों एक दूसरे से अपनी कमजोरी बताने लगे।

बहुत कम होता है कि विद्वान-विद्वान से मिले और अपनी कमजोरी व्यक्त करे। पहले ने कहा क्या बताऊं मैं बहुत अच्छा प्रवचन देता हूं, लोग मुझसे बड़े प्रभावित होते हैं, पर मेरी एक कमजोरी है कि मैं जितनी अधिक त्याग की बात करता हूं मेरे अंदर विलासिता के प्रति उतना ही राग बढ़ता जाता है, मेरा चित्त बहुत विलासी है। मैं भोग और वासना से अपने आप को बचा नहीं पाता विलासिता से बच ही नहीं सकता, ये मेरी बहुत बड़ी कमजोरी है। दूसरे ने कहा क्या बताऊं मेरी भी एक बहुत बड़ी कमजोरी है, जब तक मुंह में तम्बाकू नहीं दबाता उपदेश देने का मूड ही नहीं बनता, और जब मैं तम्बाकू दबा कर उपदेश देता हूं तो सारी जनता को भाव विभोर कर देता हूं। दोनों की बात को सुनकर और तीसरा अपना पेट पकड़कर के जाने लगा, दोनों ने कहा "भैया तुम कहां जा रहे हो" ? तीसरा बोला ठहरो मैं अभी आता हूं। वे बोले ठहरो तुम अपनी कमजोरी तो बताओ, वह बोला अभी मैं आता हूं। जब वह जाने ही लगा तो दोनों उसके पास पहुंचे और बोले तुम अपनी कमजोरी तो बताओ, वह बोला मेरी बस एक ही कमजोरी है, बहुत बड़ी कमजोरी है, जब मैं किसी की कमजोरी को सुनता हूं तो उसे जब तक दूसरों को नहीं बताता तब तक मेरे पेट में दर्द होने लगता मैं अभी सब को बताकर आ रहा हूं, फिर सब बात समझना मेरे पेट में बड़ा तेज दर्द हो रहा है। आज व्यक्ति की स्थिति ऐसी हो गई है, किसी की कमजोरी सुन लेने के बाद जब तक उसे चार को सुना नहीं देता तब तक पेट में दर्द रहता है। ये ठीक वृत्ति नहीं है, ऐसे व्यक्ति धार्मिक व्यक्ति की श्रेणी में कभी नहीं आ सकते। जो व्यक्ति धार्मिक होता है वह तो हमेशा गुणों की उपासना करता है अवगुणों की उपेक्षा करता है क्योंकि वह गुणों का ग्राहक है।

आप बाजार में निकलते हो, अनेक चीजें मिलती हैं पर आपका ध्यान उधर नहीं जाता है घर से आप कोई चीज खरीदने को निकले हो आप को अगर कोई क्रॉकरी खरीदनी है, तो आप कपड़े की दुकान की ओर अपनी दृष्टि नहीं दौड़ाते हैं। आप तो जब बाजार में निकलोगे तो क्रॉकरी की ही दुकान पर जाओगे और क्राकरी की दुकान पर और चीजों को नहीं देखोगे, आप तो सिर्फ उसी को देखोगे जो आपको खरीदनी है। जिस चीज की आपको जरूरत है, आप उस तरफ अपना ध्यान दौड़ाते हैं और जिस चीज की आपको जरूरत प्रतीत नहीं होती, उस

चीज की ओर आपका ध्यान नहीं जाता। यदि तुम अपने गुणों का विकास करना चाहते हो तो फिर गुणों को देखो धर्मात्मा व्यक्ति कभी भी अवगुणों की ओर अपनी दृष्टि नहीं ले जाता वह सिर्फ गुणों का ग्राहक होता है। गुण की तरफ उसकी ऐसी दृष्टि होती है, जैसे चुम्बक की तरफ लोहा आकर्षित होता है, ऐसे ही जहाँ गुण दिखाई पड़ता है वह उसी तरफ आकर्षित होता है और जहाँ गुण दिखाई नहीं देते वह वहां देखता भी नहीं है। गुण पूजा का सिर्फ इतना ही अर्थ है।

भारतीय संस्कृति जो कहती है सामान्य व्यक्ति के गुण देखने की बात तो है ही तुम यदि शत्रु के प्रति भी देखो तो गुण देखो। शत्रु से भी गुण ग्रहण करो। कितनी उदार दृष्टि है। यह उसी के जीवन में प्रकट हो सकती है जो अन्दर से उदार है। *"शत्रोरपि गुण वाच्याः"*। रामायण का एक प्रेरक प्रसंग है, जब रावण मरणासन्न था तो रामचन्द्र जी ने लक्ष्मण से कहा कि ''लक्ष्मण, रावण बहुत बड़ा नीतिज्ञ रहा है जाओ उससे तुम कुछ गुण ग्रहण करो, कुछ नीतियां सीख लो।'' लक्ष्मण जी एकदम बौखला गए कि ''भैया आप यह क्या कह रहे हो ? उस अभिमानी रावण के पास कोई गुण होगा जो मैं उससे लेने जाऊं।" रामचन्द्र जी ने समझाया "लक्ष्मण अब वह अभिमानी नहीं और अब वह हमारा शत्रु भी नहीं अब तो वह नीतिनिपुण और मरणासन्न राजा है। जाओ तुम उससे गुण ग्रहण करके आओ।" इतनी उदार दृष्टि थी रामचन्द्र जी की। रामचन्द्र जी के कहने पर लक्ष्मण गये और रावण के सिर पर खड़े होकर बोले कि "भैया कहते हैं, तुम्हारे पास बहुत गुण है, मुझे दे जाओ मैं तुमसे लेने आया हूं, अब तुम्हें तो यहां से जाना ही है। अकड़कर जब लक्ष्मण ने कहा तो रावण ने उसकी ओर आंख उठा कर भी नहीं देखा। लक्ष्मण लौट आए और बोले "भैया ! मैंने पहले कहा था रस्सी जल जाती है पर उसकी ऐंठ नहीं जाती। वह अभिमानी गुण बताने की बात तो दूर मेरी तरफ आंख उठाकर भी नहीं देखा।" रामचन्द्र जी ने कहा – लक्ष्मण भूलते हो अभिमानी वह नहीं, अभिमानी तुम हो। अगर किसी से कुछ ग्रहण करना है, तो शिष्य बनकर जाओ विजेता बनकर नहीं।" लक्ष्मण को बात समझ में आ गई इस बार लक्ष्मण रावण के चरणों पर पहुंचे और उनसे कहा ''भैया श्रीराम ने आपके पास मुझे भेजा है आप इस स्थिति में मुझे सारी नीतियां का ज्ञान दीजिये जो मेरे काम में आयेंगी।'' इस बार रावण ने निःसंकोच अपनी सारी नीतियां दे

दी। कथा का अपना विस्तार है, पर मैं सिर्फ यह कहना चाह रहा हूं कि ***"शत्रोरपि गुण वाच्याः"*** इस नीति को अपनाकर अपने चिन्तन को उदार बनाओ तभी गुण ग्रहण की उदार वृत्ति जागृत हो सकेगी।

'वाणी वीणा बनें'

गृहस्थ की तीसरी विशेषता है मधुर सम्भाषण। हमें वाणी मिली है, हम इसका निरंतर उपयोग तो करते हैं किन्तु इसके महत्व को नहीं समझते। इसका यथार्थ मूल्यांकन नहीं करते। संसार में अनन्त एकेन्द्रिय जीव हैं जिनके पास वाक् शक्ति नहीं है। दो, तीन और चार इन्द्रिय वाले कीड़े-मकोड़े आदि जीवों के पास वाक् शक्ति तो है पर उसकी अभिव्यक्ति का कोई माध्यम नहीं है। पशु-पक्षियों के पास भी वाणी है, पर हमें उसका अर्थ बोध नहीं होता। एक मनुष्य ही ऐसा प्राणी है जिसके पास वाणी तो है ही, उसकी अभिव्यक्ति के लिए भाषा भी है, यह बड़े पुण्यों का फल है। अनन्त जन्मों का पुण्य जब फलता है, तब मानव पर्याय मिलती है। मानव पर्याय को पाने के बाद भी बहुत से ऐसे भी लोग हैं जो मूक हैं, अपने भावों को अभिव्यक्त नहीं कर पाते। वे अपने भावों को एक-दूसरे के पास तक पहुंचा नहीं सकते। हम लोग बड़े ही भाग्यवान हैं, हमारे प्रबल पुण्यों का उदय है जिससे हमें, वाणी और भाषा मिली है, शब्द सम्पदा मिली है जिसके बल पर हम अपनी बात को दूसरों तक पहुंचा सकते हैं। नीतिकारों ने लिखा है -

संसार कटुक वृक्षस्य द्वे फलें अमृतोपमे।
सुभाषितं च सुस्वादु संगति सुजनै जनैः।।

संसार के कड़वे वृक्ष में दो ही फल अमृतोपम हैं। वह है सुभाषित-मधुर सम्भाषण और सुसंगति।

जुबान प्राप्त करना महत्वपूर्ण नहीं है। महत्वपूर्ण है उसे सार्थकता प्रदान करना। वाणी की मिठास ही वाणी की सार्थकता है। वाणी की मधुरता पूरे वातावरण में समरसता घोल देती है। यही कारण है कि प्रत्येक सद्गृहस्थ यह भावना भाता है –

फैले प्रेम परस्पर जग में मोह दूर ही रहा करे।
अप्रिय कटुक कठोर शब्द नहीं कोई मुख से कहा करे।।

प्रेम के लिए वचनों की मधुरता अनिवार्य है। वचनों की मधुरता प्रेम का साम्राज्य स्थापित करती है तो वाणी की कड़वाहट शान्त वातावरण में भी कड़वाहट घोल देती है। वचनों के सामर्थ्य से अशान्त वातावरण को भी शान्त किया जा सकता है, तो वचन के माध्यम से ही शान्त वातावरण भी खौल उठता है। हमने सुना है कि महाभारत भी वचनों के कारण ही हुआ था – द्रौपदी के ये वचन कि ***"अन्धों के अंधे ही होते हैं"*** दुर्योधन के हृदय में चुभ गये, परिणाम महाभारत हुआ। जिह्वा में अमृत भी है और जहर भी है। जिह्वा की मधुरता वाणी को आकर्षक बनाती है। ऐसे लोगों की वाणी में ऐसा आकर्षण उत्पन्न होता है कि सभी पर अपना जादू सा असर छोड़ती है। एक ही आवाज में हर व्यक्ति भीतर तक प्रभावित हो जाता है। एक ही आवाज में लाखों लोग अपनी जान न्यौछावर करने तैयार हो जाते हैं। हर व्यक्ति उसका प्रशंसक, अनुगामी और हित चिन्तक बन जाता है। वाणी में ऐसी सामर्थ्य है कि वह पानी में आग लगा दे। वाणी एक ऐसा वशीकरण है जो लाखों को एक साथ जोड़ देती है, तथा वाणी ही एक ऐसी शक्ति है जो लाखों की तोड़ भी देती है। एक आवाज पर लाखों का संहार हो जाता है तो एक आवाज पर लाखों के संहार को रोका भी जा सकता है। नीतिकारों ने कहा है –

जिह्वा में अमृत बसे, विष भी तिसके पास।
इक बोले तो लाख ले, इकते लाख विनाश।।

जिह्वा से अमृत भी उड़ेला जा सकता है, तो जीभ से जहर भी उगला जा सकता है।

वचन महत्वपूर्ण नहीं हैं। महत्वपूर्ण है वचन से जुड़े संदर्भ और अभिप्राय। हम किस संदर्भ में क्या बोल रहे हैं, कैसे शब्दों का चयन कर रहे हैं ? हमें इसका ध्यान रखना चाहिए। एक अंग्रेजी विचारक ने लिखा है -

"The first ingredient in conversation is truth, the next good sense, the third good honour and the fourth wit"

किसी बातचीत के चार महत्वपूर्ण बिन्दु हैं। पहला उसमें सच्चाई हो, दूसरा उसमें से अर्थ निकले, तीसरा सूझबूझ हो तथा चौथा वाक् चातुर्य।

हमें अपनी प्रत्येक प्रवृत्ति पर निगाह रखनी चाहिए। अंग्रेजी में एक शब्द है वॉच (watch) हम अपनी प्रत्येक प्रवृत्ति को वॉच करें। watch का बड़ा सार्थक अर्थ है - यह हमें अपनी प्रत्येक प्रवृत्ति पर निगरानी रखने की प्रेरणा देता है।

W - Watch your word — अपने शब्दों का हमेशा निरीक्षण करो।
A - Watch your action — अपनी प्रवृत्ति का निरीक्षण करो।
T - Watch your thought — अपने विचारों का निरीक्षण करो।
C - Watch your character — अपने चरित्र का निरीक्षण करो।
H - Watch your habit — अपनी आदतों का निरीक्षण करो।

धर्म का सार सिर्फ इतना ही है। इस एक शब्द के गर्भ में जीवन के रूपान्तरण का विज्ञान छिपा है। एक शब्द में इतना सामर्थ्य .... हम समझ नहीं पाते।

हमें अपनी वाणी पर सदैव अंकुश रखना चाहिए। संत कहते हैं - बोलो पर बोलने से पूर्व विचार कर लो। जो व्यक्ति बोलने से पूर्व विचार करता है उसे फिर कभी पुनर्विचार नहीं करना पड़ता। और जो व्यक्ति बिना विचारे बोल देता है उसे जीवन पर्यन्त विचार करने को बाध्य होना पड़ता है। वह पूरे जीवन पछताता रहता है।

एक पढ़े लिखे नवयुवक की शादी गांव की एक अनपढ़ लड़की से हुई। लड़का ज्यादा पढ़ा-लिखा था। वह अपने आपको कुछ अधिक advance मानता था। लड़की की पहली विदा हुई, वह अपने मायके पहुंची। पत्नी के वियोग में

व्याकुल लड़का बिना पूर्व सूचना के अपने ससुराल पहुंच गया। पहुंचते ही उसने कहा

"मैं आज पत्नी को लेने के लिए आया हूं और कल ही मैं यहाँ से चला जाऊंगा। कल आपको विदा करना है।"

लड़के की सास ने जैसे ही इस अप्रत्याशित बात को सुना वह सिहर उठी, बोली – "अभी-अभी आये हो, चार दिन हुए नहीं और बेटी को ले जाओगे? फिर अभी तो तुम्हारे ससुर भी यहाँ नहीं हैं, मैं कैसे विदा करूंगी। कोई है ही नहीं।"

"–मैं तुम्हारे इन दक़ियानूसी विचारों से बिल्कुल सहमत नहीं हूँ। मैं आज आया हूं और कल जाऊंगा। कल तुम्हें अपनी बेटी को विदा करना पड़ेगा।" दामाद ने अशिष्टता से जबाव दिया।

दामाद के इस जवाब से सास को भी थोड़ा गुस्सा आ गया। यद्यपि सास को थोड़ा संयम रखना था पर वह अपने आपको संभाल नहीं सकी और उसने आवेश में कहा

"देखो ! ज्यादा बातें मत बनाओ, अब कोई क्या कहेंगा ? विदाई के लिए सामान तक नहीं है। इसके पिताजी को आ जाने दो, सामग्री आ जायेगी, फिर मैं दो दिन बाद विदा कर दूंगी। आप भी रूको दो दिन में क्या बिगड़ जाता है ? दामाद का क्रोध और बढ़ गया उसने बेरूखी से कहा– "कल विदा करना है तो विदा करो नहीं तो मैं तुम्हारी बेटी को यहां छोड़कर चला जाऊंगा।" जबाब सुनकर सास ने भी अपना आपा खो दिया और उसने कहा "तुझे जाना है तो चला जा, मैं समझ लूंगी कि मेरी बेटी विधवा हो गई।"

इतना सुनना था कि दामाद आग-बबूला हो गया और उसने कहा– "ठीक है अगर तू समझती है कि तेरी बेटी विधवा हो गई तो अब मैं तेरी बेटी को विधवा करके ही छोडूंगा।" वह आंगन से तीर की तरह भागा और कुंए में कूंदकर अपनी जान दे दी।

ये है वाणी का असंयम, उसने अपनी बेटी को विधवा बना ही दिया। एक बात जब व्यक्ति को लग जाती है तो एकदम हृदय में बींध जाती है इसलिए हमेशा संतुलन रखना चाहिए। कहा गया है–

"मधुर वचन हैं औषधिं कटुक वचन हैं तीर।
कर्णद्वारतै संचरै, साले सकल शरीर।।

कि एक वचन है जो औषधि का कार्य करता है और एक वचन है जो तीर की तरह हृदय को चीर देता है।

वचनों का हमारे विचारों पर बहुत प्रभाव पड़ता है। एक वाक्य जो आदमी सुनता है, उसकी जो प्रतिक्रिया होती है आदमी को न जाने कितना अधिक विचलित कर देता है। जैसे किसी शांत सरोवर में एक ढेला फेंका जाये तो उसमें एक के बाद एक वलय उत्पन्न होते-होते पूरे तालाब में छा जाते हैं। ऐसे ही एक-एक वाक्य हमारे कान में घुसता है पर न जाने हमारे चित्त में कितने तरंग उत्पन्न कर देता है और व्यक्ति को कुछ भी करने के लिए बाध्य कर देता है। इसलिए कहते हैं वाणी का घाव बाण के घाव से भी गहरा होता है। बाण का घाव भर सकता है लेकिन वाणी का घाव कभी नहीं भर सकता। किसी को किसी अस्त्र से चोट पहुंचा दी जाये तो वह भर सकता है, उसका दाग भी मिट सकता है, पर किसी के मन पर यदि कोई चोट पहुंच जाती है तो फिर वह कभी नहीं भरता। जीवन भर क्या, जन्म जन्मांतरों तक बैर बंध जाता है। एक वाक्य से न जाने व्यक्ति कितने जन्मों में बैर बांध लेता है। ऐसी कथायें हम हमेशा पढ़ते और सुनते आये हैं। ये वाणी की ताकत है इसलिये हमारे आचार्यों ने कहा कि यदि तुम्हें वाणी की शक्ति प्राप्त हुई है तो उसमें लोच रखो। वाणी में लचीलापन होना चाहिए।

आपने कभी विचार किया दांत तो कड़े हैं और जीभ कोमल है। इसका अर्थ क्या है ?

कुदरत को नापसंद है सख्ती जुबान में।
इसलिये नहीं दी है हड्डी जुबान में।

जुबान में हड्डी नहीं है। इसका अर्थ है लोच रखो, जुबान ज्यादा सख्त मत करो, सख्त करोगे तो सब गड़बड़ हो जायेगा। चीन का दार्शनिक कन्फ्यूसियस जब मरणासन्न था तो उसके शिष्यगण उसे घेरे हुए थे। उन्होंने कहा कि गुरुदेव

जाते-जाते कोई अंतिम शिक्षा हम सबको देते जाइये। कनफ्यूसियस बड़े ऊंचे दर्जे के दार्शनिक थे, उन्होंने अपना मुख खोला और अपने शिष्यों से पूछा- "बताओ मेरे मुंह में क्या है?" शिष्यों ने कहा- आपके मुख में जुबान है, एक भी दांत नहीं है।" कनफ्यूसियस ने पूछा कि क्या इसका कारण बता सकते हो? सारे शिष्य एक दूसरे का मुंह ताकते रहे उनसे कोई उत्तर न सूझा, क्या कहें सिर्फ जुबान है दांत क्यों चले गये। उनसे बोलते नहीं बना। जब सब निरुत्तर हो गये तो कनफ्यूसियस ने कहा "देखो दांत बाद में आये और पहले चले गये। जीभ पहले आई और अभी तक बनी है। इसका सिर्फ एक ही कारण है दांत में कठोरता है, कड़ापन है इसलिए दांत पहले चले गये। जीभ में लोच है, इसलिए जीभ आज भी बनी हुई है। यही मेरा तुम्हारे लिये अंतिम संदेश है कि जितना बने विनम्र बनो, सरल व्यवहार रखो और अपनी जिव्हा में भी हमेशा लचीलापन बनाये रखो। यदि अपनी जीभ में सख्ती रखोगे तो तुम समाज में कभी स्थापित नहीं हो सकोगे और यदि तुम मानव समाज में हमेशा के लिए स्थापित होना चाहते हो तो अपनी जीभ में लोच लाने की आवश्यकता है। अपनी जिव्हा को हमेशा लचीली बनाये रखने की आवश्यकता है।"

ये कन्फ्यूसियस का संदेश था। यही संदेश हम सबके लिए है कि जीभ को लचीली बनाओ। पर न जाने ये जीभ कितनी पैनी बन जाती है और कभी-कभी तो बहुत ज्यादा घातक बन जाती है, उसके दुष्परिणाम हम लोगों को सामने देखने को मिलते हैं। और व्यक्ति हमेशा-हमेशा को मजबूर हो जाता है।

प्रश्न उठता है कि हम सुनते तो रोज हैं कि अपनी वाणी में संयम रखें, अपनी वाणी में मिठास लायें, पर वह मिठास आ क्यों नहीं पाती ? जब तक उस कारण की समीक्षा हम नहीं करते, तब तक हम कभी अपने जीवन में परिवर्तन नहीं ला सकते।

मैं रोज-रोज आपसे कहूं कि भाई अपने को बहुत मधुर बात बोलनी चाहिए ! पर इतना कहने मात्र से काम नहीं होगा। जब तक कि हम इस पर विचार नहीं करें कि हमारे मुख में कड़वाहट आती कहां से है। पांच कारणों मे आदमी अप्रशस्त वचनों का प्रयोग करता है (१) क्रोध (२) लोभ (३) भय

(४) मजाक (५) आदत। ये पांच कारण हैं जिनके कारण आदमी अपने मुख से वह शब्द निकाल देता है, जिसे उसे कभी नहीं निकालना चाहिए।

जब आदमी क्रोधाविष्ट होता है तो वह आपे से बाहर आ जाता है, उसे कुछ भी होश नहीं रहता। तम-तमाया रहता है, न जाने क्या बोल देता है, पर शांत दिल से वह विचार करे तो वह खुद पछताये कि वह क्या कह रहा है। इसलिए व्यक्ति को अपने क्रोध पर नियंत्रण रखने की आवश्यकता है। क्रोध व्यक्ति की जुबान की लगाम को खत्म कर देता है। ऐसा कहा जाता है कि क्रोधी आदमी की आंखें बंद हो जाती हैं और मुंह खुल जाता है क्योंकि क्रोध की आँख नहीं होती ? क्रोध आदमी के विवेक पर पर्दा डाल देता है। इसका उसे खुद भी पता नहीं चलता।

एक आदमी बहुत गुस्से में था और अपने नौकर को अनेक प्रकार की उपाधियों से विभूषित कर रहा था। इसी बीच दरवाजे पर किसी ने दस्तक दी, अब वो तो आपे से बाहर था, जैसे ही दरवाजे पर दस्तक हुई, उसने अपने नौकर से झल्लाते हुए कहा "जा बे देख, कौन गधा आया है।" नौकर दरवाजे तक गया और लौटकर कहा "जी आपके पिताजी"।

उसने पूछा- "किस गधे से मिलने आया है ?"

"आपसे।"

क्रोध की स्थिति में ऐसा ही होता है। आदमी बोलना कुछ चाहता है और बोल कुछ देता है। जब बाद में समझ में आता है तब लगता है कि मैंने ये क्या कहा ! इसलिये व्यक्ति को अपनी वाणी पर नियंत्रण रखने के लिए, क्रोध पर नियंत्रण रखना बहुत जरूरी है।

दूसरा है, लोभ ! लोभ के संबंध में कहा जाता है कि लोभ आदमी की जिव्हा छीन लेता है। लोभ के कारण व्यक्ति क्या नहीं बोलता। ये लोभ ही ऐसा कारण है जिससे अपने को पराया और पराये को अपना कहने में भी व्यक्ति नहीं चूकता। आदमी को थोड़ा सा धन का लोभ दे वह झूठी गवाही देने को तैयार हो जायेगा। थोड़ा सा लोभ दे दो आदमी कुछ भी करने के लिए तैयार हो जायेगा।

ऐसे अनेक आख्यान भरे पड़े हैं, ज़ब लोभ के वशीभूत होकर कहना कुछ था और कहा कुछ। लोभ बड़ी खतरनाक चीज है। लोभ में आदमी अप्रिय बोलता है और कभी-कभी लोभ में आदमी प्रिय भी बोल देता है। लोभ एक ऐसी शक्ति है जो आदमी की वाणी में मिठास व अभिप्राय में कड़वाहट घोल देती है। दुकान में आपने देखा ग्राहक को सौ चीजें दिखानी हों, गठान पर गठान निकाल करके आप दिखा रहे हों, उसे कोई कपड़ा पसंद नहीं आ रहा। एक घंटा तक माथा खा गया और वहां से चला गया। अंदर-अंदर क्रोध आ रहा है और मुख से आप कुछ नहीं बोल रहे हैं। कह रहे हैं, ठीक है फिर आइयेगा नया स्टॉक आयेगा, नया माल आयेगा, उसमें आप ले जाइये। मुख से तो मधुरता झर रही और अभिप्राय में "कहां से दिमाग खराब करने के लिए कौन मनहूस आ गया।" लोभ, क्रोध को जीत लेता है।

तीसरा है भय, भय के कारण आदमी झूठ बोल देता है। जब व्यक्ति पर कोई दवाब होता है तो आदमी को कहना कुछ होता है और कह कुछ देता है। भय बहुत अच्छी चीज नहीं है। सम्यक्दृष्टि हमेशा निर्भय रहता है। वह अपने भाग्य पर विश्वास करके चलता है। इसलिए बड़े से बड़े भय के कारण भी वह भयभीत नहीं होता। कितना भी बड़ा आतंक या भय क्यों न हो, कितना भी बड़ा प्रलोभन क्यों न हो, वह अपने मुख से असत्य का उच्चारण कभी नहीं करता। इसलिए भय पर भी आदमी को नियंत्रण रखना चाहिए।

चौथा कारण है मजाक- हँसी मजाक में आदमी न जाने क्या बोलता है। आप थोड़ा सा अपने मन को टटोलना कि सुबह से शाम तक आपका जो समय जाता है, लोगों से बातचीत करते है, उसमें आप कितना झूठ बोलते हैं और जितना झूठ बोलते हैं उसका 80% मजाक का होगा। कहते हैं कि ***"रोग की जड़ खाँसी और झगड़े की जड़ हाँसी"।*** हँसी-हँसी में आदमी झगड़ा कर लेता है। दो आदमी मिल गये, तीसरे को Target बनाया और उसकी खिल्ली उड़ाना शुरू कर दी और खिल्ली उड़ाने के लिए असत्य का सहारा लेना पड़ता है। हमारे आचार्यों ने कहा है कि कभी किसी की खिल्ली मत उड़ाओ। यदि तुम आज किसी की खिल्ली उड़ाते हो तो कल तुम्हें ऐसा शरीर प्राप्त होगा कि देखकर ही व्यक्ति तुम्हारी खिल्ली उड़ायेंगे। जो दूसरे का उपहास करता है उसे उपहास्यास्पद शरीर

मिलता है, और विकृत शरीर मिलता है, जन्म-जन्म में वह उपहास का पात्र बनता है। इसलिए भूलकर कभी किसी का उपहास मत करना, क्योंकि इससे तुम्हारी आत्मा का बहुत अधिक अहित होने वाला है। एक अंग्रेजी विचारक ने बड़ी अच्छी बात कही है-

"We shall to laugh with some one but never to laugh at some one."

हम किसी के साथ जी चाहे हँसे पर भूलकर कभी किसी पर न हँसें

किसी व्यक्ति पर हँसना और किसी व्यक्ति के साथ हँसना, बड़ी अलग-अलग चीजें है। हम दूसरों की हँसी उड़ाते हैं, पर जो दूसरों की हँसी उड़ाता है, एक दिन उसकी जग हँसाई होती है। व्यक्ति उस बात को ध्यान में नहीं रखता। विनोदप्रियता में, मजाक-मजाक में ऐसे खोटे कर्म बाँध लेता है जिसे भोगने के लिए, भव-भव में मजबूर होना पड़ता है। कभी-कभी जब व्यक्ति का मजाक उस पर ही वापंस Reverse हो जाता है तो उसे शर्मिन्दा भी होना पड़ता है। अकबर और बीरबल में बहुत ज्यादा मजाक चला करता था। एक दिन अकबर को बीरबल से मजाक सूझी और उसने बीरबल से कहा कि बीरबल मैंने रात मे एक सपना देखा। सपना ये देखा हम दोनों चले जा रहे थे, रास्ते में जंगल पड़ा, अचानक हम दोनों अलग-अलग गढ़ढे में गिर गये। तुम मल के गढ़ढे में गिरे और मैं शक्कर के गढ़ढे में गिरा। बीरबल कब चूकने वाला था तुरंत उसका दिमाग दौड़ा और उसने कहा "हुजूर मैंने भी ऐसा ही सपना देखा है पर मेरी नींद थोड़ी देर बाद खुली, आपकी नींद पहले खुल गई।" अकबर ने पूछा "क्यों- क्या देखा।" बीरबल ने कहा- "आप शक्कर के गढ़ढे में गिरे, मैं मल के गढ़ढे में गिरा। यहां तक तो ठीक है फिर हम दोनों बाहर निकल गये। आप मुझे चाट रहे थे मैं आप को चाट रहा था।"

ये मजाक का परिणाम है। मजाक में आदमी कभी भी कुछ भी बोल देता है और जब वह परिणाम सामने आता है तब उसके होश ठिकाने लगते हैं। इसलिये संत कहते हैं कि मजाक भी करो तो कम करो। विनोद करो पर स्वस्थ विनोद करो। मजाक जब घटिया स्तर का होता है तो वह बहुत ज्यादा खतरनाक

बन जाता है। इसलिए इसकी एक सीमा होनी चाहिए। इसका व्यक्ति को ध्यान रखना चाहिए।

पांचवा हेतु है आदत। आदत एक ऐसी प्रवृत्ति है जो व्यक्ति पर हावी हो जाती है। Habit के संबंध में कहा जाता है Habit कभी जाती नहीं। Habit में से H निकाल दो abit रहेगा। abit में "a" निकाल दो bit रहेगा और bit में से "b" निकाल दो तो it रहेगा, थोड़ा बहुत तो रहेगा, आदत जाती नहीं। आदत के कारण व्यक्ति अप्रिय शब्दों का प्रयोग कर देता है। कुछ भी बोलना हो कुछ भी बोल देता है। जैसे कई लोगों को अपशब्द बोलने की आदत होती है। वो कोई भी वाक्य शुरू करेंगे तो अपशब्दों से ही उसका श्रीगणेश करेंगे। उसके बिना कुछ काम ही नहीं चलेगा। अपने बच्चों से भी बात करना है तो अपशब्दों के साथ बात करेंगे। अपनी पत्नि के साथ बात करना है, तो अपशब्दों के साथ करेंगे। अपने परिवार के किसी भी व्यक्ति से बात करना है तो अपशब्दों के साथ बात करेंगे। कभी-कभी जब हम लीग निकलते हैं, बिहार करते रहते हैं तो ये ग्वाले वगैरह गायों को चराते हैं। एक दिन मैं निकल रहा था और वह थोड़े गुस्से में था, और गायों को जो गालियां दे रहा था वो शब्द मेरे कान तक आये। मैंने विचार किया कि अगर यह ठंडे दिमाग से विचार करें और इन गालियों से अपना रिश्ता जोड़े तो फिर ये खुद हंसेगा कि ये मैं क्या कह रहा हूं। आदत का यही नतीजा है। आदमी बोलना शुरू करता है तो बोलता जाता है। इसलिये आदमी को अपनी आदत पर अंकुश रखना जरूरी है। आप चाहेंगे तो आदत पर अंकुश रखा जा सकता है।

एक आदमी गाँव-गाँव घूम कर चूड़ी बेचा करता था। बहुत पुराने जमाने की बात है वह घोड़ी पर अपनी चूड़ियां लादता और गाँव-गाँव जाकर के चूड़ियां बेचा करता था। जब वह चूड़ियां बेचने जाता था तो अपनी घोड़ियों को बड़े प्यार से हाँकता हुआ कहता था "चल मेरी बहिन, चल मेरी भाभी।"

लोगों ने सुना तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ एक आदमी ने उसे टोकते हुए कहा – "क्यों भाई यह क्या कह रहे हो, इन घोड़ियों से तुम्हारा कैसा रिश्ता, ये तुम्हारी बहिन और भाभी कैसे बन गयीं ?" उसने जबाव दिया– "आप नहीं जानते मेरा काम चूड़ी बेचने का है और चूड़ी मुझे हमेशा बहनों, माताओं और

भाभियों के लिए ही बेचना पड़ती हैं। मैं सावधानी रखना चाहता हूं कि कहीं मेरे मुंह से कोई अपशब्द न निकल जायें। मेरे मुख से बहन, भाभी और माँ के अतिरिक्त कोई दूसरा शब्द न निकले। मेरी ये आदत बनी रहे, इसलिये मैं घोड़ी के साथ भी बहन, भाभी और माँ का प्रयोग करता हूं।"

ये है आदत पर नजर। इतनी जागृति प्रत्येक व्यक्ति अपनी आदतों पर रखें तो आदत बदल सकते हैं। कई लोगों की अपशब्द बोलने की आदत है। मैं उनसे कहना चाहता हूं कि आप अपशब्द बोलने की अपनी आदत बदलना चाहते हो तो एक ही उपाय है जैसे ही आपके मुख से अपशब्द निकले तुरंत रूकिये और नौ बार णमोकार मंत्र पढ़िये। एक हफ्ते बाद मिलना, आपके अपशब्द बोलने के १०० मौके हैं तो ६० मौके न हो जायें तो हमसे बात करना। णमोकार मंत्र हमें सजग करेगा। सजगता विचार को जन्म देगी। विचार के जन्मते ही विकार दूर हो जाता है। व्यक्ति के साथ यदि विचार जुड़ जाता है तो उसकी दुष्प्रवृत्ति अपने आप दूर हो जाती है। एक विसंगति देखने को मिलती है। आदमी के लिए कुछ अच्छा काम कहो तो कहते हैं कि महाराज हम विचार करेंगे। अच्छे काम के लिए कहेंगे तो कहेंगे विचार करेंगे। पर बुरे काम के लिए विचार नहीं करते। आपने कभी ख्याल किया कि आपको किसी ने गाली दी और आपने ये सोचा हो कि तुम्हारी गाली का उत्तर हम सोच-विचार कर देंगे। उसने एक गाली दी, आप सौ गाली देगें क्योंकि अपने पास over- stock रहता है कभी कम नहीं रहती। सपने में भी अगर किसी ने गाली दी है तो हम उस गाली का उत्तर देने में संकोच नहीं करते। उसने एक गाली दी, हम चार गाली देने के लिए तैयार रहते हैं। हम कभी यह नहीं कहते कि तुम्हारी गाली का उत्तर विचार कर देंगें। अगर गाली का उत्तर विचार करके देगें तो वह विचार गाली उत्पन्न ही नहीं होने देगा। गाली ही खत्म हो जायेगी। इसलिए ये पांच कारण हैं। इन पांच कारणों पर व्यक्ति को प्रतिदिन विचार करना चाहिए। जब इन पांच कारणों पर व्यक्ति की दृष्टि जाती है तो अप्रिय संभाषण उसके जीवन से अपने आप दूर हो जाता है और तभी उसे जो जिव्हा मिली है तो वह उसका सार्थक उपयोग कर सकता है। तभी उसके जीवन का कोई हित हो सकता है। तभी उसकी वाणी से वीणा जैसा कोई संगीत झर सकता है। तभी उसकी वाणी पूरे के पूरे वातावरण को रसमय बना सकती है।

बंधुओ, जिव्हा मिली है- ये जिव्हा तो प्रभु के गीत गाने के लिए मिली है। जिव्हा से प्रभु का गीत गाओ, गाली नहीं। जो गाली बकते हैं वा अपनी वाणी का दुरूपयोग करते हैं, उनकी वाणी एक दिन कुंठित हो जाती है, मूक होना पड़ता है, उन्हे वाणी रहित होना पड़ता है। इसलिए यदि वाणी मिली है तो इसका सदुपयोग करो। कहीं ऐसा न हो कि तुम्हारी वचन शक्ति ही कुंठित हो जाये। कहीं ऐसा न हो तुम्हारी जिव्हा ही तुमसे छिन जाये। इसलिए जब तक ये जिव्हा मिली है- प्रभु के गीत गाते रहो। गाली से बचते रहो- जिव्हा की इसी में सार्थकता है। बंधुओं ये जिव्हा बड़ी खतरनाक है। है छोटी सी जुबान लेकिन क्या-क्या कर दे कुछ कहा नहीं जा सकता। एक कहावत है कि दो इंच की जिव्हा आदमी के पूरे जीवन को समाप्त कर देती है। एक बार ऐसा हुआ जिव्हा और दांत में कुछ बहस छिड़ गई। जीभ से दांत ने कहा "कैसी बेशर्म है । सारा परिश्रम मैं करता हूं और रस तू चूसती है।"

क्या मतलब ! जीभ ने अपने पैनेपन को और पैना करते हुए कहा- "सुनो मेरे सामने ज्यादा मुंह मत चलाओ, नहीं तो थोड़ी देर में सब समझ में आ जायेगा कि तुम्हारा क्या होगा।" दाँत को गुस्सा आ गया। उसने जीभ को अपने दोनों जबड़ों के बीच में दबा दिया। जीभ तिल-मिला गई। बोली- "ठीक है, तूने मेरा अपमान किया है, देख मैं अभी तुझे मजा चखाती हूं।" दांत बोला- "तू मेरा क्या कर लेगी ?" जीभ ने कहा- "अभी तुझे मैं मजा चखाती हूँ।" वो सीधे एक पहलवान के पास गई और चार, छह गालियां दे दी। पहलवान को गुस्सा आ गया उसने एक घूंसा मुंह में दिया तो बत्तीसी बाहर आ गई।

रहिमन जिव्हा वावरी, कह गई सुरग पताल।
आप तो कह भीतर गई, जूती खात कपाल।।

बंधुओ, आज मैंने आपसे इसकी चर्चा की। हम अपनी वाणी में मधुरता लाने का प्रयत्न करें, क्योंकि वाणी से व्यक्तित्व की पहचान होती है। जो व्यक्ति जितना अधिक मधुर संभाषी होगा, वह व्यक्ति उतना ही अधिक आदरणीय और प्रतिष्ठित माना जाता है। अपने जीवन को स्थायी प्रतिष्ठा देना हम चाहते हैं यदि हम अपने जीवन को महान बनांना चाहते हैं तो हमें महानता का आचरण करना

सीखना पड़ेगा। हम जब तक अपने जीवन में इस तरह की वृत्ति नहीं अपनाते,तब तक हमारे जीवन का उद्धार नहीं हो सकता। नीतिकारों ने कहा है -

प्रियवाक्य प्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः।
तस्मात् तदैव वक्तव्यं वचने का दरिद्रता।।

अरे भइया ! जब तुम्हारे मीठे बोलने से सब संतुष्ट होते हैं तो वही बोलो न, वचनों में कौन सी दरिद्रता है। क्या तुम्हारे बोलने पर पैसा लगता है ? क्या तुम्हारे पास शब्द संपदा की कमी है ? अरे शब्द का तो अपूर्व भण्डार है तुम्हारे अंदर, उस भंडार का प्रयोग करो। अच्छे शब्दों का प्रयोग करो, बुरे शब्द अपने मुख से कभी न निकालो। हमेशा मधुर बोलो और उस भावना को हमेशा अपने सामने रखो कि

"फैले प्रेम परस्पर जग में, मोह दूर ही रहा करे।
अप्रिय कटुक कठोर शब्द नहीं, कोई मुख से कहा करे।।"

हमारे मुख से हे भगवान ! कभी भी वो अप्रिय शब्द न निकलें, हमारे मुख में मिठास भरे, हमारे मुख में मधुरता भरे और हमारे सारे संबंध मधुर बनें- इस भावना से आज अपनी चर्चा को यहीं पर विराम दे रहे हैं।

धर्म नियंत्रित अर्थ और काम

मानव जीवन को सुख-शांतिमय बनाने के लिए चार पुरूषार्थों का उपदेश दिया गया है। वह हैं- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इनका आश्रय लेकर हर व्यक्ति अपने जीवन को कृतार्थ कर सकता है। मोक्ष हर साधक का ध्येय है और धर्म पुरूषार्थ की अंतिम परिणति मोक्ष है। अतः उसे धर्म पुरुषार्थ में अंतर्गर्भित कर गृहस्थ को धर्म, अर्थ और काम इन तीन पुरुषार्थों की प्रेरणा दी गई है। इसे ही त्रिवर्ग कहा गया है। गृहस्थ त्रिवर्ग का सही ढंग से पालन करे तो वह अपवर्ग की उपलब्धि कर सकता है। अपवर्ग का अर्थ है मोक्ष। धर्म, अर्थ और काम पर व्यक्ति का जब सम्यक् संतुलन होता है, तो वह व्यक्ति एक दिन मोक्ष को अवश्यमेव उपलब्ध कर लेता है। ये तीनों पुरूषार्थ हमें मोक्ष तक पहुंचाने वाले पुरूषार्थ हैं।

मनुष्य के जीवन के चार आधारभूत तत्व हैं जो हमारे समस्त पुरूषार्थों के साधन हैं-शरीर, मन,बुद्धि और आत्मा। चारों के चारों इन चार पुरूषार्थों के माध्यम से कृतार्थ होते हैं। अर्थ से शरीर कृतार्थ होता है, काम से मन सन्तुष्ट होता है, धर्म से बुद्धि तृप्त होती है, और मोक्ष आत्मा को सन्तुष्ट करता है। ये चारों पुरूषार्थ हमारे जीवन के आधार हैं। आत्मा के चरमोंत्कर्ष के लिए इन्हें अपने जीवन का अंग बनाना चाहिए।

तीर्थंकर भगवन्तों ने दो प्रकार के धर्म का उपदेश दिया है। साधु धर्म और गृहस्थ धर्म, गृहस्थ के ऊपर अपने परिवारिक, कौटुम्बिक, सामाजिक और राष्ट्रीय

जिम्मेदारियां है। उन जिम्मेदारियों का पालन करना उसका कर्त्तव्य है। अपने परिवार-कुटुम्ब की रक्षा करना उसका फर्ज है। समाज और राष्ट्र का विकास करना उसका दायित्व है। पर साधु का क्षेत्र अलग है, वह देशकाल की मर्यादा से ऊपर उठ चुका है। अब वह परिवार कुटुम्ब, समाज और राष्ट्र से ऊपर उठकर विश्व कुटुम्बी बन गया है। इसलिए जो साधु का जीवन होता है वह धर्म से सीधे मोक्ष की ओर बढ़ता है, उसके जीवन में अर्थ और काम की कोई आवश्यकता नहीं होती। गृहस्थ अर्थ और काम से मुक्त नहीं हो पाता। उसकी अपनी कमजोरी होती है। अपने दायित्व के निर्वाह के लिए उसे अर्थ का उपार्जन अनिवार्य है। अर्थ के बिना गृहस्थ का काम नहीं चलता। काम गृहस्थ की कमजोरी है। काम पर नियंत्रण और वंश परम्परा के संचालन के लिए उसे काम पुरूषार्थ से भी जुड़ना पड़ता है। इसलिए गृहस्थ को अर्थ और काम की छूट दी गयी है, पर धर्म को सबसे पहले रखा है और मोक्ष को सबसे अंत में। गृहस्थ के लिए धन का निषेध नहीं है, और काम का भी निषेध नहीं है, यदि वह धर्म से अनुबन्धित हो। धर्म से नियंत्रित हो तो अर्थ, परमार्थ की सिद्धि का साधन बनेगा और काम तुम्हें राम से जोड़ देगा। धर्म का नियंत्रण न हो तो अर्थ अनर्थ का कारण बनता है, काम मनुष्य के जीवन को तमाम कर देता है। अतः अर्थ और काम को धर्म और मोक्ष के बीच में रखा गया है।

संतो ने कहा है-*"धर्माविरूद्धौं अर्थकामौं संचरेत्"*- तात्पर्य यह है कि अर्थ और काम का आश्रय लेना हो तो ले लो, लेकिन धर्म से अविरुद्ध अर्थ और काम का आश्रय लो। यह भारतीय मनीषा की बहुत बड़ी विशेषता है, जहां अर्थ को भी पुरूषार्थ और काम को भी पुरूषार्थ की संज्ञा दी गई। जिस अर्थ और काम को धर्मग्रन्थों में सबसे ज्यादा निंदनीय बताया गया है, आत्मा के पतन का हेतु बताया गया है, वही अर्थ और काम धर्म से जुड़ने पर पुरूषार्थ बन जाते हैं। गृहस्थ भी पुरूषार्थी हो सकता है। मात्र अर्थ का उपार्जन ही अर्थ पुरूषार्थ नहीं है। पुरूषार्थ पुरूष के विकास का कारण बनता है। काम पर नियंत्रण रखकर काम पर भी विजय पाया जा सकता है। यही काम पुरूषार्थ है। नियंत्रण अनिवार्य है। धर्म का पहला अंकुश होता है धन पर। और दूसरा होता है काम पर। धन के ऊपर नियंत्रण लाना बहुत जरूरी है एक विचारक ने लिखा है कि धन की विपुलता

समस्त बुराईयों की जड़ है। समस्त विकृतियों की जन्म-दाता है इसलिए मनुष्य को धन पर अंकुश लगाना पहले जरूरी है। जब धन पर धर्म का नियमन होता है तो वह हमारे लिए बहुत काम का होता है। और नियंत्रणविहीन धन, मनुष्य को धनांध बना देता है। जो व्यक्ति धनांध होता है, वह धनासक्ति में ज़ीता है। आसक्ति उसे चैन से नहीं जीने देती। धन पर धर्म के नियंत्रण का अर्थ है-नीति और न्याय का नियंत्रण। धन पर धर्म का नियंत्रण होने पर धन के प्रति आसक्ति कम होती है। काम पर नियंत्रण रखने का साधन है संयम, संयम के द्वारा काम को कब्जे में कर कामयाबी पाई जा सकती है। जो धर्म के नियंत्रण में जीता है, उसका काम संयम में बंध जाता है, उसका काम वात्सल्य की ओर मुड़ जाता है, उसका काम भक्ति और अनुरक्ति में बदल जाता है। जिसके जीवन में धर्म नहीं होता, उसका काम जीवन को तमाम कर देता है। इसलिंए धर्म का नियंत्रण कहा गया।

जैसे एक नदी के दो किनारे होते हैं वैसे ही हमारे जीवन की धारा में यह अर्थ और काम बहे तो बहे, लेकिन धर्म और मोक्ष के मध्य बहे, एक तरफ धर्म का नियंत्रण हो, दूसरी तरफ मोक्ष का ध्येय हो। धर्म के नियंत्रण और मोक्ष के ध्येय के साथ यदि हम अपने जीवन की धारा को प्रवाहित करते है तो हमारी जीवन धारा हमारे जीवन के विकास का कारण बनेगी। नदी जब तक अपने किनारों के बीच बहती है, तब तक वह हमारे लिए बड़ी काम की होती है, लेकिन नदी जब अपने किनारों का उल्लघन कर देती है तो जलप्लावन का दृश्य उपस्थित हो जाता है, बाढ़ की विभीषिका में परिणत हो जाती है, सब तरफ तबाही मच जाती है। यदि हम इन दोनों पर नियंत्रण रख कर चलते हैं तो वह हमारे जीवन को कामयाबी प्रदान कर सकता है। और यदि हम इनका नियंत्रण छोड़ देते हैं तो वह तो अमर्यादित नदी की तरह हमारे जीवन का सर्वनाश कर देता है। जब व्यक्ति का धर्म के माध्यम से अर्थ और काम पर नियंत्रण हो जाता है तो वह काम एक दिन उसे निष्काम बना देता है। आज मनुष्य कामना के माध्यम से सुख चाहता है, काम से आज तक किसी को कभी सुख और शांति की उपलब्धि नहीं हुई। भोग और विलासिता मनुष्य को कभी सुख दे ही नहीं सकते। यह बात अलग है कि भोगरत होते वक्त मनुष्य को आनंद आता है लेकिन बाद में मनुष्य रोता

है, भोगते समय मनुष्य आनंद मनाता है, बाद में मनुष्य को रोना पड़ता है। काम का आज तक इतिहास यही है, काम से काम को कभी तृप्ति नहीं हो सकती। काम को अगर हमें सार्थकता प्रदान करना है, तो काम पर संयम लगाने की जरूरत है। काम तो एक बेलगाम घोड़े की तरह है। लेकिन उसमें हम संयम की लगाम लगा लेते हैं तो काम भी हमारे वश में हो जाता है। जब काम पर भी हम अपना नियंत्रण ले लेते हैं तो उस काम के माध्यम से हम अपने जीवन का विकास कर सकते है।

चार पुरूषार्थों में धर्म का नियंत्रण रखने की सबसे बड़ी बात की गई। सबसे अधिक महत्व धर्म को दिया गया है। और जो धर्म को अपने जीवन मे महत्व देता है उसका अर्थ और काम नियमतः धर्मानुबंधित हो जाता है। और जो धर्म की उपेक्षा कर देता है वह अपने अर्थ को परमार्थ से कभी नहीं जोड़ पाता उसका अर्थ अनर्थकारी बन जाता है और उसका काम उसके जीवन को तमाम करने वाला हो जाता है।.और वह अपनी वृत्तियों का शोधन कभी नहीं कर पाता इसलिए यहां कहा गया धर्म का नियंत्रण रखो। धर्म के नियंत्रण में अगर हम चलते हैं तो हमारे जीवन में एक आंतरिक अनुशासन उत्पन्न होता है जो हमारे जीवन के विकास का बहुत बढ़िया साधन बन जाता है। जो व्यक्ति धर्म की उपेक्षा करके अर्थ और काम में रत रहता है, वह व्यक्ति अपने जीवन में कभी सुख-शांति की उपलब्धि नहीं कर सकता। धर्म हमारे जीवन का मूल है। किसी पेड़ की पत्तियों और शाखाओं को सींचने से पेड़ हरा-भरा नहीं हो सकता। पेड़ को हरा-भरा करने के लिए उसकी जड़ को सींचना जरूरी है। धर्म जीवन की जड़ है, जड़ में सिंचन करने पर पत्तियां और शाखाएं अपने-आप हरी-भरी हो जाती हैं। यदि हम जड़ की उपेक्षा कर पत्तियों और शाखाओं को सींचते रहते हैं तो उन्हें सूखने से कोई नहीं बचा सकता। अर्थ और काम पत्तियों की तरह है, शाखाओं की तरह है, धर्म उसकी मूल जड़ है, उस जड़ पर सिंचन की बहुत जरूरत है।

एक बहुत बड़ा वट का वृक्ष था। हजारों पक्षी उसमें बसेरा करते, सैकड़ों पथिक उसकी छाया में विश्राम पाते। धीरे-धीरे पतझड़ के दिन आये। वृक्ष के पत्ते झड़ने लगे। एक-एक करके सारे पत्ते झड़ गये। वह पूरी तरह श्री शोभा से विहीन हो गया। बहुत सुंदर और आकर्षक लगने वाला वटवृक्ष एक ठूँठ की शक्ल में

तब्दील हो गया। अब न तो उस पर कोई पक्षी बसेरा करते, न ही उसकी छाया में आने वाले पथिक उसके पास आते। एकदिन एक पथिक वहाँ से गुजरा, उसने पेड़ की यह हालत देखकर, वृक्ष से कहा-भाई बड़! मैं यह क्या देख रहा हूँ? तुम्हारी यह क्या हालत हो गई? तुम्हारी सारी शोभा नष्ट हो गई। अब तुम बिल्कुल अकेले, ठूँठ की तरह रह गये। क्या तुम्हें तुम्हारा यह अकेलापन अखरता नहीं?

बड़ के वृक्ष ने जबाव दिया-"भाई तुम ठीक कहते हो, आज हमारी सुषमा समाप्त हो गई, पर मुझे इसकी कोई चिंता नहीं। यह ज्यादा दिन नहीं रहेगी। थोड़े दिन बाद बसंत की बहार आयेगी और मैं फिर हरा-भरा हो जाऊँगा। मुझे मेरे पत्ते झड़ने से कोई चिन्ता नहीं क्योंकि मेरी जड़ मजबूत है। जब तक जड़ मजबूत है, कितने भी पतझड़ आयें पेड़ को उजाड़ नहीं सकते। जड़ कमजोर है तो बसंत की बहार में भी पेड़ उजाड़ हो जाते है।

बंधुओ! जीवन का वृक्ष भी एक ऐसा वृक्ष है जिसकी मूल जड़ धर्म है। यदि आपकी धर्म की जड़ हरी-भरी है तो हमारे जीवन में अर्थाभाव का कितना भी प्रभावी पतझड़ आये, काम-ज्वर की कितनी ही तेज लू चले, या बीमारी की बर्फीली हवाऐं भी कितनी ही क्यों न चलने लगें, तो भी हमारे जीवन के इस वृक्ष को हरा-भरा होने में भी कोई देर नहीं लगेगी। जीवन वृक्ष तत्काल हरा-भरा हो सकता है, थोड़े दिन को हमें उजाड़ दिख सकता है, लेकिन जड़ के सुरक्षित रहने पर उसे हरा-भरा होने में कोई देर नहीं। इसलिए तीनों पुरूषार्थों के बीच सम्यक् संतुलन बनाने की प्रेरणा देते हुए कहा गया है कि मूल पर ध्यान रखोगे, धर्म पर तुम्हारी दृष्टि बनी रहेगी तो अर्थ और काम की तुम्हें कोई चिंता नहीं करनी पड़ेगी। अर्थ और काम के पीछे पागल होते हुए तुम यदि धर्म की उपेक्षा करोगे तो तुम्हें अपने जीवन से हाथ धोने के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिलेगा। तुम्हारा जीवन विनाश की गर्त में गिरेगा। इसलिए अपने पर नियंत्रण लाना चाहते हो, तो धर्म के अनुशासन में बंधो, नीति ग्रन्थों में कहा गया है कि

न सीदन्नपि धर्मेण मनोऽधर्मे निवेशयेत्।
अधार्मिकाणां च पापाणामासु पश्यन् विपर्ययम्।। मनुस्मृति

धार्मिकों को कष्ट पाते, एवं अधार्मिकों को सुखी देख कर भी अपने मन को कभी भी अधर्म की ओर मत जाने दो। क्योंकि अधर्म से जीवन का स्थायी विकास नहीं होता। कमजोर नींव का सुन्दर महल टिकाऊ नहीं रहता। कोई बहुत बड़ा महल है, खूब बढ़िया रंग-रोगन है, बढ़िया फर्नीचर है, खूब अच्छी साज-सज्जा की गई है, बहुत अच्छी डिजाइन है, लेकिन उसकी नींव कमजोर है तो वह महल कब तक टिकेगा। वह महल ज्यादा दिन नहीं टिक सकता, नींव ही नहीं हैं, रेत पर खड़ा हुआ है, आंधी के झोंके में वह धराशायी हो जाता है। कभी-भी गिर सकता है। बस जीवन के महल के साथ भी यही स्थिति है। हमने अर्थ और काम की मजबूत दीवालें तो तैयार कर लीं, खूब रंग-रेलियां हमारे जीवन में चल रही हों, लेकिन यदि धर्म की उपेक्षा होती हो तो वह जीवन का महल कभी भी गिर सकता है, मनुष्य को कभी-भी गर्त में गिरा सकता है। इसलिए हम अपने जीवन के महल को खड़ा करना चाहें, खड़ा करें पर उसकी नींव को मजबूत बनाने की कोशिश करें। जितना ऊंचा हम महल को खड़ा करना चाहते हैं उतनी ही गहरी और मजबूत हम उसकी नींव को बनायें। ***"तत्रापि धर्मं प्रवरं वदन्ति"*** सबसे अधिक धर्म को महत्व दिया जाता है। व्यक्ति जितना अधिक अर्थ और काम के पीछे भागता है उसे उतनी ही अधिक धर्म पर दृष्टि डालना चाहिए क्योंकि महल की ऊँचाई के अनुरूप नींव की गहराई होनी चाहिए। रोग के वेग के अनुरूप ही औषधि का अनुपात होना चाहिए।

धर्म के नियंत्रण के अभाव में या तो व्यक्ति धन का दीवाना बनकर एकदम कृपण बन जाता है या काम में अंधा हो लंपट बन जाता है। धर्महीन जीवन लम्पटता का या दीवानगी का जीवन होता है। वह अपने जीवन का कभी विकास नहीं कर सकता। इसलिए धर्म का नियंत्रण होना चाहिए। जो व्यक्ति इसकी उपेक्षा कर अपने जीवन को आगे बढ़ाते हैं, उनका जीवन बेलगाम घोड़े पर यात्रा करने जैसा होता है। बेलगाम घोड़े पर यदि आप यात्रा करोगें तो वह या तो आप को किसी बीहड़ उजांड़ वन में छोड़ देगा या किसी गर्त में गिरा देगा। इसलिए अपने जीवन में इसका नियंत्रण बहुत जरूरी है। धर्म, अर्थ और काम इन तीनों पुरूषार्थों के मध्य सम्यक समायोजन होना चाहिए। यह एक त्रिभुज है इनमें से हमने एक

की भी उपेक्षा कर दी तो हमारे जीवन का सन्तुलन खो जायेगा। गृहस्थ, गृहस्थी में रहते हुए यदि सिर्फ धर्म-धर्म की बात करे तो वह अपना जीवन नहीं चला सकता। गृहस्थ यदि सिर्फ पैसा कमाने के पीछे लग जाए तो भी वह अपना जीवन ठीक से नहीं चला सकता और गृहस्थ सिर्फ काम का दास बन जाए तो भी वह अपना जीवन नहीं चला सकता। गृहस्थ को तो धर्म, अर्थ और काम तीनों के बीच सम्यक् संतुलन बनाकर ही चलना चाहिए।

एक सेठ था उसके लिए पैसा ही परमेश्वर था। जिसके लिए पैसा ही परमेश्वर है, वह अपने जीवन में क्या कुछ कर सकता है ? खूब अधिक धन जोड़ा। कभी किसी की दो पैसे की मदद नहीं की। एक दिन वह अपनी तिजोरी में बैठा नोट गिन रहा था, तभी उसे आहट का आभास हुआ। आहट का आभास होते ही उसने झट से तिजोरी को खींच कर बंद कर दिया। तिजोरी बंद हो गई। वह अंदर ही अंदर नोट गिनता रहा। संयोग कुछ ऐसा था कि वह तिजोरी सिर्फ बाहर से ही खुलती थी। उसे इसका ध्यान नहीं रहा, वह आदमी नोट गिनते-गिनते वहीं पर समाप्त हो गया। मैं पूछना चाहता हूं, ऐसे धन से क्या फायदा ? ऐसे अर्थ का क्या प्रयोजन, जो व्यक्ति के जीवन का ही विनाश करा दे ? धन पर धर्म का नियंत्रण न होने पर यही होता है, व्यक्ति के जीवन में सब तरफ से मर्यादा हीनता हो जाती है। व्यक्ति अनैतिक आचरण करने में भी नहीं चूकता। व्यक्ति बेईमानी पर उतर जाता है, अपने ईमान को बेचने के लिए भी तैयार हो जाता है।

आज सब तरफ जो भ्रष्टाचार का बोलबाला हो रहा है, आज जो अनैतिकता बढ़ती जा रही है, मूल्यों में गिरावट आती ज़ा रही है, वह सिर्फ इसलिए कि मनुष्य ने धर्म को ताक पर रखना शुरू कर दिया है। धर्म की उपेक्षा करनी शुरू कर दी है। धर्म को भुला दिया है। धन ही सब कुछ हो गया, पैसा ही परमेश्वर हो गया और जो व्यक्ति पैसे को ही परमेश्वर मानकर चलता है, उनके सामने मूल्यों का कोई मूल्य नहीं होता, वे अर्थ को ही सर्वाधिक महात्त्व देते है, वहीं से अनर्थ की शुरूआत हो जाती है। इसलिए धर्म से अर्थ को नियंत्रित करना चाहिए। व्यक्ति के जीवन में जब धर्म बढ़ता है या अर्थ को वह धर्म से नियंत्रित करके अर्जित करता है तो उसकी धनासक्ति कम होती है और धन के

प्रति जब आसक्ति कम होती है तो उसका धन द्रव्य बन जाता है। जब व्यक्ति के अंदर धन के प्रति आसक्ति गहरी होती है तो वह धन को अपनी छाती से चिपकाये रहता है। जड़ के पीछे अपना जीवन समाप्त कर देता है, जड़ के कारण उसके जीवन में जड़ता आ जाती है, उसकी सोच कुंठित हो जाती है। वह कभी किसी के लिए दो पैसा भी नहीं दे सकता। न्याय-नीति की उपेक्षा करके वह पैसे के ही अर्जन में लगा रहता है। अपने जीवन का विकास नहीं कर सकता।

संतों का कहना है, कि धन को तो द्रव्य बनाना चाहिए। यदि तुमने पुरूषार्थ करके धन एकत्रित किया है, और यदि वह बचता है तो उसको मानवता की सेवा में लगाओ। धन का सदुपयोग इससे बड़ा और कोई नहीं होगा। धन को नदी की तरह कहा गया है- नदी हमेशा नीचे की ओर बहा करती है, अपने किनारों के मध्य अगर नदी बहती है, ठीक-ठीक जाती है, तो सागर तक चली जाती है और नदी इधर-उधर भटक जाती है तो नदी के जल में गंदगी आ जाती है, वह जल विषाक्त बन जाता है, वह किसी काम का नहीं रहता। पर उसी नदी पर बाँध बनाकर हम उसे वहाँ बहा सकते हैं जहाँ उसकी आवश्यकता है। ऐसा करने पर वह जल अनेकों की पीड़ा हर लेता है, अनेक व्यक्तियों के जीवन का आधार बन जाता है। हमारे आचार्यों ने कहा कि धर्म नियंत्रित अर्थ का अर्थ सिर्फ इतना ही है कि तुम जिस अर्थ का उपार्जन कर रहे हो, उसे धर्म, नीति-न्याय के बाँध से बाँधकर रखो और उसे वहाँ प्रवाहित करो जहाँ उसकी आवश्यकता है। दीन-दुखी मानवता की सेवा के लिए अपने धन का समर्पण करो। अपनी आवश्यकता की पूर्ति के अतिरिक्त यदि कुछ बचता है तो उसका सदुपयोग करो। धर्म के नियंत्रण के अभाव में व्यक्ति कामांध हो जाता हैं, अच्छे-बुरे, भले-बुरे सबका बोध खत्म हो जाता है व्यक्ति की आँख में पवित्रता नहीं होती, काम व्यक्ति को अन्धा बना देता है और सारे सम्बन्ध सन्देहों के घेरे में आ जाते है। उसकी सारी मर्यादायें समाप्त हो जाती हैं। कामांध व्यक्ति अपनी मां तक का खून करने में नहीं चूकता है।

दरिद्रता का सामना करती हुई वैधव्य से पीड़ित एक माँ ने अपने इकलौते पुत्र का, पति के अभाव में भी चक्की पीस-पीस कर बड़ी कठिनाई से पालन-पोषण किया था। अनेक विषम परिस्थितियों का सामना करते हुए उसने उसे (पुत्र को)

पढ़ाया जिससे कि उसकी आजीविका का साधन अच्छी तरह हो सके। वह अपने पुत्र के घर आये बिना भोजन तक नहीं करती और न सोती। वह हर क्षण पुत्र को कुशल देखने की अभिलाषा रखती थी। अच्छी वस्तु उसे खिलाने के बाद बची हुई स्वयं खाती थी। पुत्र भी माँ का पूरी तरह सम्मान करता था। प्रातः उठकर माँ के चरण स्पर्श करता था लेकिन यौवन अवस्था को प्राप्त, एक दिन वह एक सुन्दरी के रूप को देखकर आसक्त हो गया। वह उससे प्रेम करने लगा और धीरे-धीरे उसका प्रेम इतना बढ़ गया कि वह वासना के जाल में फँसकर अधिक समय उसी के यहाँ रहने लगा। वह अपनी वृद्धा माँ की तरफ ध्यान देना छोड़कर सुन्दरी की इच्छापूर्ति में लग गया। एक दिन उस सुन्दरी ने उसके प्रेम की परीक्षा के लिए कहा "हे प्रिय ! यदि तुम अपनी माँ का कलेजा लाकर दो तो मैं समझूँ कि तुम मुझसे प्रेम करते हो, अन्यथा सब दिखावा मात्र है।" नवयुवक ने कहा- "हे प्रिये ! तुम कैसी बात करती हो, मैं तुम्हारे लिए सब कुछ करने को तैयार हूँ। मैं आज ही तुम्हारे लिए माँ का कलेजा लाकर दूँगा।" यह कहकर वह अपने घर पहुँचा और अवसर देखकर उसने अपनी माँ के हृदय में छुरा भौंक दिया और माँ का कलेजा निकालकर हर्षित मन से अपनी प्रेमिका के पास पहुँचा और मीठे वचनों के साथ प्रेमिका को वह कलेजा दे दिया। प्रेमिका कलेजे को देखते ही काँप उठी। वह आश्चर्यचकित हो गयी और बोली-"मैं आज से तुमसे प्रेम नहीं करूँगी क्योंकि जिस माँ ने तुम्हें जन्म दिया और अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुए भी तुम्हारा पालन-पोषण किया; उस माँ का भी तुम कलेजा ले आये तो भविष्य में मेरे साथ कैसा व्यवहार करोगे, यह कौन बता सकता है?" प्रेमिका ने उसे ठुकरा दिया। नवयुवक की आँखें खुल गयीं। और वह अब प्रेमिका के प्रेम से भी गया और माँ के जीवन से भी गया।

काम मनुष्य को कितना नीचे गिरा देता है? माँ का कलेजा निकालने जैसा क्रूर कृत्य ? मानव का इतना पतन? काम क्या नहीं कराता? कामांध व्यक्ति पर पैशचिकता हावी हो जाती है। फिर उसका विवेक और बुद्धि सब कुछ नष्ट हो जाता है। जीवन से धर्म का नियंत्रण छूटने पर यही सब होता है।

आज के युग में जब सारे के सारे मूल्य बदल रहे हैं, मनुष्य की सोच बदल रही है। आपाधापी के इस युग में मनुष्य धर्म को तो एक अफीम जैसी चीज मानने

की भूल कर रहा है। वहीं एक अंग्रेजी विचारक ने बड़ी अच्छी बात कही-

"A Man who puts aside his religion because he is going into society is like one who taking off his shoes because he is about to walk upon thorn."

एक मनुष्य अपने धर्म को इसलिए त्याग रहा है क्योंकि वह समाज में रहना चाहता है। वह ऐसा कर रहा है मानो कांटों पर चलने का वक्त आने पर अपने जूतों को फेंक रहा है। समाज में रहने के लिए धर्म की उपेक्षा करना काँटों पर चलने के लिए अपने जूतों को उतारकर फेंकने जैसा कृत्य है। कांटों पर चलने के लिए पैरों में जूतों की निहायत आवश्यकता है। बिना जूतों के कांटों पर पैर रखोंगे तो उनकी चुभन से अपने आप को बचा नहीं सकते। अगर अपने अंदर सामाजिक मर्यादाओं को सुरक्षित रखना है, समाज में रहना है, तो धर्म एक सुरक्षा कवच है, जो हमें सामाजिक कांटों से बचाता है, जो हमारी आत्मा की सुरक्षा करता है। जो लोग इसकी उपेक्षा कर रहे हैं उनका जीवन तो शूलों भरा जीवन होगा। उनके जीवन का एक-एक अनुभव शूल जैसा होगा, उनके जीवन का एक-एक क्षण कंटकाकीर्ण होगा। जीवन का परम विकास धर्म के ही माध्यम से हो सकता है इसलिए हम धर्म को अपने जीवन का आधार बनाएं। कहा है-

"चलता चले वह आदमी, बढ़ता चले वह आदमी,
उत्सर्ग पथ पर शूल से लड़ता चले वह आदमी।
है आदमी तो वह कि जिसका धर्म ही संग्राम है।
जीवन इसी का नाम है, जीवन इसी का नाम है।।"

धर्म को अपने जीवन का संग्राम बनाकर चलना चाहिए, धर्म को अगर अपने जीवन का आधार बनाकर हम चलते हैं तो हमारे जीवन में इन तीनों के मध्य नियंत्रण होता है। हम धनार्जन करें उसका निषेध नहीं, काम से व्यक्ति के अंदर विरक्ति नहीं आती तो काम के सेवन की भी छूट दी गई है, पर एक मर्यादा के अंतर्गत। हम संयम अपने जीवन में जितना बढ़ायेगें, हमारा जीवन उतना ही विकसित होता जाएगा। ये हमारे मानक हैं संयम, सादगी, सदाचार ही धर्म के

मूलभूत मूल्य हैं, यह हमारे जीवन में जितने विकसित होगें हम समझेंगें हमारे अर्थ और काम में उतना ही ज्यादा नियंत्रण बढ़ता जा रहा है। एक आचार्य ने बड़ी मार्मिक प्रेरणा देते हुए हर व्यक्ति को धर्म के मार्ग पर चलने की बात कही है, उनका कहना है-

अनित्यानि हि शरीराणि वैभवोः न हि शास्वतः।
मृत्यु सन्निहितों नित्यं, कर्त्तव्यों धर्म संग्रहः।।

तुम्हारा शरीर अनित्य है, वैभव भी शाश्वत नहीं है, कब नष्ट हो जाये कुछ पता नहीं और मृत्यु भी एकदम सामने खड़ी है, जीवन किस क्षण में तुम्हारी अंतिम श्वास निकल जाए कुछ भरोसा नहीं है, इसलिए धर्म को धारण करो। जीवन की सार्थकता इसी में है। धर्म, अर्थ और काम इन तीनों पुरुषार्थों में सम्यक् संतुलन बनाते हुए हम अपने जीवन का उत्कर्ष करें इसी शुभ भावना के साथ अपनी वाणी को विराम दे रहा हूँ।

विवाह : औचित्य और उद्देश्य

चार पुरूषार्थ बताए गये हैं जो गृहस्थ जीवन के आधार स्तंभ हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इन चार पुरूषार्थों में धर्म को हम अपने जीवन के मंदिर की नींव समझें, मोक्ष को उसका शिखर और बीच की जो स्थिति है वह अर्थ और काम मय है। गृहस्थ का जीवन अर्थ और काम के बिना चल नहीं सकता। उसकी मजबूरी होती है, उसकी सीमायें होती हैं। वह अर्थ और काम का आश्रय तो लेता है लेकिन धर्म के नियंत्रण में। धर्म के नियंत्रण में अर्थ और काम का आश्रय लेकर वह आगे बढ़ता है और मोक्ष को हमेशा अपना लक्ष्य बनाकर के चलता है। इसलिए गृहस्थ धर्म, अर्थ और काम के मध्य सम्यक् संतुलन स्थापित करके अपने जीवन को गति देता है, अपनी दिशा निर्धारित करता है। आज उसी चर्चा को आगे बढ़ाते हुए कहा गया है कि गृहस्थ को धर्म, अर्थ और काम जिसे त्रिवर्ग भी कहा जाता है, इसकी सिद्धि के लिए योग्य गृहणी से जुड़ने की भी आवश्यकता रहती है। गृहस्थ के लिए तो सीधा-सीधा कहा गया है, "न गृहं गृहमित्याहु गृहणी गृह मुच्यते।" ईंट-गारे का मकान घर नहीं कहलाता, घर तो वह है जो गृहणी से जुड़ा हुआ है, जिसमें गृहणी है, गृहस्थ जब गृहणी से जुड़ता है तब गृहस्थ कहलाता है, और गृहणी से जुड़ने के बाद ही वह त्रिवर्ग के योग्य बनता है तभी वह धर्म, अर्थ और काम पुरूषार्थ की सिद्धि कर पाता है।

दो मार्ग बताए गये। एक साधु मार्ग और दूसरा गृहस्थ मार्ग। साधु का धर्म निवृत्तिमूलक धर्म है। उनके ऊपर कोई सामाजिक, कौटुम्बिक, पारिवारिक

दायित्व नहीं हैं। लेकिन गृहस्थ को अपने सभी प्रकार के दायित्वों का निर्वाह करना पड़ता है। उसकी अपनी एक सीमा है। गृहस्थ त्याग के मार्ग में पूरी तरह से नहीं बढ़ पाता जबकि साधू त्याग के मार्ग से ही बढ़ता है। साधना का राजमार्ग साधु जीवन है, उस राजमार्ग पर हर कोई नहीं बढ़ पाते। जो लोग उस राजमार्ग पर नहीं चल पाते उनके लिए भी एक मार्ग बताया गया है। वह मार्ग है–गृहस्थ का मार्ग। गृहस्थ भी अपने दायित्वों का निर्वाह करते हुए धर्म की आराधना कर सकता है। और उसके लिए ही तीन पुरूषार्थों की चर्चा की गई है धर्म, अर्थ और काम। जो गृहस्थ है उसे गृहणी से जुड़ना पड़ता है। जो अपने काम पर पूर्णतया नियंत्रण नहीं ला पाता, उसके लिए कहा है कोई बात नहीं, पूरी तरह से नियंत्रण नहीं कर पाते तो न सही, योग्य गृहणी से जुड़ने के उपरांत कम से कम योग्य गृहस्थ बनो। अपने आप को सद्गृहस्थ की श्रेणी में बिठाने का प्रयत्न तो करो।

गृहणी से जुड़ने के लिए गृहस्थ को विवाह करना पड़ता है, विवाह के सूत्र में बँधना पड़ता है। हमारे संतों का एक ही कहना है या तो तुम साधना के मार्ग में उतरो, साधु–जीवन बिताओ या फिर गृहस्थ जीवन को स्वीकार करो। तीसरा कोई मार्ग नहीं। या तो तुम ब्रह्मचर्य की साधना करो या स्वदार संतोष व्रत को धारण करो, एक पत्नी व्रत का पालन करते हुए सामाजिक मर्याद्राओं को अक्षुण्ण बनाओ। इसके अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं। इसलिए भारतीय संस्कृति में गृहस्थ को विवाह के सूत्र में बँधकर एक मर्यादित जीवन जीने का उपदेश तो दिया गया है, लेकिन बिना विवाह के मर्यादाहीन पाशविक वृत्ति का जीवन जीने की कोई इजाजत नहीं दी गई। और विवाह जैसी निर्मल परंपरा भारतीय संस्कृति में दी गई। विवाह को बहुत अच्छा सामाजिक अनुष्ठान कहा गया है। सब प्रकार की नैतिक और सामाजिक मर्यादाओं का पालन करने का आधार बताया गया है। विवाह को संतों ने पवित्र संस्कार माना है।

आज मैं जिसकी चर्चा करने जा रहा हूँ, वह गृहस्थ जीवन का एक महत्वपूर्ण पक्ष है जिसे भारतीय संस्कृति में बहुत अच्छे ढंग से रेखांकित किया गया है और जैन परंपरा में जिसके पालन के लिए बहुत अधिक बल दिया गया है। जैन चिन्तकों का, जैन आचार्यों का समाजवादी चिंतन बड़ा गहरा है। सामाजिक

मर्यादाओं को सुस्थापित करने के लिए जैन आचार्यों ने बड़ा अच्छा मार्गदर्शन दिया। इससे पहले कि हम अपनी बात को आगे बढ़ाये हम समझे कि विवाह का अर्थ क्या है।

भारतीय संस्कृति में विवाह के लिए अनेक शब्द गढ़े गये हैं। उन शब्दों के पीछे भी पूरा जीवन दर्शन समाहित है। आज विवाहं के लिए शादी जैसा घटिया शब्द आ गया है। शादी में वह अर्थ नहीं है जो विवाह में छुपा है। शादी का अर्थ तो बर्बादी है। जिनकी शादी होती है उनका विवाह नहीं विवाद रह जाता है। फिर उनके दाम्पत्य जीवन में कटुता बनी रहती है। वह दम्पति, दम्पति न रहकर गमपति बन जाते हैं। लेकिन विवाह का अपना अर्थ है। शब्द की भी अपनी तासीर होती है। शादी भारतीय शब्द नहीं विदेशी शब्द है। और विवाह भारतीय शब्द हैं। विवाह के लिए अनेक शब्द आते हैं- विवाह, उद्वाह, परिणय, पाणिग्रहण।

विवाह का अर्थ है विशिष्ट रूप से वहन करना। अर्थात पुरुष द्वारा कन्या का वरण करके, उसकी समस्त जिम्मेदारियों का जीवनपर्यन्त वहन करने का संकल्प लेना। दूसरा शब्द आता है उद्वाह-अत्यंत उच्च और उदात्त भावनाओं के साथ कन्या को लाकर उसकी सारी जिम्मेदारियों को अपने ऊपर लाद लेना उद्वाह है। एक शब्द है परिणय-इसका अर्थ है जो सब प्रकार की जिम्मेदारियों को अपने ऊपर ले लें। "परि आ समंतात नयति इति परिणय" वर वधू जब एक दूसरे से जुड़ें तो एक दूसरे के प्रति पूर्णतः समर्पित होकर एक दूसरे की सारी जिम्मेदारी अपने ऊपर आत्मसात कर लें। इसके बाद है पाणिग्रहण इसका अर्थ है हाथ थाम लेना। हाथ थामने का अर्थ है कि सारी जबाबदारी अपने ऊपर ले लेना। उसके प्रति हमें अपने दायित्वों का पूरी तरह से निर्वाह करना।

एक-एक शब्द में कितना गहरा-गहरा अर्थ छुपा है। विवाह का कुल अर्थ है स्त्री और पुरुष का परस्पर स्नेह और सौजन्य के बंधन में हमेशा-हमेशा के लिए बँध जाना। इस विवाह के लिए हमारे यहाँ मंजूरी दी गई, और जैन परंपरा में तो कहा गया कि अगर गृहस्थ विवाह कर लेता है तो विवाह के बाद भी वह ब्रह्मचारी रहता है। दो मार्ग हैं-या तो तुम ब्रम्हचर्य की साधना करके पूर्णतया ब्रह्मचर्य का पालन करो, यदि ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर पाते तो स्वदार संतोष व्रत को धारण

करो। एक पत्नी व्रत को धारण करो। एक पत्नी या एक पति के अतिरिक्त अन्य किसी के प्रति मन में कोई दुर्भावना मत लाओ। अपने काम को एक सीमा में केंद्रित कर लो। विवाह का अर्थ जीवन का केंद्रीकरण है। अपनी असीम आकांक्षा को एक में सीमितं कर लेना, विवाह का मूल उद्देश्य है। जिसमें व्यक्ति अपनी मर्यादा को स्थापित कर ले। मर्यादा का हनन न हो सके, इसका ही नाम स्वदार संतोष व्रत है। स्वदार संतोष व्रत के आते ही दृष्टि में इतनी पवित्रता आ जाती है कि जिसने व्रत को धारण कर लिया उसे अपने पति-पत्नी के अतिरिक्त हर कोई माँ, बहिन या पुत्री जैसे दिखने लगे और हर कोई के प्रति पिता, पुत्र या भाई जैसा भाव उत्पन्न हो जाए। अगर किसी को देखकर माँ, बहिन या पुत्री जैसी भावना उमड़ती है तो यह कितनी पवित्रता की बात है। किसी को देखने के बाद यदि पिता, भाई या पुत्र जैसी दृष्टि उत्पन्न होती है तो यह आँखों की कितनी पवित्रता है। ऐसी पवित्रता आने के बाद ही हम अपनी समाज को ठीक कर सकते हैं। भारतीय संस्कृति में यही कहा गया है-

आत्मवत् सर्वभूतेषु पर द्रव्येषु लोष्ठवत्।
मातृवत् परदारेषु यः पश्यति स पण्डितः।।

यह तभी हो सकता है जब व्यक्ति या तो ब्रह्मचर्य को स्वीकार ले या स्वदार संतोष व्रत का पालन करके अपनी असीम आकांक्षा को नियंत्रित करे। विवाह का उद्देश्य सिर्फ भोग और विलासिता की आग में अपने आप को झोंकना नहीं है।

विवाह का उद्देश्य वासना का निमंत्रण नहीं, वासना पर नियंत्रण है। एक पर केंद्रित होकर अपनी तमाम वासनाओं को नियंत्रित करना ही विवाह का ध्येय है। सामाजिक मर्यादाओं में बँधकर मानवीय जीवन जीना ही विवाह का लक्ष्य है। जब कहीं कोई बाँध बनाना पड़ता है, तो पहले सर्वेक्षण करते हैं। बाँध बनाते समय कुछ गेट भी बनाये जाते हैं, इसलिए नहीं कि उससे पानी को निरंतर बहाएँ। बल्कि गेट अक्सर बंद रहता है, लेकिन जब बाँध को खतरा होता है तब खोला जाता है। जब पानी का वेग अधिक होता है और गेट न खोलने पर बाँध के टूटने का भय होता है, तभी धीरे-धीरे गेट खोल दिया जाता है और उतना ही गेट खोला जाता है जितने में खतरा टल जावे। खतरा टलते ही गेट को बंद कर दिया जाता

है। बंधुओ, विवाह करने का अर्थ सिर्फ इतना ही है- एक बाँध बनाया। एक सामाजिक मर्यादा का बाँध बनाना जिसमें सब तरफ ब्रह्मचर्य की सुदृढ़ दीवारें हैं, सिर्फ एक गेट खुला है वह गेट भी तब खोला जाता है जब सामाजिक मर्यादा के बाँध के टूटने का भय रहता है, क्योंकि यदि वह गेट नहीं खोलते तो यह बाढ़ का पानी सब को डुबा देगा। जब व्यक्ति के अंदर वासना की बाढ़ आती है तो उसके लिए विवाह का द्वार खोला गया है और यदि व्यक्ति के अंदर पूरे पानी को अपने ही अंदर पचाने की क्षमता है तो उसको विवाह तक की आवश्यता नहीं। वह तो ब्रह्मचर्य को धारण करें। व्यक्ति के अंदर की वासना की बाढ़ को नियंत्रित करने के लिए विवाह की बात कही गई और यह कहा गया कि तुम ब्रह्मचर्य का पालन कर साधु जीवन अंगीकार करों अथवा वैवाहिक बंधन को स्वीकार करो। बंधन मुक्त होना मानवीय जीवन नहीं है, यह सभ्यता भी नहीं मानी जाती। ऐसा पशुओं का रहन-सहन होता है, अथवा कबीलों में असभ्य लोग रहते हैं उनके ऐसे आचार विचार होते हैं जो बिना विवाह के रहते हैं। लेकिन जो शिष्ट हैं, सभ्य हैं वह विवाह को स्वीकार कर मर्यादित जीवन जीते हैं। जब से मानव समाज में सभ्यता का विकास हुआ तब से विवाह प्रथा का प्रारंभ हुआ। विवाह प्रथा की शुरूआत सर्वप्रथम भगवान ऋषभदेव ने की।

जैन परम्परा के अनुसार जब हम विवाह के इतिहास पर विचार करते हैं, तो ज्ञात होता है कि भगवान ऋषभदेव के पहले यहाँ विवाह पद्धति नहीं थी क्योंकि नर-नारी युगल रूप से रहते थे और युगल संतान को जन्म देकर दिवंगत हो जाते थे। युगलिया, युगलिया को जन्म देते और चले जाते और वे दोनों जीवनपर्यन्त पति-पत्नी के रूप में रहते। विवाह जैसी कोई परम्परा विकसित नहीं हुई थी। लेकिन सबसे पहले इस युग में विवाह किया गया तो भगवान ऋषभदेव का जो अंतिम कुलकर नाभिराय ने किया। उन्होने सुनंदा और नंदा नाम की दो कन्याओं से ऋषभदेव का विवाह कराया और विवाह की परिपाटी चला दी। उस समय से जो विवाह परंपरा विकसित हुई, वह परंपरा आज तक जारी हैं। और हमारे यहाँ गृहस्थ के लिए धर्म, अर्थ काम के पुरूषार्थ की सिद्धि के लिए कहा गया कि गृहस्थ विवाह करें। क्योंकि जब विवाह करके वह पत्नी को लाता है तो वह पत्नी उसकी अर्धांगिनी बन जाती है और अर्धांगिनी के लिए कहा गया ***"अर्धं जाया विशेत्***

पतिम" यानि पत्नी पति के हृदय में बस जाती है। मन-वचन-काय से दोनों एकाकार हो जाते हैं और जब ऐसी एकरूपता आती है तब जीवन का विकास अपने आप प्रारंभ हो जाता है। जीवन में सामंजस्य स्थापित होने लगता है। ऐसे ही सामंजस्य को स्थापित करने की प्रेरणा दी गई है और यही विवाह का उद्देश्य है। बहुतों का यहां विवाह हो चुका है, बहुत विवाह के चक्कर में होंगे, पर विवाह करने वाले, और जिनका विवाह होने वाला है, उन सबसे मैं यह कहना चाहता हूँ कि विवाह के उद्देश्य को समझो।

जैन ग्रंथों मे विवाह के तीन उद्देश्य बताए गये हैं -

१. धर्म संपत्ति

२. प्रजा उत्पत्ति

३. रति

इन्हें पढ़कर मैं बिल्कुल आश्चर्य में पड़ गया कि कहाँ तो यह कहते हैं कि गृहस्थी में फँसने वाला धर्म भ्रष्ट हो जाता है। वह धर्म नहीं कर सकता, साधना के मार्ग में नहीं बढ़ सकता, जंजाल में फँस गया। और यहाँ पहला उद्देश्य बताया जा रहा है ***"धर्म संपत्ति"*** विवाह के बाद धर्म संपत्ति कैसी। और रति को तो एकदम अंत में ले जाकर रखा है।

यही तो हमारी भारतीय संस्कृति की विशेषता हैं। यह भोग और विलासित्ता की संस्कृति नहीं है, भारत की संस्कृति तो त्याग और संयम है, योग, साधना है। हमेशा भोग से योग की ओर बढ़ने की शिक्षा और प्रेरणा भारतीय वसुंधरा में दी गई है, इसलिए रति को सबसे अंत में रखा गया और सबसे पहले धर्म संपत्ति को धर्म संपत्ति के प्रति जब मेरा ध्यान गया तो हमने समझा कि अपने यहाँ तो विवाह को धर्म-विवाह कहा गया है, पत्नी को धर्म-पत्नी कहा गया है, सहधर्मिणी कहा गया है। यह क्यों कहा गया है- यह इसीलिए कहा गया कि जब गृहस्थ विवाह के सूत्र में बँध जाता तो उसका धर्म पुरूषार्थ प्रारंभ हो जाता है। जब तक वैवाहिक संबंध स्थापित नहीं होते तब तक वह धर्म पुरूषार्थ भी नहीं कर पाता। आज जितने भी बड़े-बड़े धार्मिक आयोजन होते हैं, चाहे पंचकल्याण प्रतिष्ठा क हो या कोई वड़ा महायज्ञ हो, उसमें किसी विधुर को मुख्य-पदों पर नहीं बिठाया, जाता

किसी कुंवारे को मुखिया नहीं बनाया जाता। सौधर्म इंद्र तो वही होगा जिसकी इंद्राणी होगी। इसलिए सहधर्मिणी कहा गया, जो धर्म में हमेशा साथ दे, जो अपने पति को धर्म मार्ग में लगाए। विवाह करने के बाद जिसे धर्म विवाह कहा गया है, व्यक्ति को अपनी धार्मिक चेतना का विकास करना चाहिए। उसे यह सोचना चाहिए कि मैं अपने एक पत्नी व्रत धर्म या पति व्रत धर्म का सही ढ़ंग से निर्वाह कर सकूँ, धर्म विवाह में आप यह भी समझो एक पत्नी व्रत को धर्म कहा गया। अपने पति व्रतत्व को संरक्षित रखें और एक पत्नी व्रत को भी सुरक्षित रखा जाए तो यह धर्म हो सकता है। जो व्यक्ति वैवाहिक सूत्र में बँध जाते है, उन्हें अपने धर्म पुरूषार्थ को विशेष गति देने की कोशिश करनी चाहिए। उन्हें धार्मिक आयोजनों में बढ़-चढ़कर के भाग लेने का प्रयत्न करना चाहिए। जो सद्गृहस्थ होते हैं, धर्म के पुरूषार्थ को निरंतर गति देते रहते हैं, धर्म पुरूषार्थ में उनका हमेशा ध्यान रहता है, जहाँ कहीं भी ऐसा धार्मिक अवसर आता है, उसका लाभ उठाने में वह बिल्कुल नहीं चूकते, अपने धर्म के साथ हमेशा-हमेशा लगे रहते हैं। बिना विवाह के धर्म पुरूषार्थ हो ही नहीं सकता। आशाधर जी ने लिखा-

सत् कन्यां ददता दत्तःसत्रिवर्गो गृहाश्रमः।।

जिसने किसी को कन्यादान दी है, तो वह कन्या नहीं पुरूष के लिए त्रिवर्ग दे दिया। अर्थात् धर्म, अर्थ और काम तीनों दे दिया। बिना विवाह के धर्म, अर्थ और काम पुरूषार्थ नहीं आता या तो विवाह नहीं किया तो धर्म से सीधे मोक्ष पुरूषार्थ में गये। अर्थ और काम पुरूषार्थ तब सार्थक होते हैं, जब धर्म जुड़ता है और धर्म अर्थ, काम तब बनता है जब व्यक्ति वैवाहिक जीवन स्वीकार करता है। बहुत अच्छी बात लिखी गई कि

अर्धं भार्या मनुषस्य, भार्या श्रेष्ठतमा सखा।
भार्या मूलत्रिवर्गस्य भार्या मूल तरिस्यति।।

मनुष्य की आधी तो उसकी पत्नी है। भार्या बहुत अच्छी मित्र होती है। इसीलिए सहधर्मिणी कहा। बड़े-बड़े बिगड़े हुए पतियों को धर्म के मार्ग में लगाने वाली सतियों से हमारे पौराणिक आख्यान भरे पड़े हैं। सबको इन्हीं ने ठिकाने लगाया- चेलना ने श्रेणिक को, सोमा सती ने अपने पति को, रत्नावली ने तुलसी

दास को धर्म से लगाया। इनकी बुद्धि ठीक की। इसीलिए कहा है त्रिवर्ग की मूल भार्या है। धर्म, अर्थ, काम का मूल! क्या बात कही। पुरूष के लिए स्त्री-स्त्री के लिए पुरूष, जब दोनों जुड़ते हैं, दोनों अपने-अपने ढंग से काम करने लगते हैं तब उनके पुरूषार्थ की सिद्धि होती है, तभी उनके जीवन का विकास प्रारंभ होता है। इसलिए विवाह का पहला उद्‌देश्य धर्म संपत्ति बताया है, जो व्यक्ति वैवाहिक जीवन जी रहे है, जिनका भी पाणिग्रहण संस्कार हो चुका वे अपनी धर्म संपत्ति को न भूलें। धर्म अर्जन में कभी न चूकें। बल्कि धार्मिक आयोजनों में तो दोनों प्राणियों को एक साथ मिलकर भाग लेना चाहिए। इसीलिए तो धर्मपत्नि कहा, इसीलिए सहधर्मिणी कहा, अन्य कार्यों में भले ही स्वतंत्र रूप से आप काम कर लो पर धार्मिक कार्य में जब भी भागीदारी रखो समान भगीदारी रखो, साथ-साथ चलो।

दूसरा है प्रजा उत्पत्ति-वंश परंपरा के संचालन के लिए। संतान के क्रम के विकास के लिए विवाह किया जाता है। अगर कोई व्यक्ति विवाह न करे तो वंश परंपरा नहीं चल सकती और हर व्यक्ति में इतनी सामर्थ्य नहीं कि वह ब्रह्मचर्य का पालन कर सके तो आवश्यक है कि वंश को चलाने के लिए विवाह हो। रति को तो सबसे अंत में रखा गया है। पर आज के इस आपाधापी के युग में जहाँ मूल्यों की हीनता दिनोंदिन बढ़ती जा रही है, मूल्यबोध समाप्त होता जा रहा है आज सारे उद्‌देश्य गौण होते जा रहे हैं, रति ही मुख्य उद्‌देश्य बन गया है। और जब विवाह का उददेश्य मात्र रति रह जाता है, तब वह विवाह, विवाद का कारण बन जाता है। वह जीवन के विकास का साधन नहीं बन सकता। हम हमेशा इन पवित्र उद्‌देश्यों को सामने रखकर चलें। कितना उच्च ध्येय और कितनी उदात्त भावना हमारी संस्कृति में निहित है। इसे हम समझें, और अपने जीवन में अंगीकार करें, उन्हें आत्मसात करें। ऐसी भावनाओं से जब हमारा जीवन अनुप्राणित होता है तब जीवन का विकास होता है। वह व्यक्ति गृहस्थ होने के बाद भी विरक्त होता है, उदासीन गृहस्थ होता है। गृहस्थ होने के बावजूद गृहस्थी में उलझता नहीं, वह गृहस्थ होकर भी साधना की ओर आगे बढ़ता जाता है, ऐसे ही गृहस्थ आगे चल कर साधक बन जाते हैं। यह विवाह के उद्‌दश्य की बात की गई। अब हमें इससे जुड़े हुए एक-दो बिंदुओं पर और विचार करना हैं। विवाह किससे करें? कब करें? कैसे करें?

विवाह किससे करें? *"समशील कृतोद्वोहान्यत्र गोत्रजैः"* समान कुल और समान शील होना चाहिए। जब कभी किसी से किसी का विवाह हो रहा है उसमें अगर समानता नहीं हो तो मित्रता नहीं होगी, प्रेम नहीं होगा, प्रेम नहीं होगा तो सामंजस्य नहीं होगा, सामंजस्य नहीं होगा तो जीवन कभी सुखी नहीं होगा। सामंजस्य स्थापित करने के लिए दो बातें हैं परस्पर विश्वास और समानता। परस्पर का विश्वास हो तो प्रेम स्थापित हो सकता है, समानता हो तो दो हृदय आपस में जुड़ सकते हैं। और यह नहीं है तो दोनों में जुड़ाव नहीं होगा। हमारे आचार्यो ने इसी को लक्ष्य रखते हुए कहा है कि शील और कुल की समानता होनी चाहिए। कोई कन्या अगर भिन्न कुल में चली जाती है; जहाँ के रीति रिवाज, रहन-सहन, और आचार-विचार से बिल्कुल अपरिचति और अनभिज्ञ है, तो वहाँ वह अपने आप को एडजस्ट नहीं कर पायेगी; अपने जीवन को चला नहीं पायेगी। भिन्न कुल में जाने के बाद अपने मन को प्रसन्न नहीं रख सकेगी। न पत्नी को प्रसन्नता होगी न, पति को प्रसन्नता होगी, न सास-ससुर को, न परिवार के किसी व्यक्ति को प्रसन्नता होगी। बात-बात में अनबन होने लगेगी और फिर शुरू होगी तानाकशी। फिर एक दूसरे में विवाद प्रारंभ होगे लगेगा और ऐसे चलते-चलते एक घर के दो घर बनने में देर नहीं लगेगी। ऐसा होता है, जब एक दूसरे को एडजस्ट नहीं कर पाते। बहुत कम लोग होते है जो इतने समझदार हों कि भिन्न कुल से आई हुई कन्या को अपने विचारों में धीरे-धीर ढाल लें। पर ऐसा होता नहीं हैं। वहाँ वह अपने ही घर में बिलकुल अजनबी बन जाती है क्योंकि उसे रीति-रिवाजों का बिल्कुल पता नहीं होता इसलिए कहा, कुल की समानता हो। यह कुल की समानता की बात सांप्रदायिकता की दृष्टि से नहीं, कुल की समानता जीवन में और संबंधों में समानता लाने के लिए कही गई है। एकदम अपरिचित और अनभिज्ञ के यहाँ जाने से बिल्कुल उल्टा हो जाता है, और ऐसे बहुत सारे उदाहरण देखने को मिले हैं।

इसके साथ दूसरी बात कही कि कुल की समानता हो, अन्य गोत्री से हो। आज का विज्ञान भी यह बात कहता है। विज्ञान भी कहता है कि सगोत्री से विवाह करेंगे तो संतान उतनी उत्तम उत्पन्न नहीं होगी। अन्य गोत्री से करेंगे तो संतान उत्तम उत्पन्न होगी। इसके साथ-साथ शील की समानता होनी चाहिए, वैचारिक

समानता होनी चाहिए। अगर वैचारिक समानता नहीं होती तो गड़बड़ हो जाता है। एक धार्मिक परिवार में पली-पुसी लड़की, जिसकी धार्मिक विचार धारा हो, और एकदम आधुनिक विचारधारा वाले किसी अधिकारी के बेटे से उसकी शादी कर दी जाए तो वह जीवन भर दुखी होती है क्योंकि उसे वैसा वातावरण नहीं मिलता, सब तरह से बाध्य होना पड़ता है। मैंने ऐसा देखा, हम, लोगों का एक स्थान पर चातुर्मास हुआ, वहाँ एक लड़की का विवाह एक अधिकारी के बेटे से कर दिया गया। लड़की परिचित थी,। एक दिन किसी तरह वह हम लोगों के पास आई और रोने लगी, हमने पूछा-"क्या हुआ?" उसने कहा कि -"क्या बताऊँ महाराजजी, मेरे माता-पिता ने तो मुझे नरक में ढकेल दिया।" फिर भी बात क्या है? बोली- "महाराज मेरे घर में धर्म जैसी कोई बात ही नहीं है, हर बात के लिए मजबूर किया जाता है। मंदिर तक जाने नहीं दिया जाता। मैं क्या करूँ। सब के सब अत्याधुनिक विचार धारा वाले हैं। इससे अच्छा तो यह होता कि किसी गरीब के यहाँ मेरी शादी कर दी होती। मैं अभाव में जीवन बिता लेती। पर मैं क्या करूँ। कोई मार्गदर्शन दें।"

ऐसे दुख को मैंने देखा। तब मैंने सोचा कि आचार्यों की बात की उपेक्षा की जायेगी तो ऐसा ही होगा। समान शील होना चाहिए। समान कुल होना चाहिए धार्मिक विचारधारा वाले को, धार्मिक विचारधारा वाला ही परिवार देखना चाहिए। वैचारिक, सामाजिक और धार्मिक समानता होनी चाहिए। तब फिर सामंजस्य स्थापित होता है। आचार्यों ने कहा-कुल देखो, रूप देखो, धन देखो, वंश देखो, विचार देखो, पर ये सब बातें तो गौण हो गयीं। आज या तो अधिकारी देखा जाता है या पैसा देखा जाता है। गुण नहीं देखा जाता। पैसे से अगर तुम्हारे यहाँ बहू आयेगी तो घर में तमाशा दिखायेगी। जो बहू पैसा लेकर आएगी वह सास की सेवा न कर, सास से पानी भरवायेगी। एक अमीर घर की बेटी किसी गरीब के घर में आ जाये तो वहाँ आकर वह राज करेगी, काम नहीं करेगी। और गरीब घर का बेटा अमीर लड़की से विवाह करे तो उसे हीन भावना से देखा जाएगा। गरीब बेटी, अमीर घर में आएगी तो दासी की तरह व्यवहार होगा। अमीर बेटी गरीब के घर में आती है तो राज करती है। सारा सामंजस्य बिगड़ जाता है।

इसीलिए कहते हैं समानता में ही मैत्री होती है। ***"समानशीलव्यसनेसु***

सख्यं" समान शील और समान रूचि में ही मित्रता होती है। मित्रता का आधार है जहाँ एक सी विचार धारा हो, जहाँ एक सा आचार हो, जहाँ एक सी सोच हो और परस्पर में दोनों के प्रति सम्मान हो वहाँ मित्रता होती है। इस चीज का ध्यान रखा जाता है। एक लड़की अगर दूसरे घर में जाती है, जैसे ही शादी होती है, वह पराई हो जाती है, और पराये घर में तो सब कुछ नया होता है। वहाँ एडजस्ट करने के लिए उसे आत्मीयता मिलनी चाहिए और वह आत्मीयता तभी मिलेगी जब वैचारिक समानता होगी, जब धार्मिक समानता होगी, तब वह आत्मीयता उपलब्ध होगी, और ऐसी समानता नहीं होती तो वह आत्मीयता नहीं होती, और अपने ही घर में बेटी पराई हो जाती है। एक विचारक ने बड़ी अच्छी बात कही है, उन्होनें कहा कि "कन्या के पाँच रूप होते हैं, जिनमें एक उसके पिता के गृह से संबंधित रहता है और चार उसके पति के गृह से संबंधित रहते हैं।" पहला रूप कन्या का है। दूसरा रूप वधू का है, जब शादी होती है। तीसरा रूप है भार्या का- वधू बनते ही वह पूरे कुटुंब का भरण पोषण करती है इसलिए भार्या कहलाती है। चौथा रूप है जननी का, जब वह संतान को उत्पन्न करती है तो वह जननी कहलाती है। और जैसे ही संतान को उत्पन्न करती है तो माता कहलाने लगती है। कन्या, वधू, भार्या, जननी और माता ये एक स्त्री के पाँच रूप हैं। जिसमें एक रूप पिता के घर में और चार रूप पति के घर में रहते हैं। अगर कोई स्त्री अपने पति के घर में आई है, तो यहाँ उसको ४ रूपों का पालन करना है, तो उसे ऐसा वातावरण देना चाहिए और ऐसा वातावरण बनाने के लिए हमें इन सब बातों का पहले से ही विचार करना चाहिए । हमेशा कुल और शील की समानता में ही विवाह करना चाहिए।

आजकल शादी-विवाहों में इन बातों का विचार नहीं किया जाता। इसलिए बहुत सारी विसंगतियां होती हैं, विवाह के लिए वर के बारे में भी विचार करने की बात की गई है। बाल विवाह का जैन परंपरा में बहुत पहले से निषेध किया गया उसमें कहा गया *"उम्मुक बाल भावे"* जब कन्या बाल भाव का त्याग करे तभी उसकी शादी करें। बाल विवाह न करें। वर और वधू में एक आयु सीमा निश्चित की गई है, वर को वधू से कम से क्रम एक वर्ष और अधिक से अधिक बारह बर्ष बड़ा होना चाहिए। यदि इसके अनुरूप विवाह होता है तब तो ठीक है, अन्यथा

वह धार्मिक दृष्टि से ठीक नहीं है। उसका परिणाम भी गलत होगा। पुराणों में देखने के बाद, जैन आगम साहित्य का अवलोकन करने तीन प्रकार की विवाह पद्धति प्राचीन समय में प्रचलित दिखती है। पहली पद्धति जो माता पिता की इच्छा से होता था उसका नाम धर्म विवाह है। माता-पिता किसी योग्य वर की तलाश करते और कन्या से उसका पाणिग्रहण संस्कार करा देते। दूसरी पद्धति में कन्या अपने वर का स्वयं चयन करती जिसको स्वयंवर-विवाह कहते हैं। और तीसरा वह जहाँ माता-पिता की अपेक्षा नहीं रहती, स्त्री-पुरूष दोनों आपस में राजी होकर विवाह कर लेते इसे "गंधर्व विवाह" कहा जाता हैं। इस विवाह को सबसे निकृष्ट विवाह कहते हैं। इसे सामाजिक मान्यता नहीं दी गई। पहले दोनों विवाहों को बहुत अधिक मान्यता मिली। आजकल गंधर्व विवाह को आधार बनाकर प्रेम विवाह शुरू हो गया है। "लव.मैरिज" का रिवाज दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है और कोर्ट में जाकर विवाह कर लिया जाता है। पर बंधुओ क्षणिक भावुकता के आवेग में बहने वाले लोग, ऐसे संबंध तो कर लेते हैं पर पूरा जीवन बोझ बन जाता है। ऐसे संबंध टिकाऊ नहीं होते। आंकड़े बताते हैं कि जितनी भी लव मैरिज होती हैं, उनमें अधिकांश असफल होते हैं। अमेरिका में २५ करोड़ की आबादी है और वहाँ लगभग १४०० लोग रोज तलाक लेते हैं। क्यों? भारतीय परंपरा में तो धर्म विवाह की बात की गई है, दूसरी रीति से जिनका विवाह होता है उनकी पत्नी,पति को परमेश्वर के रूप में देखती है। लेकिन जहाँ इस पद्धति के विपरीत विवाह होता हे वहाँ पत्नी-पति के पर्स को देखती है। पर्स भरा है तो ठीक है और पर्स खाली तो सब गड़बड़ है। प्रेम विवाह कभी टिकाऊ नहीं होता। जो व्यक्ति थोड़े दिन के संबंधों को देखकर के सिर्फ शारीरिक सुंदरता से प्रभावित होकर या क्षणिक आवेग-उद्वेग में बहकर के स्वीकार कर लेते हैं, वे अपने जीवन के साथ बहुत बड़ा खेल कर लेते हैं। उनका जीवन हमेशा-हमेशा के लिए बर्बाद हो जाता है।

आजकल लोग प्रेम कम, प्रेम का अभिनय अधिक करते हैं। अभिनय में कृत्रिमता होती है। अभिनय हमेशा छलने के लिए किया जाता है, और जो लोग इसके शिकार हो जाते हैं, उनका जीवन बर्बाद हो जाता है। मैं ऐसे अनेक लोगों को जानता हूँ जिन्होंने प्रेम प्रदर्शित करके विवाह तो कर लिया पर बाद में मार-मार कर मजबूर कर दिया। इसलिए प्रेम विवाह ठीक नहीं, छल करते हैं

लोग। हम लोग भोपाल में थे, पर्यूषण पर्व के समय एक मुसलमान युवक मेरे पास आया उसने कहा-"महाराज इस पर्यूषण पर्व में मैं भी एकासन करना चाहता हूँ। और मैं चाहता हूँ आपके पास रूकूँ।" बड़ा आश्चर्य हुआ। एक मुस्लिम युवक दस दिन एकासन करना चाहता है। मैंने उससे पूछा- "पहले यह बताओ कि तुम्हारा मांसाहार का त्याग है? उसने कहा-"यह तो नहीं है पर दस दिन के लिए कर लेंगे।" हमने कहा कि दस दिन के लिए नहीं पहले मांसाहार का आजीवन त्याग करो, फिर इसकी बात करना। फिर उससे पूछा कि अच्छा बताओ एकासन क्यों करना चाहते हो? उसने कहा-"महाराज मेरे एक जैन मित्र हैं, उनके पिताजी का स्कूटर से एक्सीडेंट हो गया और उनकी मृत्यु हो गई। मैं उनके गम को दूर करने दस दिन का एकासन करना चाहता हूँ।" उसकी बात सुनकर मुझे संदेह हुआ, मुझे लगा कि बात कुछ और है। मैंने उसका पता लिया और बाद में आने को कहा। मैंने लोगों से बातचीत की, पता लगवाया। पता लागने पर मालूम पड़ा जिस एक्सीडेंट की बात की गयी वह बिल्कुल सही है। पर उसकी किसी लड़के से मित्रता नहीं थी, उसका अनुराग उनकी लड़की से था। वह उनकी लड़की से शादी करना चाहता था। और दस दिन का जो एकासन कर रहा था उसका उद्देश्य सिर्फ यही था कि मैं बता दूँ मैं जैन हो गया हूँ। मैं जैन धर्म का पालन करने लगा हूँ। और इस प्रलोभन में मेरी शादी हो जाए, उसके पश्चात मार-मार कर मुसलमान बना लेंगे। ये होता है। पर मुझे मालूम पड़ा वहाँ के लोगों ने बताया, अब उस लड़की की शादी हो गई जैन परिवार में। ऐसा छल होता है। ऐसा रोज हो रहा है। मैं तमाम युवक-युवतियों से यह कहना चाहता हूँ कि आधुनिकता की होड़ में ऐसे बहाव में भूलकर भी न बहें, अपने जीवन के साथ इतना बड़ा खिलवाड़ न करें। प्रेम विवाह और धर्म विवाह में क्या अंतर है मैंने कुछ पंक्तियाँ लिखी हैं-

प्रेम विवाह और धर्म विवाह में बस इतना ही अंतर है-

एक में प्रेम पहले होता है विवाह बाद में

दूसरे में विवाह पहले होता है प्रेम बाद में

परिणाम

एक में प्रेम खो जाता है विवाह रह जाता है।

दूसरे में विवाह खो जाता है प्रेम रह जाता है।

जीवन भर प्रेम और आत्मीयता, यह भारतीय संस्कृति है। इसका अनुपालन व्यक्ति को करना चाहिए, अपनी वृत्तियों पर नियंत्रण रखकर के चलना चाहिए जीवन सिर्फ भोग और बिलासता के लिए नहीं मिला है, ये जीवन तो त्याग और संयम के मार्ग पर आगे बढ़ने के लिए मिला है। हम अपने मनुष्य जीवन को सार्थक बना सकते हैं। यह हमारे यहाँ विवाह की पद्धति है, धर्म विवाह ही सबसे अधिक मान्य विवाह है।

शास्त्रों में आठ प्रकार के विवाह बताए गये हैं- (१) ब्रह्म विवाह (२) प्रजापत्य विवाह (३) आर्ष विवाह, (४) देव विवाह (५) आसुरी विवाह (६) पैशाचिक विवाह (७) गंधर्व विवाह और (८) राक्षस विवाह। ऐसे आठ प्रकार के विवाह बतलाए। जिसमें पहला ब्रह्म विवाह - वह विवाह कहलाता है जहां माता-पिता अपनी इच्छा से योग्य वर को अपनी कन्या का दान करते हैं और उनके लिए उपहार स्वरूप सामग्री आदि भी दिंया करते हैं। प्रजापत्य विवाह कहलाता है- जहां संभ्रान्त व्यक्ति, संभ्रात व्यक्ति को अपनी बेटी देते हैं। देव विवाह - पुराने समय में जब बड़े-बड़े यज्ञ होते थे तो यज्ञकर्मियों को यज्ञकर्ता अपनी कन्यायें दे दिया करते थे। आर्ष विवाह, वह कहलाता है जो आज विवाह पद्धति है, जिसमें अग्नि को साक्षी मानकर उसके फेरे लगते हैं, वह आर्ष विवाह कहलाता है। लेकिन आसुरी विवाह और इसके आगे के जो विवाह हैं वह योग्य विवाह नहीं हैं। जिस विवाह में लेन-देन को लेकर झगड़े होते हैं उस विवाह को आसुरी विवाह कहते हैं, क्योंकि उनके ऊपर आसुरी वृत्ति हावी हो जाती है। आजकल ऐसे विवाह ही अधिक होते हैं क्योंकि व्यक्ति के अंदर आज मनुष्य नहीं रहा, उसके ऊपर असुर और पिशाच की छाया पड़ गई है। वह पिशाच और कोई नहीं धन का पिशाच है, वह पिशाच परिग्रह का पिशाच है जिसने मनुष्य की आत्मा को पूरी तरह जकड़ लिया है। राक्षसी विवाह- जिसमें किसी का अपहरण करके विवाह किया जाता है उसे राक्षसी विवाह कहा गया है। पैशाचिक विवाह-जिसमें

किसी को सोते से उठाकर विवाह किया जाता है उसे पैशाचिक विवाह कहते हैं। गंधर्व विवाह की चर्चा पहिले ही की जा चुकी है। पहिले के चार विवाह वैध बताये गये है और बाद के चार विवाह अवैध हैं। विवाह के बारे में लगभग सारी बातें हो गई हैं। मैं अंतिम एक बिंदु पर चर्चा करके अपनी बात को यहीं विराम दूँगा।

आज सबसे बड़ी समस्या है कि विवाह कैसे करें। आज विवाह में एक ओर फिजूलखर्ची और दूसरी ओर दहेज। ये दोनों चीजें ऐसी आ गई हैं, जो हमारी संस्कृति के लिए अभिशाप बन रही हैं। आज विवाह में जो बड़े-बड़े समारोह होते हैं, लाखों रूपया आतिशबाजी और ऐशो आराम के लिए बर्बाद कर दिये जाते हैं ये धन का बहुत बड़ा अपव्यय है। आतिशबाजी करना तो बहुत बड़ी मूर्खता है, यह महान हिंसा का कारण है। मेरी दृष्टि में तो अतिशबाजी का अर्थ अपने पैसों में आग लगाना है और क्या है, कौन सा आनंद है? पर मनुष्य अपनी प्रतिष्ठा के मोह में इस तरह का कृत्य करने लगा। रात्रि की शादियाँ जहाँ होती हैं वहाँ थ्री डी का फैशन चल गया है। ये थ्री डी क्या हैं? आपको शायद नहीं मालूम ड्रिंक, डांस और डिनर। और इसमें क्या नहीं होता, रात-रात भर लोग पत्ते खेलते रहते हैं। ऐसी फिजूलखर्ची पर अंकुश लगाना चाहिए। और दूसरी है दहेज, इसका तो मनुष्य दीवाना हो गया है। अब तो इस दहेज ने ऐसी विकराल समस्या हमारे समाज में खड़ी कर दी कि कन्या को जन्म भी नहीं लेने दिया जा रहा है। एक जमाना था जब कन्या जन्म लेती थी तो मातम मनाया जाता था। मध्यकाल का इतिहास पढ़ने से ज्ञात होता है कि कन्या जन्म लेती थी तो मार डाला जाता था। आज के वैज्ञानिक युग में तो आदमी उससे भी आगे बढ़ गया है, वहाँ कन्या को जन्म लेने का तो अधिकार था, अब तो भ्रूण परीक्षण के द्वारा उसके जन्म लेने के पहले ही उसे मार डाला जाता है। ये सब क्यों हो रहा है? दहेज के कारण। अगर किसी घर में कन्या जन्म लेती है तो मातम मनाया जाता है और बेटे के जन्म में खुशी। किसी के ४-५ बेटे क्या हुए, घर में कल्पवृक्ष ऊग आया। जितना चाहो उसे भुनाओ। सोचने की बात है। आज तो बात इतनी आगे बढ़ गई है कि बेटे की पढ़ाई-लिखाई का सारा खर्च उसकी सगाई में गिनवा लिया जाता है। इतना ही नहीं उसके व्यापार व्यवसाय के लिए भी मोटी रकम ऐंठी जाती हैं। और हमने तो यहाँ तक सुना है कि बेटे का विदेश का रिटर्न टिकिट भी दहेज में लेने लगे

हैं। क्या हो गया है सोचने की जरूरत है। यह क्यों हो रहा है? दहेज के कारण। और इसे करा कौन रहा है? मैं तो हमेशा कहता हूँ। आज जो दहेज की स्थिति बनी है। पहले समय में भी दहेज की बात थी। प्रीति दान दिया जाता था और प्रीति-पूर्वक दिया जाता था। ये दहेज तो शब्द ही घटिया है। बाद में प्रचलित हुआ। इसका मूल शब्द प्रीतिदान है। जिसमें वर और वधू दोनों पक्षों की तरफ से दिया जाता था और यह सब चीजें कन्या को सौंप दी जाती थीं।

मैंने इस पर विचार किया तो मेरी समझ में आया, ऐसा इसलिए किया जाता था कि जब कभी वर-वधू संयुक्त परिवार से अलग होवें तब उन्हें आर्थिक विपन्नता न झेलना पड़े। इसलिए वह सब कुछ समर्पित कर दिया जाता था। लेकिन आज तो प्रीतिदान कन्याओं के बलिदान का कारण बनता जा रहा है। अब प्रीतिदान में प्रीति ही नहीं रही तो दान कहाँ रहेगा। जहाँ प्रीति ही खत्म हो गई वहाँ दान बलिदान का कारण बनता जा रहा है। आज ऐसा ही होता जा रहा है, अब तो टेक्स के रूप में दहेज लेना शुरू हो गया है। आज अनिवार्य हो गया है, इसमें मैं तो यह समझता हूँ जितनी भी दहेज संबंधी दुर्घटनाएँ घटती है, उन में सबसे ज्यादा भूमिका सासों और ननदों की होती है, कहीं न कहीं से उनका योगदान रहता है। आज नारी ही नारी की सबसे बड़ी दुश्मन हो गई है। आज नारी जाति का जो अवमूल्यन हो रहा है वह स्वयं नारी कर रही है। जितनी अधिक प्रताड़ना, तानाकशी और पीड़ा आज नारी, नारी को दे रही है, उतना कोई नहीं कर रहा है। इसलिए कई बार मैं कहता हूँ कि अपनी लड़कियों की शादी करने में कुंडलियां मिलाने का तुम्हारे यहाँ रिवाज है, तो कुंडली तो मिलाओ लेकिन लड़के से बाद में, उसकी सास से पहले मिलाओ। पटेगी कि नहीं पटेगी क्योंकि आज तक हमने कभी नहीं सुना कि स्टोव सास के पास फटा हो, हमेशा बहू के ही फटता है। पता नहीं स्टोव कैसे पक्षपात करता है।

मनुष्य पैसे का दीवाना हो गया है। थोड़े से पैसे के पीछे एक जीती-जागती लक्ष्मी-सी मूर्ति को जलाने में भी व्यक्ति नहीं चूकता। जिसका देवी जैसा रूप है, उसे नष्ट करने में भी नहीं चूकता। थोड़ा सोचें तो सही आज तुम्हें किसी ने अपनी कन्या दी है, तो क्या कुछ नहीं दिया, उसके बाद जो लोग लाखों लाख का दान करते हैं, वो दस बीस हजार रूपये के पीछे उसे मरने तक को

मजबूर कर देते हैं या मार तक डालते हैं। इससे बड़ा जघन्य कार्य क्या होगा। कभी सोचा तुमने कि किसी ने अगर बेटी दी है तो क्या नहीं दिया, तुम्हारे लिए एक बेटी ही नहीं दी उसको पढ़ाने-लिखाने के खर्च का अगर हिसाब लगाया जाए तो बीस बाईस साल में करीब ४ लाख का खर्च आता है। ४ लाख का खर्च, देवी सा रूप और अपने कलेजे का टुकड़ा तुम्हें प्रदान कर दिया, उसके बाद भी तुम्हारे लिए संतोष न हो तो क्या होगा ? जो लोग अपने घर की बहुओं के साथ ऐसा करते हैं वह यह सोचें कि कल के दिन तुम्हारी बेटी किसी के घर जाएगी, तुम्हारी बहन किसी के घर जाएगी और उसके साथ ऐसा कार्य किया जाए तो तुम्हारे ऊपर क्या बीतेगी ? कभी विचार किया? वह भी किसी की बेटी है, वह भी किसी की बहन है। आज तुम उसके साथ कर रहे हो। कल तुम्हें भी किसी की बहू बनना पड़ेगा तुम भी किसी की बेटी थी, ऐसी स्थिति में व्यक्ति को सम्हलना चाहिए। व्यक्ति के ऊपर जो धन की दीवानगी छा गई है, उस पर अंकुश लगाना चाहिए।

दहेज प्रथा के साथ जो विवाह किया जाता है कानूनन अपराध तो है ही। धार्मिक दृष्टि से भी बहुत बड़ा अपराध है। यह एक बहुत बड़ा शोषण है, हिंसा है। जो व्यक्ति दहेज लेकर के ऐसा कार्य करते हैं वह कभी भी धार्मिक नहीं हो सकते। आज मैंने आपको विवाह के संबंध में जो बात कही हैं, तो इतना जरूर आप अपने मन में बनाकर रखें कि हम विवाह करें पर दहेज को गौण करके करें। दहेज की भावना से कभी न करें। वर के रूप, कुल, गुण आदि देखें, धन न देखें धन तो हाथ का मैल है। व्यक्ति जो स्वेच्छा से सामर्थ्य के अनुरूप देता है उसको स्वीकारने का विधान तो किया जा सकता है, लेकिन जबरदस्ती दबाव देकर या प्रत्यक्ष रूप से धन लिया जाता है यह बिल्कुल अमानवीय कृत्य है, समाज के लिए कलंक है, उसके लिए व्यक्ति को सोचना चाहिए। ऐसे व्यक्तियों को तो और अधिक ध्यान रखना चाहिए जो धार्मिक समारोहों में भाग लेते हैं, साधुओं की संगति में रहते हैं, धर्म प्रवचनों का लाभ लेते हैं तभी तुम्हारा जीवन सार्थक होगा।

आज मैंने त्रिवर्ग के योग्य 'आदर्श गृहणी' के पूर्व, विवाह के औचित्य और उद्देश्य के बारे में आपसे चर्चा की। कल चर्चा होगी आदर्श गृहणी की। आज इतना ही, इसी के साथ अपनी वाणी को विराम देता हूं।

आदर्श गृहणी

गृहस्थ की शोभा गृहणी से बढ़ती है, गृहणी के अभाव में घर, घर नहीं कहलाता। गृहस्थ जब तक गृहणी से नहीं जुड़ता तब तक वह त्रिवर्ग की सिद्धि नहीं कर पाता। गृहस्थ के जीवन में गृहणी की बहुत बड़ी भूमिका है। गृहणी अगर संस्कारित हो तो वह घर को स्वर्ग बना सकती है और गृहणी के योग्य न रहने पर स्वर्गोपम घर भी नरक जैसा बन सकता है। पूरी गृहस्थी का संचालन गृहणी करती है, गृहस्थी की गाड़ी को जिस दिशा में वह ले जाना चाहे ले जा सकती है। गाड़ी कैसी भी हो सब कुछ ड्राइवर पर निर्भर करता है वह उसे किस दिशा में ले जाता है। गृहणी यदि सुसंस्कारित हो, गृहणी यदि योग्य हो, गुणवान हो तो गृहस्थी की गाड़ी को ठीक ढंग से बढ़ाते हुए जीवन के अंतिम लक्ष्य तक पहुँचा सकती है। गृहणी पर बहुत कुछ निर्भर करता है इसलिए हमें गृहणी के गुण-दोष पर विचार करना बहुत जरूरी है। हमें आज आदर्श गृहणी की बात करनी है जो घर को स्वर्ग बना देती है।

गृहणी के संबंध में हम चर्चा करें उससे पहले हम यह जानें कि गृहणी को इतना महत्त्व क्यों दिया गया है। भारतीय परंपरा में गृहणी जो एक नारी है, उसे बहुत सम्मान दिया गया है। यह सत्य है कि एक जमाने में नारी को बहुत कोसा गया, लेकिन जब हम भारतीय संस्कृति के इतिहास पर विचार करते हैं, तो हमें देखने को मिलता है कि जो सम्मान नारी को भारत में दिया गया वह सम्मान कहीं

नहीं दिया गया क्योंकि नारी सिर्फ नारी नहीं है, वह नर को जन्म देने वाली है। नारी न हो तो नर का जन्म नहीं हो सकता, नारी को नारायण की जननी कहा गया है। वह तीर्थंकर भगवंतों जैसे श्रेष्ठ पुरूषों को जन्म देती है। पुरूषों के पास यह पात्रता नहीं है कि वह किसी को जन्म दे सके, लेकिन नारी के पास यह सामर्थ्य है। उसे प्रकृति का वरदान मिला है, उसे तीर्थंकर जैसे महान आत्मा को जन्म देकर अपनी कोख को कृतार्थ करने का सौभाग्य मिला है, रत्नकुक्षी की धारक वह कहलाती है, नारी सिर्फ नर को जन्म ही नहीं देती वरन् नर को जन्म देने के बाद उसे सुसंस्कारित भी करती है और जो नारी माँ बनकर अपने बेटे को सिखा सकती है, पढ़ा सकती है वह बड़े-बड़े विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में भी अर्जित नहीं किया जा सकता। सारे विद्या केन्द्रों से बड़ी शिक्षा एक माँ दे सकती है। इसलिए कहावत है कि एक माँ का ममत्व सौ शिक्षकों की शिक्षा से भी बड़ा होता है। शिशु का पहला प्रेम माँ के प्रति ही होता है। यह माँ की भूमिका है, इसलिए यहाँ से नारी जीवन की महत्ता अपने आप बन जाती है। नारी, नर को जन्म देती है, नर को एक अच्छा आदमी बनाती है। अच्छा नर एक अच्छा आदमी बनता है, अच्छा आदमी समाज का अच्छा घटक होता है। और ऐसे घटकों से जिस समाज की संरचना होती है वह सभ्य, स्वस्थ और व्यवस्थित समाज कहलाती है। नारी करूणा, दया, ममता की प्रतीक है। नारी की यही विशेषता उसे महान बनाये है। वह मानव की प्रेरणा शक्ति बनी है। इसलिए भारतीय परंपरा में नारी को माँ का सम्बोधन दिया गया। माँ तो मान का प्रथम अक्षर है, इससे बड़ा सम्मान दुनिया में किसी को कहीं नहीं दिया गया। पहले अक्षर से संबोधित किया गया। दुनिया की किसी भी संस्कृति में नारी के लिए माँ जैसा शब्द नहीं है, वहाँ मातृत्व जैसी बात नहीं है जहाँ माँ आया वहां मान का सर्वस्व आ गया। इतना अधिक सम्मान भारत में नारी को दिया गया और यह कहा गया कि

यत्रनार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।
शोच्यन्ते तु यत्रैता विनस्त्याशु हि तत्र कुलम्।।

जहाँ नारियों की पूजा होती है, उस कुल में देवता रमण करते हैं और जिस कुल

में नारी शोकमग्न होती है वह कुल विनष्ट हो जाता है, उस कुल का सर्वनाश हो जाता है। इससे बड़ा गुणगान और कहाँ होगा। लेकिन यह हर किसी पर नहीं यह उसके लिए कहा गया है जो नारी निर्दोष हो, जो नारी गुणवान हो जिसके जीवन का कोई आदर्श हो। ये सारे विशेषण उसी पर लागू होते हैं। इसलिए कहा जाता है ***"निर्दोष नारी अभ्युदयकारी"*** जो नारी निर्दोष होती है, वह अभ्युदयकारी होती है।

नीतिकारों ने नारी की तुलना नदी से की है। नदी के दो कूल होते हैं और नारी के दो कुल होते हैं। नदी के दो किनारे होते हैं। नदी जब अपने दोनों किनारों के बीच मर्यादित होकर बहती है, तो वह नदी मीलों तक हरियाली फैला देती है, अनेको प्रणियों को जीवन प्रदान करती है, अनेकों की प्यास और पीड़ा को हर लेती है। लेकिन वही नदी जब अपनी मर्यादा का उल्लंघन कर देती है तो अपने दोनों कूलों को डुबा देती है, नदी में जब बाढ़ का दूषित पानी बढ़ जाता है, वह मर्यादाविहीन होकर अपने दोनों कूलों को डुबा देती है। इसी प्रकार नारी के दो कुल हैं। ***"उभय कुल विवर्धनी कन्या"*** कहा गया। उसका जीवन तो देहरी पर रखे हुए दीपक की तरह है, जो अंदर और बाहर दोनों तरफ प्रकाश पैदा करता है। नारी अपने पितृ कुल और पति कुल दोनों को गौरवान्वित करती है। यदि वह सुसंस्कारित है तो अपने दोनों कुलों को गरिमामंडित कर सकती है और यदि उसके जीवन में दोष आ जाये, यदि उसके जीवन में विकृति आ जाए, यदि वह संस्कारहीन हो तो अपने दोनों कुलों को डुबा देती है, दोनों कुलों की कीर्ति को कलंकित कर देती है। अपने कुलों की महिमा को खंडित कर देती है, नदी में बाढ़ आने से नदी अपने किनारों को डुबाती है, नारी के अंदर जब दोष प्रकट होते हैं तो दोनों कुलों को डुबा देती है कहा भी है-

नद्र्यश्च नार्यश्च सदृशी प्रभावः
कूलानि कुलानि समानमेतत्
तोयैश्च दोषैश्च निपातयन्ति

नदी और नारी दोनों समान प्रभाव वाले हैं। नदी जल से अपने कूलों को डुबा देती है और नारी दोष से अपने कुल को डुबा देती है। अंतर दोनों में नहीं है, कुल दोनों के हैं, पर एक गुरु होता है और नारी का कुल लघु होता है बस इतना ही

अंतर है, दोनों डुबा सकती हैं। इसलिए नारी को गुणवान बनना चाहिए और कहते हैं *"नारी बनो सदाचारी"*- अपने कुल को महिमा मंडित बनाओ, अपने कुल के गौरव और कीर्ति को आगे बढ़ाओ, कुल को कलंकित नहीं करो। यदि उसके जीवन में गुण हों, संस्कार हों तो वह निश्चित ऐसा कर सकती है। और ऐसी ही सस्कारवान नारियों के लिए भारतीय संस्कृति में अत्यधिक सम्मान दिया गया। उन्हें यह कहा गया कि वह सृष्टि के लिए गौरवशाली पद को धारण करती हैं। ऐसी ही नारियों के लिए यह कहा गया कि जहां ऐसी नारीयाँ होती हैं, ऐसी नारियों का जहाँ सत्कार होता है वहां देवता भी रमण करते हैं, ऐसे गुणों की विशिष्टता की बात कही गई।

जैन परंपरा में तो नारी को बहुत अधिक सम्मान दिया गया है। नारी के उत्थान के लिए बहुत कुछ कहा गया है। हमारे तीर्थंकरों ने नारियों को अपने समवशरण में स्थान दिया। उन्हें शिक्षित-दीक्षित किया और उनके जीवन के उत्थान और उत्कर्ष का मार्ग प्रशस्त किया। नारी की शिक्षा की बात चलती है कि नारी को शिक्षित और संस्कारित होना बहुत जरूरी है। नारी अगर शिक्षित और संस्कारित होगी तो वह अपने घर को सही ढंग से चला सकेगी और यदि वह शिक्षित संस्कारित नहीं है तो अपने घर को सही ढंग से चला भी नहीं सकेगी। इसलिए बार-बार कहा जाता है कि नारी को शिक्षित करें और जैन परंपरा में सबसे पहिले नारी को ही शिक्षा दी गई है। भगवान ऋषभदेव ने जो अंक और अक्षर विद्या दी, वह उन्होंने अपनी दोनों पुत्रियों ब्राह्मी और सुंदरी को दी। भरत बाहुबली को नहीं दी। पहले शिक्षा नारी को दी गई क्योंकि नारी की शिक्षा, नारी के संस्कार से घर में बहुत कुछ परिवर्तन आ सकता है, और ऐसी ही नारियों को लक्ष्य करते हुए जैन धर्म में यह कहा गया है कि-

नारी गुणवती धत्ते सृष्टिरग्रिमं पदं

अगर नारी गुणवान हो, नारी सुशिक्षित हो, नारी यदि संस्कारित हो वह सृष्टि में अग्रिम पद को धारण कर सकती है, अग्रिम पद को प्राप्त कर सकती है। यह सारा का सारा सौभाग्य एक नारी को मिला है। पर कौन सी नारी जो आदर्श नारी हो नारी विवाह होने के उपरांत जब गृहणी बनती है, तो आदर्श गृहणी कहलाती है।

आदर्श गृहणी के लिए पांच गुण बताए गये हैं, जो प्रत्येक गृहणी के जीवन में होना चाहिए, ऐसे गुणों से मंडित होने वाली गृहणी अपने घर को स्वर्ग बना देती है, वह पांच गुण हैं

(१) पति परायणता (२) धर्मशीलता (३) कार्यकुशलता (४) मितव्ययिता (५) कुलीनता

जिस गृहणी का जीवन इन पांच गुणों से मण्डित होता है वह अपना तो उद्धार करती ही है, पूरे के पूरे घर को सुधार देती है। घर के ढांचे को बदल देती है।

पतिपरायणता- भारत में नारी के लिए एक दृष्टि प्रदान की गई है। पति को परमेश्वर मानने की दृष्टि। पति के लिए परमेश्वर का भाव भारतीय संस्कृति में हमेशा रहा है। और नारियों ने अपने शील को सुरक्षित रखते हुए, पति की सेवा करते हुए, बिगड़े-बिगड़े पतियों को भी सही रास्ते पर लगा दिया और इसी कारण पत्नीयाँ अर्धांगिनी बनीं। अर्धांगिनी हर स्त्री नहीं बन सकती। अर्धांगिनी वह बन पाती है, जो अपने पति के हृदय में स्थान जमा लेती है और पति के हृदय में स्थान वही पत्नी बना सकती है, जिसके हृदय में अपने पति के प्रति बहुत अधिक सम्मान हो, अपने पति के प्रति बहुत अधिक आदर हो, अपने पति के प्रति आंतरिक समर्पण हो। ऐसी स्त्री पतिपरायण होती है। पर आजकल पति परायणता तो खत्म हो गई, पति पलायन ज्यादा शुरू हो गया। आज पति पलायन स्त्रियों की भरमार हो रही है। पति परायणता का आदर्श खत्म हो गया है। बात-बात में ठनती जा रही है। यह हमारी अपनी नादानी है। दाम्पत्य जीवन की कटुता का यही कारण है। ऐसा होने से गृहस्थ के जीवन में समरसता नहीं आ पाती। इसलिए कहा गया कि पतिपरायणा हो, और स्त्री यदि पति परायण हो तो अपने पति को किस तरह से रास्ते पर लगाती है, इतिहास में ऐसे अनेक आख्यान भरे पड़े हैं।

मुझे एक प्रसंग स्मरण आ रहा है, अकबर के जमाने का। अकबर के जमाने में राजा मानसिंह मेवाड़ के बहुत बड़े राजा थे, उनकी तीन रानियाँ थीं। बड़ी रानी एक बहुत बड़े राजघराने की थीं, उसे अपनी संपन्नता का बहुत अधिक अभिमान रहता था। दूसरे नंबर की जो रानी थी वह एक साधारण परिवार की थी, पर बहुत विनम्र, बहुत अधिक शालीन और अत्यंत शिष्ट थी। वह अपने राजा को मन से प्यार करती थी। तीसरी रानी कुछ अधिक रूपवती थी। वह हमेशा

राजा को अपने ही प्रेमपाश में बाँधे रखने का प्रयत्न करती थी। वह चाहती थी कि राजा सिर्फ मेरे ही प्रेम में बंधे रहें। उसे अपनी सौतों से बहुत अधिक ईर्ष्या होती थी। एक बार अचानक अफ़गानों का भारत पर आक्रमण हुआ। और सम्राट अकबर का राजा मानसिंह के पास एक संदेश पहुँचा कि आप अफगानों से लड़ने के लिए जाएं। राजा मानसिंह अफगानों से लड़ने के लिए निकले और युद्ध में उन्हें पराजित करने के उपरांत विजय का सेहरा बांधे अपने नगर में आये। उनका जोरदार स्वागत किया गया। और पहले ही दिन वह अपनी छोटी रानी के महल में पहुंचे। छोटी रानी ने बातचीत में अवसर पाकर राजा से कहा कि राजन! "आपको पता है आपके जाने के बाद आपकी मँझली रानी पीहर हो आई, वह भी आपकी आज्ञा के बिना। क्या आप उन्हें कोई दंड नहीं देंगे? यह तो आपकी मर्यादा का उल्लंघन है।" राजा ने सुना तो एकदम आग बबूला हो गया। बोला- "क्यों नहीं, मैं जरूर दंड दूंगा, यह तो मेरी आज्ञा और मर्यादा का स्पष्टतः उल्लंघन है। मैं इसे सहन नहीं कर सकता।" रानी तो यही चाहती थी। रात बीती, नित्य क्रियाओं से निवृत होने के बाद राजा अपने काम में लग गया, दिनभर उसे ख्याल ही नहीं रहा, रात होने पर वह मंझली रानी के यहां पहुंच गये। पर जैसे ही वहां पहुँचे, उन्हें छोटी रानी की बात का स्मरण हो आया। फिर क्या था, उनका क्रोध सातवें आसमान को छूने लगा और उन्होंने रानी को फटकारते हुए कहा कि तुमने हमारी मर्यादा को तोड़ा है, मैं तुम्हे बहुत बड़ा दंड दूंगा। तुम मेरी आज्ञा के बिना अपने मायके कैसे चली गई। रानी ने सुना तो हक्की-बक्की रह गई, लेकिन उसने अपने संतुलन को नहीं खोया और अपने आप को संभालते हुए उसने कहा "हां प्रभु, मैं आपकी आज्ञा के बिना अपने पिता के घर गई यह निश्चित ही अपराध है, इसके लिए आप जो दंड दे मेरे लिए शिरोधार्य है, पर मैं क्या करूं मैं तो मजबूर थी, मेरे पिता सख्त बीमार थे और अविलंब पहुँचने का संदेश मेरे पास आया था, इसलिए मुझे जाना पड़ा। आप जो कुछ भी मुझे दंड देना चाहे वह मेरे लिए शिरोधार्य है।" राजा नशे में धुत हो रहा था उसने कहा-"मैं तुम्हारी कोई भी बात सुनने को तैयार नहीं हूं, मैने कह दिया मैं तुमसे सख्त नाराज हूँ और तुम्हें देश निकाला देता हूं। तुम चाहो तो अपने पंसद की सिर्फ एक वस्तु ले लो और इसी रात इस राजमहल से बाहर निकल जाओ।" सुनकर रानी पर एकदम वज्रघात

सा हुआ। वह सन्न रह गई। पर तभी थोड़ी देर के लिए गंभीर हुई, कुछ चिंतन किया। राजा नशे में धुत होकर बिस्तर पर गिर पड़ा और वहीं बेहोश हो गया। रानी ने अपनी दासियों से कहारों को बुलवाया और दो डोलियां मंगवाई। अपनी दासियों की सहायता से बड़ी सावधानी के साथ एक में राजा को लिटाया और दूसरी पर स्वयं बैठ गई और रातोंरात महल से निकलकर अपने पिता के घर की ओर बढ़ चली। पिता का घर ज्यादा दूर नहीं था। रात बीतते-बीतते अंतिम पहर में वह अपने पिता के घर पहुंच गई और बड़ी सावधानी से राजा को बिस्तर पर लिटाया और ठीक उनके बगल में बैठकर पति के जागने की प्रतीक्षा करने लगी। सुबह हुई, पति की खुमारी उतरी, उसने आँखें खोलीं तो सारा दृश्य बदला बदला नजर आया, यह क्या है। यह तो वह कक्ष नहीं है, जहां मैंने रात्रि में विश्राम किया था। मैं कौन हूं, कहां से आया हूं, कहीं कोई स्वप्न तो नहीं देख रहा हूं। तभी उसने देखा कि उसकी पत्नी बगल में बैठी हुई है। तुम यहां कैसे? कहां आया हूं ? कौन मुझे लेकर आया है? पत्नी ने अपने धड़कते हृदय को सँभालते हुए कहा कि स्वामी मैं ही अपको यहां पर लेकर आई हूं और यह आपकी ससुराल है। तुम मुझे यहाँ कैसे लेकर आयीं, किसकी आज्ञा से लेकर आयीं, मैंने तो तुम्हें देश-निकाला दिया था। मैं ही यहां लेकर आयी हूं, और आपकी ही आज्ञा से यहां लेकर आयी हूं, और यह आपकी ससुराल है। मैंने तुम्हें ऐसी आज्ञा कब दी, "मैंने तो तुम्हें यह कहा था कि अपनी प्रिय वस्तु को लेकर यहां से निकल जाओ।" हां, मैंने वही किया है (पत्नी ने कहा) आपने कहा था कि तुम अपनी कोई एक प्रिय वस्तु को लेकर यहां से निकल जाओ, मेरे सबसे प्रिय आप हो इसलिए मैने चाहा कि आपको ही लेकर निकला जाए। आपने कहा था कि इसी रात यहां से निकल जाओं, मैं रात में ही निकल गई। और इस प्रकार मैंने आपकी आज्ञा का अक्षरशः पालन किया है। पत्नी की इतनी निष्ठा, इतना प्रेम, इतनी निश्छलता देखकर राजा बहुत शर्मिंदा हुआ और उसने कहां, "मैं भूल में था। मैंने अज्ञानता के कारण तुम्हारे प्रेम पर विश्वास नहीं किया और तुम्हारे साथ यह दुर्व्यहार किया इसके लिए मुझे क्षमा करो और अब मैं अपना वचन वापिस लेता हूं। चलो तुम्हारे पिता की हालत देखकर आते हैं।

यह है पति परायणता। एक ऐसा गुण, जिसके बल पर अपने विमुख पति

को भी रास्ते पर लगाया जा सकता है। ऐसी विचारधारा वाली गृहणी सीता की तरह सम्मान पा सकती है। ऐसी विचारधारा वाली गृहणी चेलना और सोमा सती जैसा स्थान पा सकती है। आज सीता जैसा सम्मान हर महिला पाना चाहती है, पर सीता जैसी निष्ठा किसमें है? सीताजी एक पतिपरायण महिला थीं जिसके कारण आज वह सारी की सारी दुनिया में पूज्य बनी हैं। आज ऐसी सीता कहाँ है ? आज ऐसी स्त्री कहाँ है, जो पति को वनवास जाना हो तो वह उनके साथ चलने को राजी हो। रामायण का बड़ा प्रेरक प्रसंग है। जब रामचन्द्र जी का वनवास हुआ, सीता जी भी साथ चलने का आग्रह करने लगीं। रामचन्द्र जी ने उन्हें समझाते हुए कहा था- "तुम जंगलों के कंटकाकीर्ण मार्ग पर कैसे चलोगी? तुम्हारे पैर अत्यंत कोमल हैं।"

सीताजी ने जो जबाब दिया वह अत्यन्त उद्‌बोधक है। सीताजी ने कहा-

"अग्रतस्ते गमिष्यामि मृदनन्तं तृण कण्टकान"

नाथ ! मैं अपने कोमल-कोमल पैरों से तीक्ष्ण कंकर-पत्थर और कांटों को मृदु बनाती हुई, आपके आगे-आगे चलूँगी।" कितनी पवित्र भावना। आज की सीता होती तो क्या कहती ? कहती *"विच्छेदाय गमिष्यामि न्ययालयमहम्-त्वरा।"* वह तो डॉयवोर्स करने की बात करती, वह किसी वकील के पास जाती और कहती आप तो तरकीब बताओ जिसमें ज्यादा से ज्यादा पैसे मेरे पास आ जाएं और संबंध विच्छेद हो जाए। इसलिए मैंने कल कहा था कि स्त्रियाँ पति के परमेश्वर जैसे रूप को नहीं देखतीं, वह पति के पर्स को देखती हैं क्योंकि वे भावनाएँ बदल गई हैं, पति परायणता समाप्त हो गई हैं, और यह गुण जिसके जीवन में नहीं होता वह गृहणी अपने आप को आदर्श गृहणी के रूप में संस्थापित नहीं कर सकती ।

गृहणी की जो दूसरी विशेषता है, वह विशेषता है- धर्मशीलता। गृहणी धर्मशील हो, सुसंस्कारित हो, धार्मिक भावनाओं से ओत-प्रोत हो, तो वह अपने घर के आचार, विचार, व्यवहार, व्यापार सबको बदल सकती है। गृहणी यदि संस्कारित हो तो वह अपने घर बच्चों को भी संस्कारित कर सकती है। गृहणी के लिए सुसंस्कारित होना अनिवार्य बताया गया है।

एक ऐसे ही दंपत्ति मेरे पास आये, विदिशा की घटना है, यह घटना
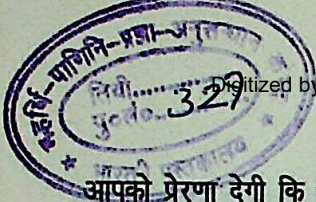
आपको प्रेरणा देगी कि यदि गृहणी ठीक हो तो घर कैसे सुधर सकता है। दोनों ही पति-पत्नी सुबह-सुबह मेरे पास आये और पति ने कहा कि महाराज जी इन्होंने मुझे नर्क जाने से बचा लिया। मैंने पूछा- "क्यों, क्या बात हो गई?" बोले- "महाराज मैं कांट्रेक्टर हूं, सप्लायर हूं और मैने अभी म.प्र.ल.उ. निगम से एक कांट्रेक्ट लिया, वह दस हजार ढोलक सप्लाई करने का था। एक ढोलक में मुझे दस रूपये की बचत हो रही थी, एक लाख के फायदे का सौदा लेकर मैं घर आया और मैंने इनको कहा, अभी-अभी यह सौदा लिया है, इसमें हमें इतना फायदा होना है।" जैसे ही मैंने इनको ढोलक सप्लाई की बात कही इन्होने दोनों कानों में हाथ रखते हुए कहा कि "मुझे नहीं चाहिए, ऐसा पैसा, आप यह क्या कह रहे हैं नर्क का रास्ता खोल रहे हो, आप कैंसिल करवाओ।" मैंने समझाया," इसमें क्या बात हो गई हम थोड़े-ही मार रहे हैं, यह तो सब मरे हुए जानवरों का होगा, अपने को तो सिर्फ सप्लाई देना है, और अपना काम हो गया।" पत्नी ने कड़ा प्रतिवाद करते हुए कहा कि "नहीं-नहीं हमें नहीं चाहिए, ऐसा पैसा, मैं साफ -साफ कह रही हूँ हमारे घर में ऐसा पैसा नहीं आना चाहिए। एक लाख की जगह दस लाख का भी लाभ हो, तो हमें ऐसा पैसा नहीं चाहिए।" पति ने कहा "पचास हजार रूपया अग्रिम भी जमा किया जा चुका है वह भी डूब जायगा।" पत्नी बोली "डूब जाये तो डूब जाय, हमें ऐसा पैसा नहीं चाहिए।" पति ने सोचा कि अभी कह रही है, थोड़ी देर बाद समझाने से मान जायगी, उसने उस दिन टाल दिया। दूसरे दिन सुबह होते ही पत्नी ने पति से कहा कि आज जल्दी से जल्दी उस सौदे को कैंसिल करवाके आओ, नहीं तो मेरा अन्न-जल का त्याग है, पूरे दिन मैंने उन्हें बहुत मनाया, उसने उस दिन अपने आप को निराहार रखा, दूसरे दिन का भी यही संकल्प था, तब पति का मन पसीजा उसने कहा, जाता हूँ और देखता हूँ क्या होगा, लेकिन अपना पैसा डूब जायगा। पत्नी ने कहा डूबता है तो डूब जाने दो पर हम अपने धर्म को नहीं डुबायेंगे, पचास हजार तो जाने दो हमारे भाग्य में आने वाला होगा, दस लाख भी आ सकता हैं, हमें उसकी कोई चिन्ता नहीं। वो वहां से गये, विभाग के डायरेक्टर से मिले, उन्होने कहा टेंडर कैंसिल नहीं हो सकता, उन्होंने अपनी मजबूरी बताई पर वे नहीं माने। पति ने पत्नी के आग्रह को देखकर जो पचास हजार जमा किया था, उसकी चिन्ता नहीं की और उन्होंने

कहा अब यह सप्लाई तो हम देंगे ही नहीं और फिर वह सीधे आये, अपनी पत्नी को सारा हाल सुनाया जब उससे पत्नी पूर्णतः संतुष्ट हो गई, तो उन्होंने कहा चलो पहले महाराज के दर्शन करें, फिर जाकर के अपना उपवास तोड़ेंगे। ऐसी दृढ़ता हर किसी में नहीं आ सकती। दूसरी कोई होती तो कहती चलो क्या फर्क पड़ता है, कोई न कोई तो सप्लाई देगा, अपन नहीं तो कोई दूसरा देगा सिर्फ पैसे को देखती। लेकिन एक धार्मिक संस्कारित अगर कोई गृहणी हो तो घर में धर्ममय वातावरण हमेशा-हमेशा बनाए रखती है। यह गृहणी की धर्मशीलता का उदाहरण है।

तीसरी विशेषता है कार्यकुशलता, गृहणी अन्य बातों को जाने या न जाने पर गृह कार्यों में तो कुशल होना ही चाहिए। वही गृहणी उत्तम गृहणी होती है, जो घर के कार्य को उत्तम ढंग से निपटाना जानती हो। एक परिवार में तीन-तीन बहुएँ थीं तीनो बहुत बड़े-घरों की थीं, और बहुत अधिक आधुनिक थीं। तीनों में रोज लड़ाई होती। काम करने के लिए कोई राजी नहीं होती, घर भर के लोग समझा-समझा कर परेशान थे। पर समझौता होता ही नहीं, कोई उपाय नहीं था। उस घर में चौथी बहू आई और घर में आने के बाद उसने जो नजारा देखा तो दंग रह गई कि यह घर है कि नर्क! यहां तो रोज महाभारत मचता है। सुबह होती नहीं कि एक दूसरे से लड़ने झगड़ने के अतिरिक्त कुछ नहीं नौ-नौ बज जाते हैं, कोई भी अपने बिस्तर से नहीं उठती। नौ बजने के बाद तो चूल्हा जलता है, और चूल्हा जलाने के लिए भी एक दूसरे का मुंह ताकते हैं कि कौन जलाए। उसने जैसे ही देखा तो उसे अपनी माँ की शिक्षायें याद आ गईं। उसने सोचा कुछ भी हो अब मुझे इस वातावरण को सुधारना चाहिए। वह बहुत संस्कारित और शालीन थी, सामान्यतः कोई बहू नये घर में जाती है तो दो चार दिन काम-धाम नहीं करती लेकिन दूसरे दिन वह समय से पहले उठी, घर की साफ-सफाई की और सबसे पहले चाय रख दी। जेठानियों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह क्या! आज तो उठते ही चाय मिल गई। और रसोई का पूरा काम निपटाया, समय पर सबको खाना मिल गया। सब प्रसन्न, आज सारा काम सरलता से हो गया। घर में चर्चा होने लगी कि घर में बहू आई है या देवी। सब तरफ बहू की प्रशंसा होने लगी। और जब सारा काम निपट गया तो उन तीनों को लड़ने का मौका भी नहीं मिला। लड़ाई नहीं हुई। मुहल्ले में भी बहू चर्चित हो गई। वर्षों से घर कुख्यात था और नई

बहू के आने से दो दिन में ही वह विख्यात हो गयी। सब ओर उसकी शोहरत फैल गई। अब उसने अपनी यही दिनचर्या बना ली। ५-७ दिन इसी तरह चला तो घर की अन्य महिलाओं को स्वयमेव ही प्रेरणा मिली कि जब यह काम कर रही है और इसका नाम हो रहा है, तो हम लोगों को भी अपना-अपना कार्य करना चाहिए। अतः उसके बाद तो घर का माहौल ही बदल गया और जिस घर में रोज कलह होता था, उस घर में प्रेम प्रकट होने लगा। एक गृहणी अच्छी आई तो घर बदल गया। कार्य कुशलता का यह उदाहरण है। काम से जी नहीं चुराना चाहिए। गृहणी का मूल कार्य घर चलाना है। कुशल गृहणी तो वही होती है जो अच्छे ढंग से घर चलाती है। जो घर न चलाकर दुनिया को चलाने जाती है, वह कर्त्तव्यों से दूर भागती है। इसलिए कार्य कुशलता होनी चाहिए, यह तो कार्यकुशल बहू की बात हुई।

एक प्रसंग कामचोर बहू के बारे में भी पढ़ा। एक विधवा माँ ने अपने बेटे को पढ़ा-लिखा करके मास्टर बनाया। बड़े अरमानों के साथ उसकी शादी की, घर में बहू आई, उस मां की सिर्फ एक ही इच्छा थी कि घर में बहू आ जायगी, तो बुढ़ापे में मेरा साथ देगी। अब तो मेरी कमर झुक गई। काम करते नहीं बनता, काम में थोड़ा सहयोग हो जायगा, पर बहू तो पूरी बहूरानी थी, महारानी कहना चाहिए। बहुत ज्यादा आधुनिक थी। सुबह होने के बाद सारा काम निपट जाता पर उन्हें उठाना पड़ता, उठती नहीं थी। सास- सीधी-सादी, भोली-भाली थी। उसने सोचा नई-नई बहू है दो चार दिन में काम सीख जायेगी। कालेज की पढ़ी लिखी है, सब ठीक हो जायगा।

लड़का बड़ा मातृभक्त था, उसने सुबह-सुबह देखा कि यह क्या मेरी माँ सुबह-सुबह कुंए से पानी लेने जाती है, अपने हाथ से झाड़ू लगा रही है, वृद्धावस्था में मां की यह स्थिति। बेटे से रहा नहीं गया वह मां के पास आया और झाड़ू लेने लगा और कहा माँ झाड़ू मुझे दे मैं तुझसे झाड़ू नहीं लगवा सकता। मां कहती है कि "बेटा क्या मैंने तुझे इसीलिए पढ़ा लिखा कर इतना बड़ा किया कि तुझसे झाड़ू लगवाऊं। तू तो मेरा राजा बेटा है मैं तुझसे झाड़ू नहीं लगवा सकती।" इसी बात को लेकर बातचीत होने लगी, बातचीत सुनकर महारानी की

नींद खुल गई। वह कमरे से निकलकर बालकनी में आई। खड़ी-खड़ी कुछ समय तक सबकुछ देखती रही। वहीं से खड़ी-खड़ी कहने लगी "अरे भई झगड़ते क्यों हो ? ऐसा करो दोनों एक-एक दिन लगा लिया करो।" ये कामचोर बहू है, ऐसे के जीवन में आदर्श क्या हो सकता है, हमें विचार करने की जरूरत है ।

चौथी विशेषता है मितव्ययता, गृहणी को मितव्ययी होना चाहिए। अपने पति की आय से अधिक व्यय नहीं करना चाहिये। घर का काम जितने कम में चल सके उतने में चलाने का प्रयत्न करना चाहिए। कुरल काव्य में कहा है कि "वही उत्तम सहधर्मिणी है जिसमें सुपत्नीत्व के सभी गुण समाहित हो तथा जो अपने पति की आय से अधिक व्यय नहीं करती हो।" आय और व्यय में सतुंलन बनता है तो घर का सारा संतुलन रहता है और यदि आय से अधिक व्यय होता है तो संतुलन बिगड़ जाता है। गृहणी की यह जिम्मेदारी होती है कि पति पर अनावश्यक बोझ और चिंता का कोई कारण न बनने दे। जितनी आय है, उससे कम में अपना काम चलाए। यह कुशल गृहणी का लक्षण है।

आजकल की गृहणियाँ तो बिल्कुल अलग हैं। वह पति की आय को नहीं देखतीं। अपनी नित नई नई मांगे रखती हैं। पति घर में आते नहीं कि सूची तैयार है। पति बेचारा कहां से पूर्ति करे। यह कुशलता नहीं है, पर आजकल तो चाहे जो मजबूरी हो मांग हमारी पूरी हो। मांगें पूरीं नहीं हुईं तो वह सरकार निकम्मी है।" सरकार तो आपकी है,निकम्मी बनाकर करोगे क्या। काम तो आपको ही चलाना है। मितव्ययिता जिस गृहणी के जीवन में होती है वह अपने घर मे बहुत बढ़िया सामंजस्य स्थापित कर सकती है। वह अपने घर को बहुत अंच्छे ढंग से चला सकती है। इसी कारण अपव्यय नहीं करना चाहिए। जितना सार्थक हो उतना ही लगाना चाहिए, बाकी बच जाए तो दूसरों के कल्याण में लगाने का प्रयत्न करना चाहिए।

अंतिम विशेषता है-कुलीनता-गृहणी में कुलीनता होना चाहिए, कुलीन संस्कार होने चाहिए। उसे अपनी मर्यादाओं का ध्यान रखना चाहिए। आज के समय में सारी कुलीनता, संस्कार समाप्त होते जा रहे हैं। कुरलकाव्य में बहुत अच्छी बात कही गयी कि "चार दीवारी में बंद रहने से क्या होगा, स्त्री का सबसे

बड़ा कवच तो उसका शील और संस्कार हैं।" आज शील और संस्कार नष्ट हो रहे हैं। कुल की सारी मर्यादायें समाप्त होती जा रही हैं। T.V. के इस युग में अपसंस्कृति फैलती जा रही है, आज तो सारा समय T.V, मेक-अप और अन्य-अन्य कार्यों में बर्बाद हो रहा है। मर्यादायें पूरी तरह समाप्त होती जा रही हैं। आजकल तो मंदिर में जाने के पहले ब्यूटी पार्लर जाने लगी हैं, जो ब्यूटी पार्लर में जाकर अपना फेशियल कराकर आवेगी, वह मंदिर में जाकर फ्रेश नहीं हो सकती बल्कि इस तरह से मंदिर आने में तो दूसरों के मन में भी दुर्भावनायें आने लगती हैं। इसकी संभावना अधिक है। इसलिए कुलीनता होनी चाहिए, कुलीनता से जो बंधी रहती है वह बहुत अधिक प्रभावी होती है।

आप देखिये भारतीय संस्कार कितने हैं। अगर कोई गृहणी भारतीय परिधान से युक्त होकर आती है तो वह गृहणी केवल गृहणी ही नहीं लगती उसमें साक्षात् देवी जैसा रूप झलकता है, वह अन्नपूर्णा, सरस्वती और लक्ष्मी जैसी दिखाई पड़ती है, और फिर कोई विदेशी परिधान पहन कर आती है- जींस और शर्ट, तो क्या तुम्हारे अंदर उसे देखकर मातृत्व या भगनित्व का भाव आता है। क्या तुम्हें वह देवी जैसे दिखाई पड़ सकती है, नहीं पड़ सकती। इसलिए कहते हैं कि कुलीनता होना चाहिए। इसके लिए पहली आवश्यकता है कुलीन संस्कार। कुल की मर्यादा का ध्यान रखना यह गृहणी का पहला कर्त्तव्य है। कुलीनता ही सात्विकता की जननी है। सात्विकता ही पुनीत, पावन पुण्य भाव की प्रेरक है। नारी के प्रति यही दृष्टिकोण होना चाहिए। यह पांच प्रकार के कर्त्तव्य है इन पांच प्रकार की विशेषताओं से सुशोभित गृहणियां ही अपने घर को बदल सकती हैं।

गृहणियों के ये कर्त्तव्य तो हैं ही पर नीति ग्रन्थों में पुरूषों के लिए भी कुछ कर्त्तव्य बताए हैं। नीतिकारों ने लिखा है कि पुरूष को अपनी पत्नी का पांच प्रकार से सत्कार करना चाहिये और यदि वह पांच प्रकार का सत्कार करता है तो पत्नी भी उस पर पांच प्रकार के अनुग्रह करती है। पांच सत्कार कौन से हैं, और पाँच अनुग्रह कौन से हैं बड़े ध्यान से सुनिये। (१) पत्नी को सम्मान देना चाहिए (२) घर में पत्नी का अपमान नहीं होने देना चाहिए (३) घर के सारे कार्य की जिम्मेदारी उस पर सौंप देना चाहिए (४) एक पत्नी व्रत का पालन करना चाहिए

और (५) पत्नी की वस्त्र आभूषणों की कमी नहीं होने देना चाहिए। जब पति पत्नी का पांच प्रकार से सत्कार करता है तब पत्नी भी उस पर पाँच प्रकार का अनुग्रह करती है। बहुत अच्छी बात कही गई, पत्नी सबका अपमान सह सकती है, यदि उसे पति का प्रेम मिले तो। इसलिए पति का पहला कर्त्तव्य होता है, वह उसकी अर्धांगिनी है वह उसका सम्मान करे। पत्नी को सम्मान देना चाहिए इसका यह आशय नहीं कि वह बीबी का गुलाम बन जाए, सम्मान दे, उसकी हर अच्छी बात को स्वीकार करे। पत्नी एक अच्छी मंत्री बन सकती है, अगर उसकी अच्छी बातों का मूल्यांकन किया जाए। पत्नी को यदि पति सम्मान देता है तो वह घर के कार्य को सही ढंग से चलाती है, सारी व्यवस्था बनाए रखती है,। घर में पत्नी का अपमान नहीं होने देना चाहिए। पति के रहते यदि पत्नी का घर में अपमान हो तो वह अंदर ही अंदर घुटती रहती है। ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि घर में रहते हुए पत्नी का अपमान न हो। पत्नी की कोई गलती हो तो उसे समझायें पर अपमान न होने दें। ऐसा होता है तो वह नौकर चाकर से प्रेमभाव व्यवहार बनाकर रखती है, घर की सारी जिम्मेदारी जव पत्नी को सौपी जाती है तो पत्नी घर की संपत्ति की पूरी तरह से देखभाल करती है। एक पत्नी व्रत का अगर पति पालन करता है, तो पत्नी भी पतिव्रता बन जाती है और उसके वस्त्र आभूषणों की कमी नहीं रहती तो सारा काम समय पर होने लगता है। फिर आपको समय पर चाय, समय पर भोजन। सब काम समय पर होने लगता है। लेकिन एक बात ध्यान रखना वस्त्र आभूषणों की कमी तो इन्हें नहीं होनी चाहिए पर अनावश्यक भी नहीं आने देना चाहिए। मितव्ययता को आपको ध्यान में रखना है, यह पूरी की पूरी व्यवस्था बताई गई है। इस ढंग से जो परिवार चलेगा वह परिवार बड़ा आदर्श परिवार बनेगा। उनका दाम्पत्य जीवन बहुत सुखमय होगा, बहुत आनंदमय होगा। लेकिन आजकल दाम्पत्य जीवन में अधिकतर कटुता देखी जा रही है, सारे सबंध कटुता पूर्ण होते जा रहे हैं. इसके ऊपर भी हमें विचार करना चाहिए।

आज के दाम्पत्य जीवन में जो कटुता आ रही है मेरे विचार से उसका एक ही कारण है, वह है समान अधिकार की भावना। बड़ी विकृत मानसिकता आजकल हो गई है, नर-नारी दोनों समान बनना चाह रहे हैं। नारी के मन में पति के प्रति

जो सम्मान होना चाहिए वह समाप्त हो गया। अब तो अधिकार की भावना आ गई। जहां समर्पण और कर्त्तव्य की भावना होती है वहां प्रेम बढ़ता है, सम्मान बढ़ता है और जहां अहंकार और अधिकार की बात आती है वहां कटुता फैल जाती है। नारी स्वभावतः कोमल होती है, पुरुष अपेक्षाकृत कठोर होता है। कठोरता को कोमलता से ही जीता जा सकता है। यदि दोनों कठोर बन जाएं तो टूटने के अतिरिक्त और कुछ नहीं रहेगा। नारी यदि विनम्र और कोमल है तो कठोर से कठोर पुरूष को अपना सेवक बना सकती है। किसी विचारक ने नर और नारी के सम्बन्धों को रेखांकित करते हुए बड़ी सटीक बात लिखी है- 'भयानक जंगल में दोनों अचानक मिलें और खोये से पुरुष ने कहा'- "आओ अब हम साथ रहें।" नारी ने सिर झुका लिया। पुरुष ने उसके कोमल हाथ अपने बलिष्ठ बाहुओं में थाम लिया। पुरुष नें कहा- "मैं कठोर हूँ। आदेश मेरा स्वभाव है और उसके विरूद्ध कुछ सुनने की मुझे आदत नहीं है। क्या तुम मेरे साथ रह सकोगी?" नारी ने कहा- "मैं कोमल हूँ। जीवन में उफान लाती हूँ और उसे अपने में समाती भी हूँ। मै सदा एक ही मुद्रा में स्थिर रहने वाले पर्वत का शिखर नहीं, लहरों में इठलाने वाली सरिता हूँ। पुरुष ने कहा- "तब तुममें मुझे अपना सेवक बनाकर रखने की क्षमता है।"

जहां ऐसी दृष्टि होती है वहां समाधिकार की होड़ नहीं, समानता का व्यवहार होता है। नर और नारी दोनों का समान महत्व है। उनमें कोई बड़ा या छोटा नहीं है। दोनों की अपनी-अपनी भूमिका है। एक दूसरे के अभाव में दोनों अधूरे और एकांगी हैं। दोनों को परस्पर में समन्वय बनाकर ही रहना चाहिए।

आज के समय में तो हर नारी, नर बनने जा रही है। नारी नर बनने के प्रयास में लगी है। यह भारतीय संस्कृति के लिए बहुत बड़ा खतरा है। नारी को नारी रहना चाहिए, उसे नर बनने का प्रयास नहीं करना चाहिए। नारी यदि नर बनने को उत्सुक होती है तो वह प्रकृति के विरूद्ध जाती है, क्योंकि नारी और नर की संरचना में बहुत अंतर है, दोनों की चाल-ढाल सब कुछ अलग है। भारतीय परंपरा में नर को व्यायाम और नारी को नृत्य बताया है। नारी हृदयप्रधान होती है, नर मस्तिष्क प्रधान होता है, दोनों में बड़ा अंतर है। नारी के अंदर करूणा, प्रेम आत्मीयता अधिक होती है, नर के अंदर अपेक्षाकृत इन बातों की कमी होती

हैं। आज की नारियां स्वयं को नर बनाने की होड़ में लगी हुई हैं। हो उल्टा रहा है,नर वह बन नहीं पा रही है, और नारी वह रह नहीं पा रही है क्योंकि नर का जो कार्य है वह नर ही कर सकेगा और नारी का जो कार्य है वह नर नहीं कर सकता। आज स्थिति विपरीत है कोई नारी यदि दुर्गावती जैसा काम करती है, तो उसके लिए सम्मान दिया जाता है और कोई नारी अच्छे ढंग से अपना घर चलाती है तो उसके लिए कोई सम्मान नहीं दिया जाता। और जब से नारियां नर के काम करने की होड़ में आगे बढ़ने लगी हैं अनेक प्रकार की विसंगतियां और सामाजिक विकृति बढ़ने लगी हैं। इस सन्दर्भ मे एक विचारक ने लिखा है-" नारी में जब वात्सल्यमयी भावनाएँ, करूणा, दया, ममत्व की कमी होती है, तब क्रूरता उभरती है।" क्रूरता अनुकरणीय नहीं है, जिस दिन नारी उसे स्वीकार कर लेगी उस दिन समस्त सदाचारों में विप्लव आ जाएगा। इसलिए इस विचारधारा पर हमें अंकुश लगाने की जरूरत है। नारी को नारी रहना चाहिए, उसको नर नहीं बनना चाहिए क्योंकि जिस दिन इस देश की नारियां नर बन जाएंगी उस दिन इस समाज से आत्मीयता, वात्सल्य, स्नेह, करूणा, प्रेम समाप्त हो चुकेगा। उस समाज की आप क्या कल्पना कर सकेंगे। इन सारे तत्त्वों से रिक्त जो समाज होगा वह अत्यंत बर्बर समाज होगा। हमें अपने समाज को बर्बर नहीं बनाना है। नारी और नर दोनों का अपना समान महत्त्व है, दोनों की समान भूमिका है। जितना प्रकृति में नर का महत्त्व है, नारी का महत्त्व भी उतना ही है। नर और नारी दोनों समान हैं हम किसी को ऊंचा या नीचा नहीं कह सकते, दोनों की अपनी-अपनी भूमिका है। गिरधर कवि ने अपनी कुण्डली में कहा है-

जीवन गाड़ी ज्ञान धूरी पहिये दो नर नारी।।
सुख मंजिल तय करन हेतु तुम रहु इन्हें सम्हारि।।
तुम रहु इन्हें सम्हारि लगे न उँचे नीचे।
दोनों सम जब होय चलो तब आँखें मीचे।।
कह गिरिधर कविराय यही तुम धारों निज मन।
या विधि हो नर-नारी सफल तब निश्चित जीवन।।

जीवन एक गाड़ी है जो ज्ञान की धुरी पर चलती है, नर और नारी इसके दो पहिये है। दोनों पहियों की समान भूमिका है। सुख की मंजिल तक पहुंचने के लिये दोनों

पहियों का समान होना जरूरी है। एक भी पहिया यदि छोटा-बड़ा हो तो गाड़ी बीच में ही गिर जाएगी। यदि किसी गाड़ी का एक पहिया ट्रेक्टर का हो और दूसरा स्कूटर का हो तो वह गाड़ी की जगह खटोला बन जाएगा। दोनों में समानता होना चाहिए।

हमारे शरीर में जितना "नाड़ी का महत्त्व है उतना ही समाज में नारी का महत्त्व है।" शरीर की नाड़ी अगर ठीक-ठीक काम करती है तो शरीर ठीक रहता है और इनमें कोई भी गड़बड़ हो जाती है तो स्वास्थ्य बिगड़ जाता है, समाज में अगर नारी ठीक है तो समाज ठीक है। शरीर में नाड़ी तंत्र ठीक है तो शरीर ठीक है। नारी समाज की नाड़ी है, उसे ठीक रखने की जरूरत है, उसे सुरक्षित रखने की जरूरत है। आज स्थितियां बदलती जा रही हैं। नारी समाज का निरन्तर अवमूल्यन होता जा रहा है। जिस नारी की इतनी महिमा बताई गई, जिसे देवी के रूप में पूजा गया आज वह विज्ञापन का सामान बनकर रह गई है, उसने अपने आपको अपने ही हाथों गिराना शुरू कर दिया है। इस अवमूल्यन को रोकना चाहिए। आज नारी के उत्थान और सुरक्षा की बात की जाती है, लेकिन नारित्व उतना ही असुरक्षित होता जा रहा है। नारित्व के सुरक्षित रहने पर ही नारी का उत्थान हो सकता है। यह तभी संभव है जब नारी के जीवन में नार्योचित गुणों का विकास हो। वह अपने नार्योचित कर्त्तव्यों का निर्वाह करें। ऐसी नारी ही आदर्श गृहणी की भूमिका का निर्वाह कर अपने घर को स्वर्ग बना सकती है।

आदर्श घर

गृहस्थ अपने रहने के लिए घर बनाता है। घर गृहस्थ की आवश्यकता है हमारे आचार्यों ने इस विषय में भी अपना चिन्तन पूर्ण परामर्श दिया है। क्षेत्र का बड़ा प्रभाव होता है। हमें ऐसे ही स्थान पर निवास करना चाहिए जहां रहकर धर्म, अर्थ और काम तीनों पुरूषार्थों का सही ढंग से पालन हो सके। वैसे ही घर में रहना चाहिऐ जहां त्रिवर्ग की सिद्धि हो सके। जिस देश में जिस क्षेत्र में ये तीनों पुरूषार्थ प्रभावित होते हैं उसे छोड़ देना चाहिऐ। ऐसे ही घर में रहना चाहिए जहाँ सुख-शान्ति और समृद्धि हो।

गृहस्थ घर बनाता है, घर और मकान में अंतर है। घर बसाया जाता है और मकान बनाया जाता है। मकान में आदमी अकेले रह सकता है, घर में अकेले नहीं रहता। घर वह है जहाँ व्यक्ति के साथ उसकी पत्नी, माता-पिता और बच्चे हो, घर वह है जहां आत्मीयता हो, प्रेम हो, अपनत्व हो। जिस घर में इन तत्वों का अभाव है वह घर, घर नहीं। "बात घर कर गई" इसका अर्थ क्या है? उसके अंतस को छू ली, उसे अंदर तक प्रभावित कर लिया, इसका नाम है घर। इसलिए कहते हैं घर में अपनत्व होता है। ऐसी जगह जहाँ सब के बीच में परस्पर प्रेम बना रहे सौहार्द्र बना रहे, सौजन्य और सामंजस्य सुस्थापित रहे ऐसे घर में रहें। इस घर को ध्यान रखते हुए हमारे आचार्यों ने घर के बाहरी और भीतरी दोनों स्वरूप को संवारने की सलाह दी है। उन्होंने कहा हैं कि घर बनाओ तो ऐसे-वैसे

नही बनाना, सिर्फ इंजीनियर और आर्किटेक्ट से परामर्श लेकर घर नहीं बनाना क्योंकि वे तुम्हारे घर की सुंदरता और Durability की बात तो बता सकते हैं, पर अंदर की शांति और समृद्धि का परामर्श वह नहीं दे सकते। आज से हजारों वर्ष पूर्व घर के बाहरी स्वरूप को ध्यान में रखते हुए यह कहा गया कि गृहस्थ वास्तु के नियमानुसार घर बनाएँ। इसके ऊपर पूरा का पूरा एक शास्त्र विकसित हुआ। तीर्थंकरों के उपदेश में भी यह बात आई, उन्होंने भी वास्तुशास्त्र का उपदेश दिया। अन्यों ने भी वास्तु शिल्प और कला की बात बताई, उपदेश दिया। अनेक जैन ग्रथों में भी इसका उल्लेख मिलता है।

आज के समय में तो वास्तुशास्त्र में नित नयी-नयी खोजें होती जा रही हैं और यह बात अब स्पष्ट हो चुकी है कि वातावरण में रहने वाली जो चुंबकीय किरणें हैं, उनके संचार और प्रवाह से हमारी सोच प्रभावित होती हैं, हमारा जीवन प्रभावित होती हैं, अतएव गृहस्थ को ऐसा ही घर बनाना चाहिए जो वास्तु के नियामानुसार हो। अगर वह इस प्रकार घर बनाता है तो अनेक प्रकार के संकटो से सहज ही मुक्त हो जाता है। कई-कई व्यक्तियों के जीवन में जो दुख और अशांति देखी जाती है उसमें कहीं-कहीं उनका घर भी कारण होता है। ऐसे अनेक उदाहरण देखे गये हैं। इसलिए कहा गया कि यदि तुम्हें बाहरी वातावरण भी ठीक रखना है, तो घर वास्तु नियमों के अनुरूप बनाओ।

यह तो बाहरी बात हुई। भीतरी घर कैसा हो- एक आदर्श घर जिसे हम बनाना चाहते हैं। कैसा हो ? आदर्श घर वही है, जहां अपने पूर्वजों के आदर्शों का सदा अनुसरण किया जाता हो। जिस घर में अपने पूर्वजों के सद्विचारों का अनुसरण किया जाता है वह घर आदर्श घर की श्रेणी में आता है। और जिस घर में आदर्शों की उपेक्षा होती है वह घर कभी भी आदर्श घर नहीं हो सकता। आप सब घर में रहते हैं, हम लोगों को घर में रहने की आवश्यकता नहीं, हम मकानों में रहते हैं, हम भवनों में रहते हैं। इसलिए कि उससे हमारा कोई अपनत्व नहीं। गृहस्थ का घर के कोने-कोने से अपनत्व जुड़ा रहता है। और गृहस्थ वास्तव में घर बसाता है। घर कब बसता है, जब गृहणी आती है। उसने पढ़ा, लिखा, बड़ा हुआ और घर बसा लिया। घर बसाया है तो कैसे घर बसाये ? ग्रंथों का अवलोकन करने के बाद जो निष्कर्ष निकला उसमें चार बातें सामने आईं कि वह घर आदर्श

घर होगा जिसमें इन चार बातों का समावेश होगा, (१) बंधु-बाधवों में प्रेम (२) अतिथि सत्कार (३) कुलाचार का पालन और (४) परिजनों की सेवा। ये चार स्तंभ हैं जो घर के आंतरिक स्वरूप को स्थायित्व प्रदान करते हैं, संभालते हैं। घर में अगर यह चार बातें नहीं हो तो फिर कितना ही भव्य भवन क्यों न हो, वह भवन घर नहीं होगा। वह मात्र ईंट-गारे की इमारत भर रह जाएगी। घर वह है जहां इन चार *तत्वों* का समावेश है। पहला बंधुजनों का प्रेम। घर में अनेक लोग हैं, परस्पर में प्रेम नहीं है, आत्मीयता नहीं हैं, एक दूसरे से बातचीत नहीं करते, ढंग से कोई किसी से बोलता नहीं, सौहार्द्र नहीं, मन मुटाव चल रहा है तो एक छत के नीचे रहने वाले लोग भी काफी दूर हो जाते हैं। उस घर में वीरानगी छा जाती है। लिखने वाले ने लिख दिया

जा घर प्रेम न संचरे, ता घर जान मशान।
जैसे खाल लुहार की, श्वांस लेत बिन प्राण।।

कितने आगे की बात कह दी क्योंकि जहां पूरी तरह से संवादहीनता है, जहां व्यक्ति पूरी तरह से संवादशून्य बन चुका है, उस घर में और शमशान की वीरानगी में अंतर क्या है ? जीवन में श्वांस सार्थक बन जाती है, जब प्रेम का संचरण होता है। आंतरिक श्वांस तो वही है, जो प्रेम के साथ आती और जाती है। घर में प्रेम का संचरण होना चाहिए। बंधुजनों में आत्मीयता होनी चाहिए, एक दूसरे के प्रति सम्मान और आदर का भाव होना चाहिए। परस्पर में बहुत अधिक श्रद्धा और समर्पण होना चाहिए, तब वह घर आदर्श घर की श्रेणी में आता है। लेकिन आजकल जब से संयुक्त परिवार की परंपरा टूटी है, तब से आपस का प्रेम तो लगभग समाप्त हो गया है, आज बंधुओं में प्रेम की जगह और दूसरों में प्रेम बंटने लगा है। लोग अपने कुत्तों के साथ प्रेम कर लेते हैं। पर अपने बंधु से प्रेम से बात करने में कतराते हैं। आज आदमी जब थोड़ा सा ऐश्वर्य पा जाता है, तो उसके मद में इतना इतरा जाता है कि अपने ही पराये हो जाते हैं, अपनों से बात करने के लिए भी वह राजी नहीं रहता, यह अज्ञानता है। नीति ग्रन्थों में कहा गया है कि "जो व्यक्ति ऐश्वर्य को प्राप्त करता है उसे अपने बंधुओं से बहुत अधिक प्रेम करना चाहिए।" यदि तुम सौभाग्य से अपने बंधुओं से अधिक समृद्ध हो तो सहृद्रयतापूर्वक अपने बन्धुओं की सहायता करो, उन्हें अपना स्नेह और आत्मीयता

प्रदान करों। तिरूक्कुरल में लिखा है कि- "अपने नातेदारों को एकत्रित कर उन्हें अपने स्नेह के बंधन में बांधना ही ऐश्वर्य का लाभ और उद्देश्य है।" कितनी बड़ी बात कही। पर मनुष्य भूल जाता है ऐश्वर्य पाकर और उल्टा उस पर इठलाना शुरू कर देता है। इसलिए उसके जीवन में जो समरसता और मधुरता प्रस्फुटित होनी चाहिए वह प्रस्फुटित नहीं हो पाती।

दूसरी बात है अतिथि सत्कार - भारतीय परंपरा में *"अतिथि देवो भव"* ऐसा कहा गया है, अतिथि सत्कार की प्रेरणा गृहस्थ को हमेशा-हमेशा दी गई और यह कहा गया है कि तुम्हारे दरवाजे से कोई अतिथि लौटता हो तो यह समझना कि तुम्हारे दरवाजे पर आया हुआ देवता वापिस जा रहा है। यह हमारी संस्कृति रही है। कहीं भी कोई आता है, तो उसका बहुत अधिक सत्कार, बहुत अधिक आवभगत होती है। लेकिन जब से शहरीकरण का विकास होता जा रहा है हमारी संवेदनाएं सूखती जा रही हैं। गांवों के अतिथि सत्कार को देखते बनता है। अगर दस आदमी भी पहुंच जाएं तो उसमें बड़ा हर्ष मानते हैं। बड़े आनंद के साथ भाव विभोर हो कर उनका सत्कार किया करते है। लेकिन ऐसे अतिथि सत्कार की परंपरा शहरों में बहुत कम होती जा रही है। बंधुओ कुंद-कुंद आचार्य का जो कुरल काव्य है, उसमें लिखा है कि "जिस घर में आये हुए अतिथि का सत्कार होता है, उसका वंश कभी निर्बीज नहीं होता"। कितनी बड़ी बात कही है इससे अतिथि सत्कार की महिमा हमें समझ में आती है। हमारे यहां श्रावकों के व्रत में अतिथि संविभाग एक व्रत रखा गया है। श्रावक के लिए यह कहा गया है कि तुम अपने लिए तैयार भोजन में से अतिथि का सत्कार करो। भारत की पंरपरा तो यह भी बताती है कि खुद भूखे रहने वालों ने भी अतिथियों के लिए सब कुछ दे दिया। भूखे को भोजन देकर अपना भोजन करना भारत की संस्कृति रही है। पहले के समय में ऐसा होता था कि गांव में हर व्यक्ति भोजन के पूर्व मंदिर में किसी को भेजकर दिखा लेते कि देखो कोई परदेशी तो नही आया यदि आया हो तो उसे सम्मान सहित घर में लाओ और भोजन कराओ। आज ये पंरपरायें समाप्त होती जा रही हैं।

बंधुओ, यदि अपने घर को आदर्श घर बनाना चाहते हो तो अतिथि का आत्मीय स्वागत करना सीखो, उसका आत्मीय सत्कार करना सीखो। अतिथि

सत्कार से दो लाभ होते हैं (१) गुण ग्रहण (२) निष्काम सेवा। गुणवान पुरुष आंपके घर में आता है तो आप उसके अनुभवों से कुछ सीख सकते हो उसके अनुभवों से कुछ शिक्षा ले सकते हैं, निष्काम सेवा करने का भी अवसर आपको प्राप्त हो सकता है। अतिथि सत्कार के अतंर्गत ही दान आता है। दान को गृहस्थ का मुख्य धर्म कहा गया है। आचार्यों ने कहा है-

"दानं पूजा मुक्खं सावय धम्मे ण सावया होंति तेण विणा।
झाणज्झयणं मुख्खं जइ धम्मे तं विणा तहा सो वि।।

श्रावक के दो ही धर्म हैं- दान और पूंजा। जिस घर में दान और पूजा की परंपरा है वही घर यथार्थ घर है, वही घर आदर्श घर है। कहा है- *"गृही दानेन शोभते"* गृहस्थ की शोभा दान से होती है। गृहस्थ जो दिन भर की घर गृहस्थी में और सांसारिक प्रपंचों में उलझकर पाप अर्जित करता है वह सारा पाप अपने दान के द्वारा प्रक्षालित कर लेता है। दान एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से व्यक्ति अपने पाप का प्रक्षालन कर सकता है। प्रत्येक गृहस्थ को अपनी आय के कुछ न कुछ अंश का नियमित दान देना चाहिए। जिस घर में दान की परंपरा रहती है वहां कभी दरिद्रता नहीं आती। दारिद्रय का साम्राज्य वहीं होता है। जहां सिर्फ संग्रह है वितरण नहीं- उसके जीवन का कभी उद्धार नहीं हो सकता। हमारे आचार्यों ने कहा है आय के अनुरूप हमेशा दान देना चाहिए।

तीसरी बात है कुलाचार का पालन। आदर्श घर वही है जहां अपने कुल का गरिमा के अनुरूप आचरण रखा जाता है। जहां आचार-विचार, रीति-रिवाज, रहन-सहन में बहुत अधिक ध्यान रखा जाता है। अपने पूर्वजों की गौरवशाली परंपरा के अनुरूप आचरण किया जाता है, पूर्वजों के आदर्शों को हमेशा सम्मान दिया जाता है। वही घर आदर्श घर की श्रेणी में आता है। जिस घर में बड़ों को सम्मान, परिजनों को आदर और बहुमान दिया जाता है, वही घर आदर्श घर कहलाता है। कुलाचार बहुत व्यापक शब्द है। इस कुलाचार के अंतर्गत वे तमाम धार्मिक क्रियायें समाहित हो जाती है जो एक धार्मिक पुरुष के लिए अनिवार्य होती हैं। कुलाचार के पालन का अर्थ है अपने आचार-विचार को साफ रखना । एक जैन परिवार में जन्म लेने के बाद जो हमारा नैतिक आचरण होना चाहिए उसका

अनुपालन करना, संस्कारों को सुरक्षित और संवर्धित करना यह कुलचार के पालन का अर्थ है जो बहुत व्यापक है। जो कुलाचार का पालन करते हैं, जिस जिस घर में कुलाचार का पालन होता है, वहां कभी दुराचार प्रकट नही होता और जहां दुराचार होता है वहां कुल कलंकित होने लगता है। जो व्यक्ति कुलाचार का पालन करते हैं वे ही अपने कुल की कीर्ति को बढ़ाते हैं।

तिरुक्कुरल में लिखा है कि "अपने पूर्वजों की कीर्ति की रक्षा, देवपूजन, अतिथि सत्कार, माता पिता की सेवा और आत्मोन्नति गृहस्थ के यह पंचकर्म हैं।"

पूर्वजों की कीर्ति की रक्षा कैसे होगी ? जब हम अपने पूर्वजों का आचरण करेंगे। जो व्यक्ति एक आदर्श जैन की तरह जीता है, वह जैन धर्म को और अधिक प्रतिष्ठा प्रदान करता है और जो व्यक्ति जैन होने के उपरांत भी यदि दुराचरण करता है तो वह अपने जीवन को तो बर्बाद करता ही है पूरे जैनत्व को भी कलंकित करता है, अपने पूरे कुल को कलंकित कर देता है। जिस घर में कुलाचार का पालन नहीं होता, वह घर अपने यश की वृद्धि नहीं कर सकता, उस घर में कुल की कीर्ति की पताका नहीं फहर सकती। इसलिए अपने कुल को, अपने वंश को गौरवान्वित करना चाहते हो तो कुलाचार का पालन करना चाहिए। कुलाचार का अर्थ सिर्फ इतना ही है कि हम नित्य उठें और भगवान की भक्ति करें, उनकी वंदना करें, देवदर्शन करें, अपने खान-पान, आचार-विचार में शुद्धता रखें, रात्रि भोजन का त्याग करें, व्यसन और बुराईयों से अपने आप को बचाकर रखें। कुलाचार का मात्र इतना ही अर्थ है। इसके विपरीत यदि व्यक्ति के आचार-विचार व्यवहार और व्यापार में विकृति है तो समझना वह अपने कुलाचार से दूर हटकर के दुराचार की ओर बढ़ रहा है। हमारे जीवन में कुलीनता आनी चाहिए। कुलीनता के संस्कार यदि जीवन में होते हैं, तो वह कुल की कीर्ति का कारण बन जाते हैं। कुरल काव्य में बढ़ी अच्छी बात लिखी-

"भूमि की विशेषता का पता उसमें उगने वाले पौधे से लगता है, ठीक इसी प्रकार मनुष्य के व्यवहार से उसके कुल का संकेत मिलता है।"

मनुष्य का व्यवहार कैसा है, इससे समझ में आ जाता है कि उसका कुल कैसा है। अतः आप समझ लो। यदि तुम्हें ऊँचे कुल में जन्म लेने का अवसर मिला

है तो अपने व्यवहार को हमेशा विनम्र बनाए रखो। निष्कपट व्यवहार, चेहरे पर मुस्कान और अंदर से उदारता तथा आचार-विचार की शुद्धि यही उत्तम कुल की पहचान है।

उत्तम कुल में जन्म लेने वाले व्यक्ति को अपनी कुलीनता का ध्यान रखना चाहिये। लिखा है कि "जो मनुष्य बिना किसी अनाचार के अपने कुल को उन्नत बनाता है, सारा जगत् उसको अपना मित्र समझता है।"

हम अनाचार से रहित अपना जीवन बनाएं, सारा जगत् हमारा बंधु बन जाएगा। हर व्यक्ति स्वयं जगत् बंधु बन सकता है। अपनी आत्मा का उत्कर्ष करके हम अपने आप को जगत् बंधु और जगत्पति बना सकते हैं। बशर्ते कुल की कीर्ति की रक्षा करें। पुरुष का सच्चा पुरुषत्व तो इसी में है कि जिस वंश में उसने जन्म लिया हैं, उस कुल की कीर्ति को फैला दे। अगर तुम्हें अच्छे कुल में जन्म लेने का अवसर मिला है तो अपने कुल की कीर्ति को फैलाने का प्रयत्न करो। यह सब अपने आचरण की पवित्रता पर निर्भर है। ऐसा कहा जाता है कि जिस घर में शुद्ध आचार-विचार की परिपाटी है, उस घर में देवता भी रमण करने के लिए उत्सुक हो जाते है, उस घर में कभी दरिद्रता नहीं आ सकती, उस घर में कभी दुख और उदासी नहीं छा सकती।

चौथी बात है- परिजनों की सेवा भारतीय परंपरा में ***"मातृ देवोभव पितृ देवो भव"*** की बात कही गयी है। मां पिता को देव तुल्य कहा गया है। माता पिता को बहुत अधिक सम्मान देकर हमेशा उनका आदर करने का परामर्श दिया गया है। माता-पिता की सेवा आखिर क्यों ? बंधुओ विचार करों मनुष्य का अगर सबसे पहला और निकट का संबध होता है, वह माता-पिता का होता है, बाकी सारे सगे-संबंधी, पत्नी, पुत्र और परिवार का नाता तो बाद में जुड़ता है। सबसे पहले माता-पिता का नाता जुड़ता है। बालक इस धरती पर आता है उसके पहले ही उसकी मां से उसका संबध हो जाता है। मां उसका लालन-पालन करती है, पालन-पोषण करती है। उसे जन्म देती है, और धरती पर खड़ा होने योग्य बना देती है। एक-एक क्षण मां अपने बेटे को स्नेह और सौजन्य की भावनाओं से सींचती रहती है, ममता का रस वह निरंतर अपने बेटे को पान कराती है। मां के

हृदय में अपनें पुत्र के प्रति जो प्रेम होता है, ममता होती है, उसे सिर्फ एक मां ही जान सकती है, दूसरा नहीं। और मेरा तो यह मानना है कि मां भी उसे नहीं बता सकती वह सिर्फ अनुभवगम्य है। मातृत्व बहुत बड़ी चीज है, वह एक बार उमड़ता है, तो उमड़ता ही जाता है, रूकता नहीं।

हरिवंश पुराण में एक आख्यान देख कर मेरा मन रोमांचित हो उठा कि आखिर मातृत्व है क्या ? देवकी के श्रीकृष्ण से पहले छः पुत्र और उत्पन्न हुए थे, कंस उन्हे मार न डाले इस भय से उन्हें छल पूर्वक बाहर निकाल दिया जाता था और कह दिया जाता था कि मरा पुत्र उत्पन्न हुआ है, उन छहों के छहों पुत्रों पालन भदिलपुर-विदिशा में हुआ था। एक बार समवशरण में भगवान नेमिनाथ के दर्शन से उन्हें वैराग्य हो गया। छहों दीक्षित हो गए। देवकी को इसका कोई अता-पता नहीं था, छहों चारण ऋद्धिधारी मुनिराज हो गए। एक दिन देवकी पड़गाहन के लिए खड़ी थी, अतिथि सत्कार के लिए खड़ी थी कि दो युगल मुनिराज उनके आंगन में आए। देवकी ने भक्तिपूर्वक, उनका विधि पूर्वक पड़गाहन किया, आहार दिया। लेकिन उन्हें देखते ही उसके स्तनों से दूध उमड़ने लगा, उसका मातृत्व उमड़ने लगा, वह समझ नहीं पा रही थी कि मुनिराज को देखकर मेरे मन में इतनी ममता क्यों उमड़ने लगी है। भक्ति भावों से महाराजों को आहार दिया। महाराज वहां से चले गए। थोड़ी देर बाद दो मुनिराज फिर से आए। उनकी आकृति पहले वाले मुनि युगल जैसी थी। देवकी को बड़ा आश्चर्य हुआ उसे लगा कि कहीं फिर से वे ही मुनिराज तो नहीं आ गये। पर बिना तर्क-वितर्क के उसने मुनिराजों का पड़गाहन किया और आहार दिया। इस बार भी देवकी का मातृत्व उमड़ रहा था। दोनों मुनिराज आहार करके निकले ही थे कि थोड़ी देर बाद वैसी ही आकृति के दो मुनिराज फिर से आए। देवकी ने पड़गाहन किया अब की बार तो देवकी के स्तनों की दूध की धार उसके वस्त्र फाड़कर निकलने लगी।

देवकी कुछ समझ नहीं पा रही थी। उसने आहार दिया। आहार ग्रहण कर मुनिराज चले गये। देवकी भगवान के समवशरण पहुंची और उसने कहा कि "प्रभु आज मैंने ये क्या देखा, मेरे यहां एक ही महाराज तीन बार आएं आहार लेते उन्हें देखकर मेरे स्तनों में दूध उमड़ने लगा, आखिर बात क्या है ?" भगवान ने उन्हें समझाया कि देवकी मुनिराज तो एक ही बार आहार करने आते हैं, वे जो मुनिराज

तुम्हारे यहां आये थे, वे तो तुम्हारे पुत्र थे। उन पुत्रों को देखने के कारण तुम्हारा मातृत्व उमड़ा है। इसलिए तुम्हारे अंदर ऐसा हुआ, वे छहों एक से थे, इसलिए तुम्हें लगा कि एक ही मुनिराज तीन बार तुम्हारे यहां आए हैं।

मां में जहां अपार ममता होती है, उतना ही उपकार भी मां का होता है। मां बेटे को जिस क्षण गर्भ में धारण करती है उसी क्षण से वह बेटे का पूरा ध्यान रखती है। स्वयं के कष्टों की परवाह न करते हुए गर्भ की रक्षा का प्रतिपल ध्यान रखती है कि गर्भ में कुछ गड़बड़ न हो जाए। गर्भ धारण करने के बाद गर्भ की पीड़ा को सहने के बाद वो प्रसव की वेदना को भी सहती है। कितनी पीड़ा को सहने के बाद वह अपने बच्चे को जन्म देती है। सिर्फ जन्म ही नहीं देती, बच्चे को जन्म देने के बाद उसका लालन-पालन करती है, उसकी लघुशंका और शौच तक को बिना किसी ग्लानि के अपने ही हाथों से साफ करती है। उसके भोजन पानी सबका पूरा-पूरा ध्यान रखती है। खुद गीले में सोकर उसे सूखे में सुलाती, है। अपने बेटे के पीछे रात-रात की नींद भी भुला देती है और उसके मन में कोई झल्लाहट तक नहीं आती। कितना उपकार है। अगर किसी बेटे को मां का ऐसा प्यार और ऐसा उपकार न मिले, तो क्या आज वह धरती पर खड़ा हो सकेगा, नहीं हो सकेगा। लिखने वालों ने लिखा है कि "इस धरती के समस्त रजकण और समुद्र के पूरे जल कण से भी अनंत गुणा एक मां का उपकार होता है" मां की ममता अगाध होती है उसे कभी चुकाया नहीं जा सकता।

भगवान महावीर जन्म से तीन ज्ञान के धारक थे। उन्हें गर्भ में ज्ञान हुआ कि मैं गर्भ में हूं, गर्भ के हलन चलन से मेरी मां को पींड़ा होगी तो अपनी माँ को पीड़ा मुक्त करने की भावना से उन्होंने हलन चलन बंद कर दिया। इधर गर्भ धारण के बाद अनेक प्रकार के गीत गाये जा रहे थे, धार्मिक वातावरण चल रहा था, लेकिन जैसे ही गर्भ में रहने वाले शिशु की हलन चलन बंद हुई, माता एकदम घबड़ा गई। उसने सबको रोकते हुए कहा, "यह क्या हुआ, कहीं गर्भ को कोई खतरा तो नहीं हो गया। कही गर्भ गिर न जाय।" वह एकदम व्याकुल हो गई। तब भगवान के उस गर्भस्थ जीव को लगा कि यह तो उल्टा हो गया। कितनी ममता है मेरी मां की! यह तो उल्टा हो गया। मैंने तो सोचा था कि कोई तकलीफ न हो,

पर वह तकलीफ न देने से खुद तकलीफ पा रही है। यह मां का मातृत्व है यह मां की ममता है, इसलिए मातृशक्ति को इस देश में हमेशा-हमेशा के लिए बहुमान दिया गया है और यह कहा गया है कि माता-पिता के ऋण को कभी नहीं चुकाया जा सकता। मैंने मां के बारे में बतलाया इस का मतलब यह नहीं समझना कि पिता का कोई उपकार नहीं होता, मां का जितना उपकार है पिता का उपकार भी उससे कम नहीं। मां तो खेत में बीज को बोती है और पिता उसको संरक्षण प्रदान करता है, पिता की भी बहुत बड़ी भूमिका होती है। माता-पिता मिलकर ही अपनी संतान का लालन पालन करते हैं। इसलिए कहा है कि वही घर 'घर' है, जहां परिजनों की सेवा होती है। परिजनों का तिरस्कार होता है, वह घर कभी धार्मिक घर की श्रेणी में नहीं आ सकता।

अपने माता-पिता के कर्ज से स्वयं को मुक्त करें, इसके लिए नीति ग्रंथों में तीन उपाय बताए गए हैं- (१) माता पिता की कीर्ति को निरंतर बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिए (२) माता-पिता को अपनी सेवा द्वारा सदा प्रसन्न रखना चाहिए (३) उनकी आध्यात्मिक साधना में सहयोगी बनना चाहिए।

ये तीन बातें बताई गई हैं, ऐसा कोई कार्य नहीं हो जिससे माता-पिता को अप्रसन्नता हो। उनकी भावनाओं को आघात पहुंचे, उन्हें ठेस लगे। उन्हें अपनी हर प्रवृत्ति से प्रसन्न रखना चाहिए। अपने आचरण को इस तरह रखें कि उनकी कीर्ति को चार चांद लगे। दिनोंदिन कुल की कीर्ति बढ़ती जाए। कोई भी कार्य यदि करें और उसमें सफलता मिले तो अपने माता-पिता के समक्ष उनसे कहें कि, "यह सब आपके आशीर्वाद का फल है।" मुझे इसमें सफलता मिली आपने मुझे पाल पोस कर बड़ा किया, मैं इस योग्य हो गया। आपका आशीर्वाद मेरे लिए पर्याप्त है। कोई भी कार्य करें, ऐसा कहा गया है नीति ग्रंथों में चाहे वह संतान कितनी बड़ी क्यों न हो उससे हमेशा हर कार्य के पूर्व माता-पिता से उसकी अनुमति लेनी चाहिए। अब तो सब की सब बातें बिल्कुल बंदल गई है। अब अनुमति लेना तो दूर की बात है यदि वह कोई परामर्श दे तो भी आदमी उनके प्रति कृतज्ञ होने की जगह घूरना शूरू कर देता है। अपने ही जन्मदाता को घूरते हुए व्यक्ति को शर्म नहीं आती। निर्लज्जता का इससे बड़ा उदाहरण और क्या हो सकता है।

तीसरी बात यह है कि हमें हमेशा अपने माता-पिता की आध्यात्मिक साधना में सहयोगी बनना चाहिए। ग्रंथों में यह कहा गया है कि संतान यदि योग्य बन जाये तो माता-पिता को व्यापार से मुक्त होकर आत्मसाधना के लिए लगना चाहिए। और संतान को खुद यह कहना चाहिए कि आपने मुझे पढ़ा-लिखा कर बड़ा बना दिया, आप सबकी कृपा से मैं योग्य बन गया। अब यह सारा काम मैं कर लूंगा। आप तो अपना धर्म-ध्यान कीजिए। आपके धर्म-ध्यान में क्या कमी होती है मुझे बताइये, मैं सब चीज की आपके लिए पूर्ति करने को तैयार हूँ। अब आप अपने जीवन के अंतिम कर्म आत्मान्नति में जुटें। इस प्रकार से माता-पिता की सेवा होती है। लेकिन इस प्रकार की सेवा हर कोई नही कर सकता।

शास्त्रों में चार प्रकार के पुत्र बताए गए है, (१) अतिजात (२) अनुजात (३) अवजात (४) कुलांगार, अतिजात कौन है जो अपने पूर्वजों की कीर्ति को बढ़ाए। जो अपने घर के गौरव में चार चांद लगाए, जो अपने आचरण से घर को महिमा मंडित करे कुल को महिमा मंडित करे। वह अतिजात पुत्र कहलाता है। जिन्हें विरासत में जितना कुछ मिलता है, उससे बहुत कुछ बड़ा लेते हैं। अपने संस्कारों को सुरक्षित रखते हैं। यह सबसे उत्तम पुत्र होते है। ऐसे ही पुत्र जैसे राम और लक्षमण जिन्होंने अपने पिता की प्रतिष्ठा में सब कुछ दांव पर लगा दिया। अपने पिता के प्रण को पूरा करने के लिए, जिन्होंने वनवास भी स्वीकार कर लिया। उनसे कहा नहीं गया अपितु उन्होंने वनवास स्वीकार कर लिया। इसलिए स्वीकार लिया कि वनवास जाए बिना भरत गद्दी पर नहीं बैठेगा। और भरत राजा नहीं बनता तो पिता का प्रण अधूरा रहेगा। पुत्र का तो यही कर्त्तव्य है कि अपने पिता के प्रण और प्रतिष्ठा को कायम रखे। इसलिए वह अपने आप वनवास की ओर चले गये, वाल्मीकि रामायण में कहा है जब श्री राम से पूछा गया कि आप वनवास को क्यों स्वीकार रहे हैं, तो रामचन्द्र जी कहते हैं कि तुम वनवास की बात करते हो,

अहं हि वचनात् राज्ञः पतेयमपि पावके।
भक्षयेयं विषं तीक्ष्णं पातेयमपि चार्णवे।।

मैं तो अपने पिता की आज्ञा के पालन के लिए अग्नि में कूदने तैयार हूँ।

विष के भक्षण को तैयार हूँ। और समुद्र में छलांग लगाने में मुझे कोई संकोच नहीं है, यदि मेरे पिता का प्रण पूरा होता है। तो ऐसे पुत्र होते हैं अतिजात पुत्र- जिससे आज भी उन कुलों की गरिमा है, कितनी गहरी भक्ति थी, पिता के प्रति। दूसरी भक्ति भीष्म पितामह की भक्ति थी। जब राजा शांतनु ने एक नाविक की कन्या से विवाह करना चाहा, तो नाविक ने उनसे इस शर्त पर इंकार किया कि पुत्री का तुमसे विवाह हो भी गया तो राजगद्दी पर तो भीष्म ही बैठेगा। भीष्मपितामह ने कहा "मैं नहीं संभालूगा" नाविक ने कहा कि "तुम नहीं बैठोगे ठीक है, लेकिन तुम्हारी संतान तो गद्दी पर बैठेगी।" तो भीष्म ने कहा "नहीं मेरी संतान भी राजगद्दी पर नहीं बैठेगी और मेरी संतान तो उत्पन्न ही नहीं होगी, आज से मैं आजीवन ब्रह्मचर्य के व्रत की घोषणा करता हूँ।" अपने पिता की खुशी के लिए कितना बड़ा त्याग था। ऐसे पुत्र अतिजात पुत्र कहलाते हैं जो मरने के बाद भी इतिहास की अमर गाथा बनकर रह जाते हैं

दूसरे पुत्र हैं- अनुजात पुत्र ! ये अपने कुल की मर्यादा को बढाते भले नहीं हैं, पर घटाते भी नहीं हैं जितना कुछ संस्कार उन्हें मिला है, अपने माता-पिता के द्वारा उतने को सुरक्षित रखते हैं। अपनी समृद्धि में चार चांद नही लगाते तो न सही पर धब्बे भी नहीं लगाते।

तीसरे पुत्र हैं - अवजात पुत्र। यह पुत्र ऐसे होते हैं कि अपने कुल की कीर्ति को कलंकित करते हैं, कुल पर पूरी तरह से धब्बा लगा देते हैं जितना जो कुछ भी मिला है वह सब नष्ट कर देते है। दूसरे तो ऐसे होते है कि कुल की कीर्ति के महल पर शिखर नहीं बना सकते तो कम से कम नींव तो नहीं हिलाते पर यह तो उस पूरे के पूरे महल को धराशायी करने को जुट जाते हैं, ऐसे पुत्र, पुत्र नहीं कहलाते। ऐसे पुत्र को तो पेट का कीड़ा कहा जाता है, जो अपने कुल के गौरव को बढ़ा नही पाते उन्हें पेट के कीड़े के अतिरिक्त और क्या कहा जाए।

सबसे निकृष्ट बेटे होते है- कुलांगार- इस जाति का जो बेटा होता है, वह अपने कुल के लिए अंगार साबित हो जाता है। सारे के सारे कुल को ही भस्म कर डालता है। अब आप विचार कीजिए कि आप किस जाति का पुत्र बनना चाहतें है। आजकल जो बंगला संस्कृति विकसित होती जा रही ही, उससे संबंधों

में मधुरता का अभाव होता जा रहा है। आज तो तीसरे और चौथे जाति के पुत्रों की ज्यादा भरमार होती जा रही है, पहले और दूसरे जाति के पुत्र तो इने गिने रह गये हैं। आज तो ऐसे कुलांगारों के बारे में हमने पढ़ा, जिन्होंने अपने ही माता-पिता का तिरस्कार करने में भी कोई कसर नहीं छोड़ी, जिन्होंने अपने माता-पिता की जी भरकर अवज्ञा की, उनको जी भर कोसा। ऐसे भी पुत्रों को मैंने देखा और सुना है, जिन्होंने अपने हाथों को माता-पिता के ऊपर चला दिया और अपने माता-पिता की हत्या तक कर डाली। यह सबसे अधम काम है, सबसे नीच कार्य है, यह तो वे ही लोग करते हैं, जिनकी आत्मा अंदर से मर चुकी होती है, जिनकी संवेदना पूरी तरह सूख चुकी होती है, ऐसे कुलांगारों से व्यक्ति को हमेशा बचना चाहिए।

एक बूढ़े आदमी ने मजदूरी कर-कर के बेटे को पढ़ाया। खुद भूखा रहा, पर बेटे को अच्छी से अच्छी शिक्षा देने का भाव रखा। बेटे को गाँव से ले जाकर शहर में पढ़ाया, अपना पेट काट-काट कर के बेटे के लिए खर्च भेजा। बेटा, पढ़ लिखकर के बड़ा हुआ और आई.ए.एस. अधिकरी बना। पिता को सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि मेरा बेटा, एक बड़ा आदमी बन गया। पर उसे क्या पता था कि बेटा बड़ा आदमी तो बन गया, पर भला आदमी नहीं बन सका। बेटा, अधिकारी क्या बना अपने पिता को भी भूल गया। उस पिता को जिसने अपना पेट काट-काट कर अपने बेटे को पढ़ाया। एक दिन भी याद नहीं किया। पिता रोज डाकिये की राह देखता कि शायद कोई संदेश आये। मेरा बेटा पढ़-लिखकर अब बड़ा हो गया है, मुझे मेहनत मजदूरी नहीं करनी पड़ेगी। अब मुझसे कुछ नही बनता, कम से कम अब तो मैं सुख के दिन जिऊंगा। पर बेटा है कि उसको अपने पिता की खबर तक नहीं। वह यह तक भूल गया कि मुझे किसी ने जन्म दिया। पिता रोज डाकिये की प्रतीक्षा करता और डाकिया के लौट जाने पर निराश हो जाता। काफी दिन बीत गये। अब तो कई-कई बार उस बूढ़े पिता को भूखे भी दिन काटने पड़ते थे क्योंकि हाथ पैर चलते ही नहीं थे। एक दिन गांव के लोगों ने उसे बुलाया और समझाया कि भैया ऐसा करो कि तुम्हारा बेटा अमुक शहर का कलेक्टर बन गया है, वह यहाँ नहीं आता न सही, तुम ही वहाँ चले जाओ तुम्हें देखकर कुछ तो पसीजेगा। लोगों से मांग मुंग कर कुछ पैसे इकट्ठे किये और वह

गांव से शहर की ओर चल दिया। पूछते-पूछते अपने कलेक्टर बने बेटे के बंगले के पास पहुंच गया। बंगले को दूर से देखते हुए उसका मन रोमांचित हो उठा, मेरा बेटा, कितना बड़ा आदमी होगा। कितना बड़ा बंगला हो गया। बंगले के बाहर कितनी अधिक गाड़ियां खड़ी हैं। वह फटेहाल पिता बंगले के गेट पर पहुंचा। शाम का समय था, गर्मी का मौसम था, उस समय उसका बेटा बंगले के पोर्च में बैठकर एक मीटिंग ले रहा था, अनेक अधिकारियों से घिरा हुआ था। पिता ने देखा तो उसका मन नाच उठा, आंखे चमक गईं कि मेरा बेटा कितना बड़ा अधिकारी बन गया है। इतने सारे लोगों के मध्य वह सबसे बातचीत कर रहा है, वह गेट पर खड़ा हुआ कि इधर बेटे की नजर भी अपने पिता पर पड़ी। जैसे ही नजर पड़ी उसने अपनी नजर फेर ली कि जैसे कोई धूर्त हमारे दरवाजे पर आ गया है। पिता ने अंदर जाने की कोशिश की तो द्वारपालों ने उसे रोक लिया, तब उसने कहा कि जाओ अपने साहब से कहो कि पिताजी गांव से आये हैं। पहले तो द्वारपालों को आश्चर्य हुआ कि इतने बड़े साहब का यह फटेहाल, पिता कैसे होगा? जो भिखारी सा दिख रहा है, तभी द्वारपालों ने गौर से देखा तो आंगतुक के चेहरे में अपने साहब की झलक दिखाई पड़ी। उनका चेहरा मिलता जुलता था। वह गये और मींटिग में ही कलेक्टर साहब से कहा कि "सर" दरवाजे पर कोई फटेहाल आदमी आया है, वह अपने आपको आपका पिता बताता हैं, क्या अंदर आ जाने दूँ !

इतना सुनना था कि चेहरे का रंग उड़ गया और एकदम से अपने आप को सँभालते हुए उसने कहा कि "कौन? किसका पिता? कौन व्यक्ति आया है? मेरे पिता तो कब के गुजर चुके हैं।" निकाल दो उस मनहूस को गेट से बाहर। सुनो, उस सनकी बूढ़े को गेट के अंदर नहीं आने देना।" बूढ़ा पिता इसे सह नहीं सका। उसके लिए तो वज्राघात हुआ, वह वहीं गिरा और सच में ही मर गया। आज जब माता- पिता वृद्ध हो जाते हैं तो उन्हें किसी "केयर" या किसी "आसरा" जैसी संस्थाओं में जाना पड़ता है, जहां बहुत से वृद्धजन आते हैं, जो वृद्ध हो जाने के बाद अपने ही बेटों की उपेक्षा के शिकार बन जाते हैं।

ऐसे बेटों के लिए हम क्या कहें। आज ऐसे कुलांगार ज्यादा हैं। खाना भी बेटे अपने वृद्धों को तानों के साथ खिलाते, सब्जी उन्हें नहीं मिलती। सोचना चाहिए अगर आज तुम अपने माता-पिता के साथ ऐसा व्यवहार कर रहे हो तो

कल तुम्हारी भी कोई संतान यदि तुम्हारे साथ ऐसा व्यवहार करे तो तुम्हारे ऊपर क्या बीतेगी। ये हमारे लिए सोचने की जरूरत हैं। आज बहू सास के साथ, बेटा पिता के साथ ऐसा व्यवहार करता है, उसे ऐसे दुर्दिन देखने पड़ते हैं, जो कभी और नहीं देख सकता। यह हमें सोचने की जरूरत है। यह सच है कि माता-पिता जब वृद्ध हो जाते हैं, तो वृद्धावस्था के कारण उनके स्वभाव में परिवर्तन आ जाता है। पर बंधुओ, भले ही स्वभाव में परिवर्तन आ जाए, हमें उनका सब कुछ सहना चाहिए। एक व्यक्ति का अगर थोड़ा सा भी कोई उपकार करता है तो हमारा रोम-रोम उस के उपकार से दब जाता है किन्तु एक-एक कतरा खून जिनके द्वारा दिया गया है उनके उपकारों को तो हमें पूरी तरह से सहन करना चाहिए। यदि मनुष्य अपने माता-पिता के साथ ऐसा व्यवहार करता है तो वह अपनी संतान को भी वही शिक्षा देता है। एक व्यक्ति अगर अपने मां बाप से दुर्व्यवहार करता है तो उसे ध्यान रखना चाहिए कि कल जब वह बूढ़ा होगा तो उसके बेटे भी उसके साथ वही व्यवहार करेंगे क्योंकि बेटे जैसा सीखते हैं वही तो करते हैं।

एक प्रसंग सुनाकर अपनी वाणी को विराम देना चाहूंगा। एक पिता बहुत धनाढ्य थे। उनका इकलौता बेटा था। बेटे की पिता के प्रति गहरी निष्ठा थी। शादी की गई, अच्छी बहू घर आई, बहूरानी एकदम आधुनिक विचारधारा की थी। पिताजी काफी वृद्ध हो गये थे। बेटा चाहता था कि पिताजी अब घर पर ही आराम करे, घर की व्यवस्था देखें। अतः बेटे ने पिता से ऐसा ही अनुरोध किया, पिता ने भी उचित मानकर दुकान से निवृत्ति ले ली। अब पिताजी घर पर रहने लगे, घर का जो पहला कमरा था वहीं पिताजी रहने लगे। उनके घर पर रहने से बहूरानी को तकलीफ हो गई। क्योंकि ससुर के घर पर रहने से उसकी स्वतंत्रता छिन गई। अब वह चाट के ठेले पर खड़े होकर चाट नहीं खा पाती। अब जहां चाहे अपनी सहेलियों से मिलने नहीं जा पाती थी। उसे बड़ी तकलीफ होने लगी। एक दिन अपने पति से उसने कहा कि "उस बुढ्ढे को कहां बिठा दिया। सारा दिन थूक-थूक कर पूरे आंगन को खराब कर देते हैं, दरवाजे पर जो भी आता है, उन्हीं से मिलना होता है।"

आदमी कहां तक गिर जाता है, देखिये। बेटे ने सोचा कि बात तो ठीक कहती है, ऐसा करें इन्हें अंदर के कमरे में रख दें। उसने कहा पिताजी आप यहां

रहते हो, धूल आती है। आपको खाँसी की बीमारी है, धूल से आपकी बीमारी और बढ़ेगी, आप ऐसा करें अंदर के कमरे में रहा करें ताकि आपका स्वास्थ्य भी ठीक रहे। अंदर का कमरा बेटे के बेडरूम के बिल्कुल बगल का कमरा था। दादाजी को खांसी बहुत तेज चलती थी, रात-रात भर वह कर सो नही पाते थे। और जब वह खांसते थे तो बहुरानी डिस्टर्ब हो जाती थी। उसने अपने पति को समझाते हुए कहा कि देखो ये रात-रात भर खांसते रहते हैं और न वह सो पाते हैं, न हम लोग सो पाते हैं। ऐसा करो इनको ऊपर के कमरे में पहुंचा दो। बेटे ने कहा पिताजी वृद्ध हैं बार-बार भोजन पानी के लिए कैसे नीचे आयेंगे। बोली चिंता मत करो, तुम उन्हें ऊपर पंहुचा दो इनके भोजन की व्यवस्था वहीं कर देंगे सारी व्यवस्था वहीं हो जायेगी। बेटा अपनी पत्नी की बातों में आ गया और पिता को उठाकर एकदम तीसरे मंजिल के कबाड़खाने वाले कमरे में रख दिया, पिंता ने कहा कि बेटे मैं बार-बार नीचे कैसे ऊतरूंगा ? तो बेटे ने समस्या का समाधान करते हुए एक घंटी रख दी कहा - "पिताजी आपको जब कभी किसी चीज की आवश्यकता हो यह घंटी बजा दिया करो, नीचे से कोई आयेगा और आपकी पूर्ति कर देगा।" पिता के पास घंटी रख दी गई। बुढ़ापे से लाचार पिता सब कुछ सहता गया। उसने सोचा भी नहीं था कि उसे अपने जीवन में ऐसे दुर्दिन भी देखने पड़ेंगे। बेटा अपने पिता के प्रति अभी भी वही आदर रखता था, दिन में वार-बार सुबह-शाम मिल लिया करता था। लेकिन बहुरानी ने अपने ससुर को कभी अपना पिता नहीं समझा।

जब से पश्चिम की हवा हमारे देश में हावी हुई है तो ये बाते शुरू हो गई उसे तो एक बूढ़ा आदमी दिखा। बेटा ५-७ दिन के लिये बाहर गया। इधर बहू ने अपने ससुर की खोज खबर तक न ली। सुबह से शाम तक कुछ नहीं पूछा। बेटा आया और आने पर उसने पूछा कि पिताजी कैसे हैं ? तो बहू ने कहा "पता नहीं कैसे हैं, तीन दिन से उन्होंने कुछ मंगाया ही नहीं, घंटी भी नहीं बजाई। कुछ नहीं मंगाया ? हां उन्होंने कुछ नहीं मंगाया।" पति ने पूछा-"तुम गई थीं" बोली - "नहीं, मैं नहां गई" बेटा सीधे ऊपर गया। ऊपर जाकर देखता है कि पिताजी बिस्तर पर ही ढेर हो गये हैं, प्राण पखेरू उड़ चुके हैं, वह वहीं गिर पड़ा, और फूट-फूटकर रोने लगा कि पिताजी चले गये, तीन दिन से, उन्होंने घंटी नहीं

बजाई। शव को देखकर भी यही लगा कि इनकी मृत्यु तो दो दिन पहिले ही हो गई थी। उसे बहुत झटका लगा कि यह क्या हो गया आखिर पिताजी ने घंटी क्यों नहीं बजाई। उसने इधर-उधर देखा तो घंटी दिखाई नहीं पड़ी। बहुत खोज बीन की घंटी कहीं दिखाई नहीं पड़ी। तभी उसका चार वर्ष का बेटा घंटी लेकर ऊपर आया और कहा कि "पापा घंटी तो मेरे पास है।" बोले-"बेटे ये घंटी तुम क्यों ले गये थे? वह बोला -"कुछ नहीं एक दिन मैं दादाजी के पास आया, तो खेलते-खेलते घंटी ले गया। इसलिए ले गया कि जब आप लोग बूढ़े हो जाओगे तो आपके लिए काम में आएगी।" ठीक़ भी है जब अपने पिता को दादा के लिए घंटी लिये देखेगा, तो बेटा अपने पिता के लिए तो व्यवस्था करेगा ही करेगा। जैसा तुम्हारा व्यवहार होता है तुम्हारी संतान वही सीखेगी इसलिए अपने व्यवहार में हमेशा परिवर्तन लाना चाहिए। आप जब धर्म सभाओं में आते हैं, धार्मिक चर्चाओं में भाग लेते हैं आत्मा की उन्नति करने की बात सोचते हैं तो आपके आचरण में ऐसी पवित्रता आए, आप कोशिश करें अतिजात और अनुजात पुत्र बनने की, अवजात और कुलांगार तो कभी न बने। अपने माता-पिता के उपकार को समझें, और उनका हमेशा आदर करें, चाहे उनकी कैसी भी स्थिति हो। हमारा धर्म हमें यह नहीं कहता कि जिन्होंने हमें जन्म दिया, उनका ही हम तिरस्कार करें। जिस घर में आत्मीयता, बंधुत्व की भावना, प्रेम, सौहार्द्र हो तथा बड़ों के वहुमान के साथ. उनके प्रति आदर हो वही घर आदर्श घर है। हर व्यक्ति का घर आदर्श घर बने, इस शुभ भावना के साथ आज अपनी वाणी को यहीं पर विराम देते हैं।

युक्ताहार विहार

एक दिन भगवान महावीर से गौतम स्वामी ने पूछा भगवान् ! हम कैसे चलें, कैसी चेष्टा करें, कैसे बैठें, कैसे सोचें, कैसे बोलें, कैसे खायें जिससे कि पाप से बच जाएं ! जीवन से जुड़ा हुआ बहुत महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। ये इस प्रश्न का अर्थ समझकर आत्मसात करना ही धर्म का सार है। इतना बड़ा प्रश्न ! अपेक्षा रही होगी बहुत बड़े उत्तर की, पर भगवान ने इतने बड़े प्रश्न का इतना सीधा सरल और संक्षिप्त समाधान दिया कि सब दंग रह गये। प्रश्न में ही थोड़ा संशोधन करके समाधान दे दिया। भगवान ने कहा गौतम –

कथं चरें कथं चिट्ठे कधमासे कथम् सये।
कथं भासेज्ज भुंजेज्ज एवं पावं ण वज्झइ।।
जदं चरे जदं चिट्ठे जदमासे जद सये।
जदं भासेज्ज भुंजेज्ज एवं पापं ण वज्झई।।

तुम अपने आप को पाप से बचाना चाहते हो तो यत्नपूर्वक चलो, यत्नपूर्वक चेष्टा करो, यत्नपूर्वक बैठो, यत्नपूर्वक सोओ, यत्नपूर्वक बोलो, यत्नपूर्वक खाओ तुम्हारी हर क्रिया में यदि यत्न हो तो पाप से बच सकते हो।

इस संवाद पर मेरा ध्यान गया तो मुझे लगा कि जैन दर्शन का चिंतन कितना गहरा है ? भगवान ने यह नहीं कहा कि तुम्हें पाप से बचना है तो रोज मंदिर में जाकर के मेरी पूजा करना। न ही यह कहा कि रोज शास्त्रों के पन्ने

पलटने से पाप से बच जाओगे। यह भी नहीं कहा कि तुम बड़ी-बड़ी क्रिया और आडंबर युक्त चर्या अपना लोगे तो पाप से बच जाओगे। उन्होंने एक ही बात कही कि तुम जहां भी रहो यत्नपूर्वक अपना कार्य करो तो हर जगह तुम पाप से अलिप्त हो जाओगे। अगर हमारे अंदर विवेक है, विचार है, तो हम अपनी किसी भी क्रिया में संलग्न क्यों न हों, यह समझना कि हम धर्म कर रहे हैं। भगवान महावीर ने कहा कि यदि कोई व्यक्ति यत्नपूर्वक चल रहा है तो धर्म कर रहा है, यत्नपूर्वक उठता-बैठता है तो धर्म कर रहा है, यत्नपूर्वक अपना व्यापार-व्यवसाय कर रहा है तो धर्म कर रहा है, यत्नपूर्वक खा पी रहा है तो धर्म कर रहा है, और यत्नपूर्वक सो रहा है तो भी धर्म कर रहा है। धर्म का जो मूल केन्द्र बिन्दु है वह है हमारा विवेक, वह है हमारा होश, वह है हमारी जागृति, वह है हमारी सावधानी यदि हमारे जीवन में सजगता हो तो हम कहीं भी रहें, ये समझना कि धर्म हमारे जीवन से जुड़ा हुआ है और हम मंदिर में आने के उपरांत भी यदि अविवेक पूर्ण कार्य करते हैं, तो समझना अभी हमारा धर्म से दूर-दूर का भी कोई संबंध नहीं है। धर्म का संबंध तो मनुष्य के अंदर से होता है, और यह जो समाधान दिया कि यत्नपूर्वक चलो बस।

आज का जो विषय है युक्ताहार विहार, उसका सिर्फ इतना ही अर्थ है वही युक्त है जो तर्क संगत हो, जो उचित हो जो विवेकपूर्ण हो, ऐसा ही आहार-विहार करें। आहार-विहार बड़ा व्यापक शब्द है, इसका मतलब है अपनी सारी प्रवृत्ति में संयम लाना। सिर्फ खान-पान में ही नहीं, खान-पान, रहन-सहन, आचार, विचार, सबमें संयम लाओ, इसका नाम युक्ताहार विहार है। इसका अर्थ है विवेकपूर्ण जीवन शैली। मनुष्य विवेकशील प्राणी है। वह ज़ो कुछ भी करता है, सोच-विचार कर करता है। यदि उसकी सोच सुलझी हुई रहती है, साफ सुथरी रहती है, तो वह जो कुछ भी करता है उसके जीवन के विकास का साधन बनता है। सोच में यदि विकृति आ जाती है तो पूरे के पूरे जीवन को ही विकृत बना देता है, वह विवेकहीन हो जाता है। विवेकहीनता के कारण व्यक्ति की वृत्ति और प्रवृत्ति सब कुछ विकृत हो जाती है। इसलिए आचार्यों ने कहा है कि युक्त आहार-विहार करें, वही करें जो तुम्हारे आत्महित में सहायक हो, जो तुम्हारे निजी जीवन के विकास में साधक हो। ऐसा कार्य कभी न करो जो दूसरों के लिए बाधक बनता हो। चाहे

खान-पान की बात हो, चाहे आचार-विचार की बात हो, कोई भी कार्य हो इतना ध्यान रखो कि मेरे इस कार्य से किसी का अहित तो नहीं हो रहा है। जिनशासन का सार तो सिर्फ इतना ही है। भगवान महावीर ने कहा -

जं इच्छसि अप्पणतो जं च ण इच्छसि अप्पणतो।
तं इच्छ परस्सवि य एत्तियगं जिणसासणं।।

जैसा तुम अपने प्रति चाहते हो और जैसा तुम अपने प्रति नहीं चाहते हो दूसरों के प्रति भी तुम ऐसा ही व्यवहार करो, जिनशासन का सार सिर्फ इतना ही है। यही भगवान महावीर के उपदेश का सार है। और इसका ही नाम युक्ताहार विहार है। युक्ताहार विहार वही है जहां अपने हितों के साथ दूसरे के हितों का भी ध्यान रखा जाए। जिस आहार-विहार में, जिस प्रवृत्ति में, जिस आचार-विचार में अपने हितों के लिए दूसरे के हितों की उपेक्षा की जाती है, वह आहार-विहार कभी भी युक्ताहार विहार नहीं हो सकता। इसलिए अपने खान-पान पर संयम रखने की सलाह दी जाती है, अपने आचार-विचार पर संयम रखने की प्रेरणा दी जाती है। सिर्फ इसलिए कि हमारी प्रवृत्ति अपने हित के साथ दूसरे के हित की साधक बने, बाधक न बने, क्योंकि दूसरों के हित में बाधक बनना सबसे बड़ा अधर्म है। आहार और विहार में युक्तता कैसे आये ? पहले हम युक्त आहार के संबंध में चर्चा करें। आहार हमारे जीवन का आधार है-

"अन्नमूलं बलं पुसां बलमूलं हि जीवनम्"

शरीर के बल का आधार अन्न है और जीवन का आधार बल है। जीवन बल मूलक है। शरीर में यदि बल न हो तो शरीर चल नहीं सकता। इसलिए प्राणी को भोजन करने की आवश्यकता है और करते हैं। शरीर को चलाना जीवन के लिए बहुत जरूरी है।

जीवन और शरीर का बड़ा गहरा संबंध है। शरीर है तो जीवन का अर्थ है, नहीं तो जीवन समाप्त और दूसरी ओर जीवन है तो शरीर का मूल्य है, जीवन खत्म तो शरीर का कोई मूल्य नहीं। जीवन के अभाव में शरीर मुर्दा हो जाता है, और शरीर के अभाव में जीवन प्रेत कहलाता है। दोनों का बड़ा गहरा संबंध है,

जब तक शरीर है तब तक जीवन है, और जब तक जीवन है तब तक शरीर है। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। इसलिए जीवन को चलाने के लिए शरीर जरूरी है और कहा गया है

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्

शरीर के ही माध्यम से हम धर्म का साधन कर सकते हैं। पर किस शरीर के माध्यम से, हर शरीर से नहीं, वही शरीर धर्म के लिए सहायक होता है, जो स्वस्थ्य हो। शरीर यदि अस्वस्थ हो तो वह धर्म के लिए साधक न होकर बाधक बन जाता है। एक अस्वस्थ व्यक्ति धार्मिक साधना चाहकर भी नहीं कर पाता। इसलिए स्वस्थ रहना जरूरी है। स्वस्थ कौन बन सकता है ? वाग्भट्ट एक बहुत बड़े वैद्य हुए हैं उनकी परीक्षा लेने के लिए एक बार अश्विनीकुमार आये, बड़े निराले ढंग से उन्होंने परीक्षा ली। वह तोते का रूप बना कर एक पेड़ की डाल पर बैठ गये और कहना शुरू किया कोडरूक कोडरूक.....? कौन निरोग है कौन निरोग है कौन निरोग है ....? बार-बार उस तोते ने कहा। जैसे ही वाग्भट्ट का ध्यान गया उन्होंने जवाब दिया, हितभुक मितभुक शाक भुक चैव-चैव। अरूग्ण कौन है, वह है जो हितकारी भोजन करता है वह है। हितभुक, मितभुक यानि जो सीमित मर्यादा में परिमाण में खाता है और शाकभुक यानि जो शाकाहार का सेवन करता है, वही अरूग्ण है, उसके जीवन में रोग अपना प्रभाव नहीं दिखा सकता वह व्यक्ति पूरे जीवन स्वस्थ जीवन जीता है, और जो व्यक्ति स्वस्थ जीवन जीता है, वही सुखी जीवन जीता है। "पहला सुख निरोगी काया," काया का निरोगी होना पहला सुख है स्वस्थ जीवन सुखी जीवन का आधार है। इसलिए सुखी रहना चाहते हो, तो स्वस्थ रहो और स्वस्थ रहना चाहते हो तो हितभुक-मितभुक शाक भुक की नीति को अपनाना जरूरी है। नीतिकारों ने बड़ी अच्छी बात कही, है कि

"धर्मार्थकाममोक्षाणां आरोग्यम् मूलमुत्तमम्"

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरूषार्थों का मूल आरोग्य है। यदि शरीर स्वस्थ है तो हम चारों पुरूषार्थ कर सकते हैं, अन्यथा बड़े-बड़े पुरूषार्थी भी हार जाते हैं।

इसलिए हमारे आचार्यों ने यह कहा है कि ऐसा कोई काम करो ही नहीं

जिससे तुम्हारा स्वास्थ्य बिगड़ता हो। यदि व्यक्ति पथ्य का अनुपालन करता है तो कभी रोग नहीं आ सकता। रोग का एक कारण अपथ्य का सेवन है, अपथ्य से बचना चाहते हो तो युक्त आहार और विहार की पद्धति को अपनाओ, अपने आहार में इस बात का ध्यान रखो कि जो तुम खा रहे हो वह तुम्हारे स्वास्थ्य के लिए साधक है या बाधक। व्यक्ति अलग-अलग उद्देश्य से भोजन करते हैं, कुछ लोग स्वाद के लिए भोजन करते हैं, कुछ लोग स्वास्थ्य के लिए भोजन करते हैं और कुछ लोग साधना के लिए भोजन करते हैं। स्वाद के लिए भोजन करना, भोजन का दुरूपयोग करना है। जो व्यक्ति स्वाद के लिए खाते हैं वह पेट नहीं देखते, जींभ देखते हैं। यह भी नहीं देखते कि अंदर जगह है कि नहीं, गले तक ठूसने में भी परहेज नहीं करते। ऐसे व्यक्ति के लिए दिन-रात का कोई भेद नहीं रहता। जब देखो बकरी की तरह चरते रहते हैं, जब जहां जैसे मिल जाए पेट में जगह है तो हिला-हिलाकर लेंगे। ऐसे लोग कभी स्वस्थ नहीं रह सकते। ऐसे लोग कभी साधना नहीं कर सकते, स्वाद के लिए खाने वाले व्यक्ति के लिए इंद्रिय- संयम नहीं रहता, इंद्रिय-संयम के अभाव में वह उचित-अनुचित सब कुछ खा लेते हैं। आज तो तरह-तरह की चीजें चलने लगीं है वह सिर्फ स्वाद के लिए हैं। स्वाद में आसक्त व्यक्ति हिंसा और अहिंसा का विचार नहीं करता पर ऐसे लोगों की संख्या बहुत अधिक है।

मुंगेरीलाल के संबंध में मैंने एक दिन पढ़ा कि वह एक भोज में पहुंचा। वहां बहुत बढ़िया लड्डू बनाये गये थे उसने भकाभक लड्डू खाना शुरू किया, लड्डू पर लड्डू खाता गया, उसका बेटा भी साथ में गया था। बेटा लड्डू खाते-खाते बीच में पानी भी पीने लगा। बेटे ने जैसे ही पानी पिया तो उसने एक तमाचा मारा बोला क्यों पानी पीकर के पेटभर रहा है ? उसने कहा पिताजी पानी पीने से लड्डू घुल जाता है, घुल जाने से लड्डू सेट हो जाता है, और पेट में जगह बढ़ जाती है उससे मैं ज्यादा खा लेता हूं। तो उसने फिर एक तमाचा लगाया और कहा कि ऐसी बात थी मुझे पहले क्यों नहीं बताया। ये स्वाद के लिए खाने वालों की स्थिति है और ऐसे लोगों की आज बहुलता है। इसी कारण व्यक्ति अस्वस्थ रहता है।

दूसरा उद्‌देश्य है स्वास्थ्य के लिए खाना जो व्यक्ति अपने स्वास्थ्य के प्रति जागरूक होते हैं वह अपने भोजन में बहुत अधिक संयम रखते हैं। और संयम नहीं रखोगे, स्वाद के लिए अधिक खाओगे तो एक समय ऐसा आएगा कि डॉक्टर पूरा खाना ही छुड़ा देगा शुरू से जो स्वास्थ्य के प्रति सजग रहते हैं और भोजन में संयम रखते हैं उन्हें डाक्टर की जरूरत नहीं पड़ती। जो जीवन भर असंयम से रहते हैं उनका सब कुछ छूट जाता है। स्वास्थ के लिए खाने वाले लोग अपने भोजन के प्रति हमेशा जागरूक रहते हैं। पर बंधुओ स्वास्थ्य के लिए भोजन करना भी भोजन का एक बहुत अच्छा उपयोग नहीं है, उन्हें सिर्फ शारीरिक स्वास्थ्य की बात दिख रही है अंदर की बात दिख ही नहीं रही है।

स्वस्थ कौन है ? आयुर्वेद ग्रंथों में लिखा गया है

समधातु समाग्निश्च समश्च मलक्रिया।
प्रशान्तात्मेन्द्रिय मनश्चेति स्वस्थ इति विधीयते।।

जिसकी धातु समान है, वात पित्त कफ समान है, जठराग्नि भी ठीक काम कर रही है। मल क्रिया भी ठीक है। यह तो शरीर संबंधी है। इसके बाद कहते हैं "प्रशान्तात्मा इन्द्रिय मनश्चेति" जिस की आत्मा अत्यंत शांत है, जिसकी इन्द्रियाँ एकदम शांत हैं, जिनका मन अत्यंत शांत हो गया वही स्वस्थ्य कहलाता है। बाहर के स्वास्थ्य के साथ-साथ भीतर का स्वास्थ्य भी अपेक्षित है। भीतर का स्वास्थ उन्हीं का बन सकता है जो साधना को ध्यान में रखते हैं। इसलिए भोजन का सबसे उत्तम उद्‌देश्य स्वास्थ्य और साधना का होना चाहिए। ऐसा ही भोजन क़रना चाहिए जो हमारे स्वास्थ्य और साधना दोनों के अनुकूल हो। आहार विहार की प्रक्रिया में नियंत्रण रखने के लिए जैन परंपरा में आठ मूलगुणों की चर्चा की गई है। यदि प्रत्येक व्यक्ति उन आठ मूलगुणों को धारण कर ले तो उसका आहार-विहार अपने आप संतुलित हो जावेगा।

वे आठ मूल गुण क्या हैं ? मद्य मांस और मधु का त्याग, रात्रि भोजन का त्याग, पानी को छानकर पीना, पंच परमेष्ठी की स्तुति और पूजन करना, जीवों की दया का पालन क़रना तथा पंच उदम्बर फलों का त्याग करना। ये आठ मूल गुण हैं जो जैनी की पहचान है।

मद्य मांस मधु इन्हें ***"मकार त्रय"*** भी कहते हैं इनका त्याग करना चाहिए। ये तीनों मकार हमारे जीवन में विकार लाते हैं। जो व्यक्ति मद्य पायी होता है किसी भी चीज का नंशा करता है, उसका आचार विचार बिगड़ जाता है। इसलिए मद्य, मांस मधु के त्याग की बात कही गई है भारतीय संस्कृति पर आप विचार कीजिये कि कितना अधिक ध्यान दिया गया। व्यक्ति को एक-एक क्रिया पर सजगता रखने का उपदेश दिया गया, यहां तक कि उसको खान-पान पर संयम रखने की बात कही गई। यह कहा गया है कि तुम कैसा खाओ और यह कहावत ही चल पड़ी कि ***"जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन्न" "जैसा पीवे पानी, वैसी होवे वाणी"*** यह कहावत नहीं यथार्थ है।

आज वैज्ञानिक प्रयोगों से यह बात स्पष्ट हो गई है कि मनुष्य जैसा अन्न खाता है वैसा उसका मन होता है। व्यक्ति के भोजन से उसके विचारों का गहरा संबंध है। जो व्यक्ति शुद्ध सात्विक भोजन करते हैं, उनके विचार भी अत्यंत सात्विक होते हैं और जिनके भोजन में तामसिक चीजों की बहुलता होती है, जो मांसाहार करते हैं और अन्य अभक्ष्य पदार्थों का सेवन करते हैं उनके विचार उतने ही विकृत होते हैं। अमेरिका में एक सर्वेक्षण हुआ, वहां के तीस नृशंस अपराधियों पर जो किया गया। दस-दस के तीन ग्रुप बनाए गए। पहले ग्रुप को छह माह तक गाय का शुद्ध दूध पिलाया गया, दूसरे ग्रुप को चावल और शाकाहारी भोजन कराया गया। और तीसरे ग्रुप को पूर्ववत् मांसाहार दिया गया। उन्होंने अपने सर्वेक्षण की रिपोर्ट में लिखा कि जिस ग्रुप को शुद्ध दूध दिया गया, उसके अंदर दो महीने में ही अपराध बोध शुरू हो गया, जो कभी अपना अपराध स्वीकारते नहीं थे, उनके अंदर अपराध बोध शुरू हो गया और पश्चाताप भी प्रारंभ हो गया। जिन्हें शुद्ध शाकाहारी भोजन और चावल दिया गया था छह महीने में उनके अंदर अपराध बोध शुरू हो गया और उन्होंने भी अपने अपराध को स्वीकार लिया। लेकिन जो तीसरा ग्रुप था उनमें आपराधिक प्रवृत्ति घटने की जगह और बढ़ गई क्योंकि उन्हें मांसाहार दिया गया था, उनका खान-पान अशुद्ध था और फिर उस आधार पर लिखा कि मनुष्य जैसा भोजन करता है, उसके विचारों पर वैसा प्रभाव पड़ता है। यह बात हमारे देश में बहुत पहले से कही गई, हमारे देश की तो ये लोकोक्ति बन गई कि जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन और जैसा पीवे पानी वैसी

होवे वाणी। हमारे मन और वाणी पर हमारे भोजन और पानी का बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता है। इसलिए अपने मन और वाणी पर नियंत्रण रखने के लिए भोजन और पानी पर नियंत्रण रखना बहुत जरूरी है। इसी को ध्यान में रखते हुए सबसे पहले मद्य, मांस और मधु के त्याग का उपदेश दिया जाता है।

मद्य का त्याग करना चाहिए। मादक पदार्थों का सेवन हमारे जीवन के लिए बहुत खतरनाक है। इनका सेवन करने से जीवन बर्बाद हो जाता है। शराब हमारे जीवन को खराब कर देती है। शराब पीने से व्यक्ति की वृत्ति और प्रवृत्ति दोनों बिगड़ जाती है। शसब व्यक्ति के सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक चेतना को विकृत करता है। इस शराब के कारण अनेक परिवार बर्बाद हो चुके हैं। अन्वेषण बताते हैं कि शराब और अराजकता में गहरा संबंध है। शराबी आदमी अपने सामाजिक दायित्व के प्रति उदासीन रहता है। वह एक सामान्य आदमी से अधिक अपराध करता है।

आज जितने भी अपराध होते हैं वैज्ञानिकों के अनुसार उनमें ९२ प्रतिशत शराब के कारण होते हैं। अनेक स्थानों पर इस विषय में विशेष सर्वेक्षण हुए हैं। अमेरिका के एक न्यायाधीश ने अपने सामने आये १००० मामलों की छानबीन करने के बाद बताया कि उनमें ९२ प्रतिशत शराब से जुड़े थे। लॉस एंजिल्स काउण्टी के सुपीरियर कोर्ट के जज विलियम आर. मैके ने कहा है न्यायालय में पेश होने वाले अपराध के १० मामलों में ९ ऐसे होते हैं जो प्रत्यक्षतया शराब के अन्धाधुंध उपयोग की देन होते हैं। इन सब बातों से एक बात निर्विवाद रूप से उभरती है कि मद्य-पान और अपराध का चोली दामन का संबंध है। शराब पीने से व्यक्ति क्रूर, क्रोधी और प्रमादी बन जाता है। उसके लिए जीवन बहुत सस्ता हो जाता है। वह अपनी तो हानि करता ही है कभी-कभी दूसरों की हत्या तक कर देने में उसे संकोच नहीं रहता। जब व्यक्ति शराब के नशे में रहता है तो वह सभी प्रकार के अपराध और विंभिन्न स्तरों पर उत्तरदायित्वहीन व्यवहार करने लगता है। ऐसे व्यक्तियों में शराब पीने के बाद मिथ्या साहस की भाबना उत्पन्न हो जाती है। उच्च सिद्धांतों को मानने वाले लोग भी शराव पीने के बाद उचित अनुचित की भेद-रेखा का विवेक खों देते हैं। मद्य-पान के कारण वे अपनी भावनाओं पर नियंत्रण खो देते हैं।

आजकल शराब के अतिरिक्त अनेक प्रकार के नशीले पदार्थों का सेवन भी किया जाने लगा है। आज की नई पीढ़ी तनाव मुक्ति, उत्तेजना या सुखाभास की तीव्र अनुभूति या मस्ती के लिए अनेक प्रकार के नशीले पदार्थों का सेवन करने लगी है। ये सभी मनुष्य के लिए बहुत खतरनाक है। इनके बड़े घातक परिणाम सामने आ रहे हैं। आज तो गांजा, भांग, चरस, अफीम, स्मैक, हैरोइन, कोकीन आदि अनेक प्रकार के मादक पदार्थों का प्रचलन हो गया है। जो लोग इनके अधीन हो जाते हैं उन्हें अपने जीवन से हाथ धोना पड़ता है।

तम्बाकू, जर्दा और धूम्रपान भी मद्य के अन्तर्गत ही आता है। हर सिगरेट और पान मसाले पर लिखा रहता है कि सिगरेट पीना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। फिर भी जिन लोगों को उसकी लत पड़ जाती है वे इसे छोड़ नहीं पाते हैं। एक सिगरेट पीने से व्यक्ति की पांच मिनिट की आयु घट जाती है। केवल उसकी ही आयु नहीं घटती बल्कि जो उसके आसपास रहते हैं वे भी उससे प्रभावित होते हैं। वैज्ञानिकों का कहना है कि जो धूम्रपान करते हैं उन्हें फेंफड़ों का कैंसर उपहार स्वरूप मिलता है।

मैंने एक सर्वेक्षण पढ़ा, जिसमें लिखा है कि पिछले चार दशकों में संसार में तम्बाकू पीने और खाने से हुई बीमारियां मनुष्य की अकाल मृत्यु का प्रमुख कारण रही हैं। इस आधार पर अकाल मृत्यु के सबसे बड़े कारण जर्दा-धूम्रपान को यमदूत कहा जा सकता है। उस सर्वेक्षण में बताया है कि प्रथम विश्वयुद्ध के चार सालों में जितने लोगों की मृत्यु हुई, उतने लोग तम्बाकू से उत्पन्न बीमारियों के कारण सिर्फ डेढ़ वर्ष में काल कवलित हो जाते हैं। भारत में रोजाना ३००० लोग जर्दा और धूम्रपान से मरते हैं। उस सर्वेक्षण में यह भी बताया है कि एक पैकेट सिगरेट पीने वाला व्यक्ति यदि सिगरेट की जगह उस पैसे को लगातार पच्चीस वर्षों तक बैंक में जमा करता रहे, तो इस अवधि में तीन लाख पचास हजार रूपये बैंक में जमा होंगे। जबकि पच्चीस वर्ष तक धूम्रपान करते रहने के पश्चात् शरीर को स्वस्थ रखने के लिए पांच सौ से हजार रूपये प्रतिमाह चिकित्सा पर खर्च करने पड़ते हैं।

इस प्रकार मादक पदार्थ सभी दृष्टियों से हानिकर है, मैं तो कहता हूँ एक

प्रकार से अपने शरीर से खिलवाड़ करना है। अपने आचार्यों के परामर्श को ध्यान में रखना चाहिए तथा सब प्रकार के मादक पदार्थों का त्याग करना चाहिए।

इस प्रसंग में भगवान बुद्ध ने कहा था – "मनुष्यो तुम सिंह के सामने जाते समय भयभीत न होना, क्योंकि वह पराक्रम की परीक्षा है। तुम तलवार के नीचे सिर झुकाने से भयभीत न होना क्योंकि वह बलिदान की कसौटी है। तुम पर्वत शिखर पर से पाताल में कूद पड़ना क्योंकि यह तप की साधना है। तुम बढ़ती हुई ज्वालाओं से विचलित मत होना, यह स्वार्थों की जननी है। पर शराब से सदा भयभीत रहना क्योंकि यह पाप और अनाचार की जननी हैं। आगे उन्होंने कहा "जिस राजा के राज्य में सुरादेवी आदर को प्राप्त होती है वह राज्य काल वेदी पर नष्ट हो जाएगा। वहां न औषधि उपयोगी है न अनाज।"

मांस का भी त्याग करना चाहिए। मांस भक्षण में हिंसा है, हिंसा अधर्म है। भारतीय परंपरा "शाकाहार" अपनाने की बात करती है। शाकाहारी व्यक्ति अधिक स्वस्थ्य और सुखी रह सकता है। शाकाहार का अर्थ यही है –

शा – शांति
का – कारक
हा – हानि
र – रहित

शाकाहार पूर्णतः शांतिकारक और हानि रहित है। यह व्यक्ति को सुखी और समृद्ध बनाने वाली जीवन शैली है। इसके विपरीत मांसाहार अनेक रोगों का जन्म दाता है। धार्मिक, सांस्कृतिक, शारीरिक आर्थिक किसी भी दृष्टि से मांसाहार मनुष्य के अनुकूल नहीं है। सभी धर्मग्रन्थों में अहिंसा को महत्व देते हुए शाकाहार अपनाने की बात की गई है। भारत की संस्कृति प्राणि मात्र से समान व्यवहार करने की रही है। अपने स्वार्थ के लिए किसी भी जीव की हिंसा करना घोर पाप है।

मनुष्य की शारीरिक संरचना भी मांसाहार के अनुकूल नहीं है। मनुष्य के दांत, आंत, नाखून, जीभ आदि सभी शाकाहारी प्राणियों की तरह ही हैं। इन सब पर विचार करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि शाकाहार मनुष्य की प्रकृति

है। कोई भी मनुष्य पूर्णतः मांसाहार पर नहीं रह सकता। जबकि मांसाहारी प्राणियों के जीवन का मूल आधार मांस ही रहता है। मनुष्य की प्रकृति शाकाहार की है। मांसाहारियों के दांत तीक्ष्ण, आंते छोटी एवं नाखून पैने होते हैं। जबकि शाकाहारियों की आंत लंबी होती है। मांसाहार आंतों के कैंसर का प्रमुख कारण है। इसके साथ ही अन्य भी अनेक घातक बीमारियों जैसे - मिर्गी, गुर्दे की बीमारियां, गठिया, चर्म रोग, अस्थमा, आंतों का सड़ना और अल्सर आदि रोग मांसाहारियों को अधिक होते हैं। आजकल पशुओं को मारने से पूर्व उनके शरीर में पल रहे घातक रोगों की ठीक ढंग से जांच नहीं होती और उनके शरीर में पल रहे रोग मांस खाने वाले मनुष्य के शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। फिर जिस त्रास और यन्त्रणा पूर्ण वातावरण में इनकी हत्या की जाती है उस वातावरण में उत्पन्न हुआ तनाव, भय, छटपटाहटता, क्रोध आदि पशुओं के मांस को जहरीला बना देता है। वह जहरीला रोगग्रस्त मांस मांसाहारी के पेट में जाकर उसे असाध्य रोगों का शिकार बना देता है। वैज्ञानिकों ने अपने अन्वेषणों के आधार पर स्पष्ट सिद्ध कर दिया है कि मांसाहार मनुष्य के अनुकूल नहीं है। आज डॉक्टर भी शाकाहार अपनाने का परामर्श देते हैं।

मांस की तरह अण्डा भी मांसाहार के ही अन्तर्गत आता है। चाहे वह निषेचित हो या अनिषेचित, कोई भी अण्डा शाकाहारी नहीं है। यह सिद्ध हो चुका है कि कोई अण्डा निर्जीव नहीं रहता। वैज्ञानिक यंत्रों से अण्डों में रहने वाले जीवों की संवेदना नापी जा सकती है। अण्डे को शाकाहरी निरूपित करना अहिंसक संस्कृति के साथ एक क्रूर मजाक है। हमें इसे सहन नहीं करना चाहिए और इस प्रकार की भ्रान्ति का निवारण करना चाहिए। क्या कोई भी अण्डा किसी पेड़ पर उगता है ? क्या साग-भाजी की तरह अण्डों को खेतों में उगाया जा सकता है ? नहीं, अण्डा शाकाहारी नहीं है। वह तो मुर्गी के जिगर का टुकड़ा है। कल्पना करो कि किसी सद्य प्रसूत माँ के सामने से ही उसके बच्चे को जबदस्ती उठा लिया जाए तो उस मां पर क्या बीतेगी। क्या उस अण्डे देने वाली मुर्गी के बारे में कभी आपने विचार किया ?

वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि चाहे अण्डा हो या मांस और

मछली सभी हमारे स्वास्थ्य के लिए घातक हैं। अमेरिकी वैज्ञानिक माईकल एस. ब्राउन और डॉक्टर जोसेफ एल. गोल्डस्टीम जिन्हें सन् १६८५ में नोबेल पुरूस्कार मिला है ने यह सिद्ध कर दिया है कि अण्डे से हार्ट अटैक की संभावना बहुत अधिक रहती है। उन्होंने कहा है कि अण्डों के अन्दर कॉलेस्ट्रॉल की मात्रा अत्यधिक होती है। कॉलेस्ट्रॉल हृदयघात का सबसे बड़ा कारण है।

इसके साथ ही अण्डों में पाया जाने वाला सालमोनेला नामक कीटाणु भी मनुष्य के लिए बहुत घातक है। यही कारण है पश्चिम के लोग अब शाकाहार की गुणवत्ता को मानने लगे हैं। पश्चिम के देशों में बड़ी भारी संख्या में लोग शाकाहारी बन रहे हैं।

आर्थिक दृष्टि से भी मांसाहार अनुकूल नहीं है। एक मांसाहारी के भोजन में जितना व्यय होता है उतने में आठ व्यक्तियों का भोजन हो सकता है। मांसाहार, शाकाहार की तुलना में आठ गुना मंहगा है। सभी दृष्टियों से शाकाहार ही उपयुक्त आहार है। यही मानवीय आहार है, व्यक्ति को मांस भक्षण का त्याग कर शाकाहार अपनाना चाहिए।

शहद का सेवन करना भी उपयुक्त नहीं है। शहद के भक्षण में भयंकर हिंसा होती है। जो लोग शहद निकालते हैं वे मधुमक्खियों के छत्ते को तोड़ डालते हैं। इसमें कितनी हिंसा है। अपने थोड़े से स्वाद के लिए किसी का घर उजाड़ना कंहा तक उचित है ? थोड़ा विचार कीजिये। कुछ लोग तथाकथित अहिंसक शहद खाने की सलाह देते हैं जो मधुमक्खियों के उड़ने या उड़ाने के बाद निकाली जाती है, लेकिन यह भी ठीक नहीं क्योंकि शहद तो मधुमक्खियों की उगाल है। किसी प्राणी के उगाल (थूक) का सेवन शिष्ट जन नहीं करते। फिर शहद में असंख्य सूक्ष्म जीव भी रहते हैं जो हमें दिखाई नहीं देते। शहद के सेवन से हिंसा को टाला ही नहीं जा सकता। वैदिक ग्रन्थों में लिखा है कि "एक बूंद शहद खाने में सात गांवों को जलाने के बराबर पाप लगता है।" अतः शहद भी हम सभी के लिए त्याज्य ही है।

पानी भी छान कर ही पीना चाहिए। जल में अनेक त्रस जीव पाए जाते हैं। वे इतने सूक्ष्म होते हैं कि हमें दिखाई नहीं पड़ते। आधुनिक वैज्ञानिकों ने सूक्ष्म

दर्शी यंत्रों से देखकर एक बूंद जल में ३६४५० सूक्ष्म जलचर जीव बताए हैं। जैन धर्म के अनुसार तो उन जीवों की संख्या असंख्य है। इन जीवों की रक्षा के लिए पानी छानकर ही पीना चाहिए। मनुस्मृति में भी कहा है -

"दृष्टि पूतं न्यसेत् पादं, वस्त्र पूतं पिबेत्जलम्।।"

अर्थात अपनी दृष्टि से धरती को अच्छी तरह देखकर ही पैर रखें तथा पानी को वस्त्र से छानकर पीयें।

जल छानकर पीने में करूणामयी भावना छिपी हुई है। जो व्यक्ति पानी पीने तक में दूसरे जीवों की रक्षा की भावना रखता है उसके विचार कितने शुद्ध होंगे इसका अनुमान आप खुद लगा सकते हैं।

अनछना पानी पीने से हिंसा की संभावना तो रहती ही है। मनुष्य को अनेक प्रकार के रोगों का भी शिकार होना पड़ता है। आजकल तो चिकित्सक भी छने जल को ही पीने का परामर्श देते हैं। पानी छानने के महत्व पर प्रकाश डालते हुए एक बार डॉ. शंकरदयाल शर्मा ने इन्दौर की एक घटना का उल्लेख किया था। इन्दौर के एक मुहल्ले में एक विशेष प्रकार का रोग फैला, जिसमें पूरा का पूरा परिवार बिस्तर पकड़ लेता था। रोग एक सीमित क्षेत्र तक ही प्रभावी था। चिकित्सक इससे चिन्तित थे। उस समय यह भी देखा गया कि उस मोहल्ले के जैन परिवारों में उस रोग का कोई लक्षण नहीं था। डॉक्टर इससे चकित थे। बाद में खोज करने पर मालूम चला कि जिस वाटर टैंक से मुहल्ले में पानी वितरित होता था। उसमें एक चिड़िया मरी पड़ी थी। उसके पूरे शरीर में कीड़े पड़े थे। इसके कारण पूरा पानी विकृत हो गया था। वह विषाक्त पानी ही रोगों का कारणं था। जैन परिवारों में इसे रोग का प्रभाव इसलिए नहीं था क्योंकि उनमें छने जल का ही उपयोग किया जाता था।

आजकल जो नल का पानी आता है, कई बार तो उसमें नाली का पानी भी आ जाता है। कभी-कभी नल के पानी में केंचुए भी देखे गये हैं ऐसी घटनाएं रोज समाचार पत्रों में छपती रहती हैं। अतः छंने जल का ही उपयोग करना चाहिएं।

इसका एक वैज्ञानिक कारण भी है, सूर्य की किरणों में पराबैंगनी (ultra violet) नाम की अदृश्य उष्ण किरणें रहती हैं। इन किरणों के प्रभाव से दिन में जीव-जन्तु इधर-उधर छिप जाते हैं तथा नये जीवों की उत्पत्ति नहीं होती। रात्रि होते ही वे निकलने लगते हैं और उनकी भोज्य सामग्री में गिरने की संभावना रहती है, उनसे आप अपने आपको बचा नहीं सकते। हम कितना भी कृत्रिम प्रकाश क्यों न कर लें, कृत्रिम प्रकाश में प्रकाश तो मिल जाता है प्रासुकता नहीं। बल्कि लाईट जलाने पर तो और अधिक कीड़े आते हैं। आपने कभी विचार किया सर्दी का मौसम आने वाला है आप अपनी अल्मारियों से गर्म कपड़ों को निकालकर सुखाते हैं, कहां सुखाते हैं, सूर्य के प्रकाश में या कृत्रिम प्रकाश में ? कृत्रिम प्रकाश में आपका कपड़ा सूख तो सकता है पर गंध नहीं छोड़ सकता। यह सूर्य प्रकाश की प्रासुकता का प्रमाण है।

रात्रि भोजन स्वास्थ्य की दृष्टि से भी हानिकर है। चिकित्साशास्त्रियों का अभिमत है कि सोने के कम से कम तीन घंटे पूर्व तक भोजन कर लेना चाहिए। जो लोग रात्रि भोजन करते हैं वे भोजन के तुरन्त बाद सो जाते हैं, इससे अनेक प्रकार के रोगों का जन्म होता है। दूसरी बात यह है कि सूर्य के प्रकाश में केवल प्रकाश ही नहीं होता जीवनदायिनीशक्ति भी रहती है। सूर्य प्रकाश से हमारे पाचन तन्त्र का गहरा संबंध है। जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश पाकर कमल दल खिल जाते हैं तथा उसके अस्त होते ही सिकुड़ जाते हैं, उसी प्रकार जब तक सूर्य प्रकाश रहता है तब तक उसमें रहने वाली गर्म किरणों के प्रभाव से हमारा पाचन तंत्र ठीक काम करता है, अस्त होते ही उसकी गतिविधि मंद पड़ जाती है। इससे अनेक रोगों की संभावना बढ़ जाती है।

भारतीय संस्कृति में हिंसा को किसी भी रूप में स्वीकार नहीं किया गया है। रात्रि भोजन में हिंसा है अतः गृहस्थ से सर्वप्रथम उसका त्याग कराया जाता है, इस बात का उल्लेख वैदिक पौराणिक ग्रन्थों में भी है। गरूड़ पुराण में एक स्थान पर लिखा है -

अस्तंगते दिवा नाथे आपो रूधिरमुच्यते।
अन्नं मांस समं प्रोक्तं मार्कण्डेय महिर्षिणा।।

सूर्य के अस्त हो जाने पर जल रक्त की तरह एवं अन्न मांस की तरह हो जाता है। ऐसा मार्कण्डेय महिर्षि कहते हैं। कितनी बड़ी बात कह दी। यह बात यथार्थ है ज़िस जिस में त्रस जीवों की हिंसा संभाव्य है वह हमारे द्वारा त्याज्य ही है। महाभारत में भी रात्रि भोजन के त्याग की प्रेरणा दी गई है। वहां तो रात्रि भोजन को नरक का द्वार कहा गया है –

नरक द्वाराणि चत्वारि प्रथमम् रात्रि भोजनम्।
परस्त्री गमनम् चैव सन्धानानन्त कायिके।।
ये रात्रौ सर्वदाहारं परित्यजन्ति सुमेधसः।
तेषां पक्षोपवासस्य फलं मासेन जायते।।
नोदकमपि पातव्यं रात्रावव युधिष्ठिर।
तपस्वीनां विशेषेण गृहस्थानाम् च विवेकिनाम्।।

युधिष्ठिर को रात्रि भोजन से बचने की प्रेरणा देते हुए कहा गया है कि नरक के चार द्वार हैं। उनमें पहला द्वार रात्रि भोजन है, इस कथन के अनुसार जो रात्रि में भोजन करते हैं वे नरक जाने का पासपोर्ट तैयार करवाते हैं। वहां तो यहां तक कहा गया है कि जो रात्रि में सब प्रकार का आहार छोड़ देते हैं उनके माह में एक पक्ष के उपवास का फल मिलता है, क्यों नहीं मिलेगा, प्रतिदिन बारह घण्टे का त्याग रहने के कारण वर्ष में छहमाह का उपवास हो सकता हैं। रात्रि भोजन की इससे बड़ी महिमा और क्या होगी।

आजकल स्थिति भिन्न हो गई है, लोगों से रात्रि भोजन त्याग करने की बात करें तो छोड़ नहीं पाते, कैसी बिडम्बना है ? जिससे पहले जैनों की पहिचान होती थी आज उसका ही व्रत देना पड़ रहा है। लोग कहते हैं हमारा चलता नहीं है। कैसे नहीं चलता ? हम चलाना ही नहीं चाहते। मैं ऐसें बहुत से बड़े-बड़े लोगों को जानता हूँ जो आज उच्च पदों पर आसीन हैं पर रात्रि भोजन तो दूर की बात बाजार का पानी तक नहीं पीते। उनका कैसे चल जाता है ? हर किसी का चल सकता है यदि निष्ठा हो। आज तो सब प्रकार की सुविधायें हैं, अपने पूर्वजों को याद करो जिन्होंने घोड़ा लाद कर बाजार किया और व्यापार किया हफ्तों तक घर से बाहर रहे फिर भी कभी रात में नहीं खाये। अपनी अलग पहिचान बनाये रखे।

यह सब उनकी गहरी निष्ठा का प्रतीक है। तुम्हारी निष्ठा नहीं रही, इसी कारण आज इन छोटे-छोटे नियमों के पीछे इतना संकोच लग रहा है।

आजकल अनेक प्रकार की अपसंस्कृतियां फैल रही हैं उनमें एक है थ्री डी की संस्कृति। थ्री डी का अर्थ है - ड्रिंक, डांस और डिनर। रात्रि कालीन विवाहों, समारोहों और भोजों का यह प्रतिफल है। सामूहिक रात्रि भोज तो और अधिक हिंसा का कारण है उसका तो त्याग करना ही चाहिए। कुछ लोग ऐसे समारोहों में सम्मिलित होने के कारण रात्रि भोजन का त्याग नहीं करते। उन्हें बड़ा संकोच होता है। वे कहते हैं हमें सोसाइटी मेन्टेनं करना है। बन्धुओं मात्र संसार की ही नहीं अपने जीवन को भी मेन्टेन करने की कोशिश करो। आधुनिकता की होड़ में हिंसा का मार्ग अपनाना उचित नहीं।

यदि हिंसा की संस्कृति को आप आधुनिकता कहते हैं तो यह समझ लें कि यह आधुनिक दृष्टि नहीं आधुनिकता का ढोंग है, जो सभा सोसाइटियों में एक फैशन सा हो गया है।

आधुनिकता, काल की अवधि में नहीं वरन काल की चेतना में है। इस आधुनिक वाद को आज का युवक मॉड कहता हैं, हिप्पी यही मॉड है। जिनका ध्येय केवल नशा है। नवयुवकों को इन सभा सोसाइटियों से बचना चाहिए। हिंसा की संस्कृति मॉड है आधुनिक नहीं।

रात्रि भोजन के त्याग के प्रति इतना बड़ा वैज्ञानिक कारण होने के बाद भी यदि आप संकोच करते हैं कि लोग क्या कहेंगे ? इसका अर्थ तो यही है कि अभी आपके अन्दर जैनत्व के प्रति सही निष्ठा नहीं है। जीवों के प्रति दया की सच्ची भावना जाग्रत नहीं हुई है। मैं तो चाहता हूं कि यदि आपको किसी अजैन मित्र के यहां ऐसे समारोहों में सम्मिलित भी होना पड़ता है जहां रात्रि भोजन लेना हो तो आप जाईए अवश्य, पर वहां ग्रहण कुछ भी न करें। जब आपके पास निमंत्रण पत्र आये तभी आप अपनी स्थिति स्पष्ट कर दें। उनसे आप कहें यदि आप मुझे कुछ खिलाना चाहते हैं तो मुझे उस समय बुलाओ जब मैं खाता हूँ। मैं रात में भोजन नहीं कर सकता। यदि उन्हें आपको खिलानां ही होगा तो आपके लिए दिन में व्यवस्था करेंगे। ऐसा करने से उनके प्रति आपकी गहरी छाप पड़ेगी। इसमे जरा

भी संकोच नहीं करना चाहिए। मैं तो कहता हूं कि इस विषय में गर्व से कहना चाहिए कि मैं जैन हूं मैं रात में नहीं खाता।

जयपुर में एक डॉक्टर हैं, काफी प्रतिष्ठा है उनकी। उन्होंने मुझे कहा कि महाराज मुझे बड़े-बड़े समारोहों में जाना पड़ता है मैं जाता हूं पर मैं पहले ही यह स्पष्ट कर देता हूँ कि मैं रात में कुछ नहीं लूंगा। उन्होंने कहा कि जब मुझसे लोग कुछ ग्रहण करने का आग्रह करते हैं तो मैं जोर देकर कहता हूं कि "महोदय मैं जैन हूं मैं रात में नहीं खाता।" उन्होंने अपने जीवन का एक प्रसंग सुनाया आपके लिए वह बहुत प्रेरक है।

एक बार वे किसी समारोह में गये थे। रात में खाने का प्रसंग आया तो उन्होंने अपनी आदत के मुताबिक कह दिया कि "मैं जैन हूं, मैं रात में नहीं खा सकता।" उस समारोह में एक सरदार जी भी उपस्थित थे। उन्होंने व्यंग करते हुए कहा "क्या जैन साहब आप कहां की बातें करते हो ? ठीक है बारहवीं शताब्दी में प्रकाश की उचित व्यवस्था नहीं थी अब तो बड़ी-बड़ी ट्यूब लाईट लगी है, अब रात में खाने में क्या दिक्कत।"

डॉक्टर साहब ने जो जवाब दिया वह सुनने लायक है। उन्होंने कहा "ठीक कहते हैं सरदार जी सोलहवीं शताब्दी में नहीं रहे होंगे सैलून, अब तो बड़े-बड़े सैलून खुल गये आप अपनी दाढ़ी क्यों नहीं कटवा लेते।" सरदार जी अपना सा मुंह लेकर रह गये।

जिसके अन्दर निष्ठा है उसे किसी भी प्रकार का संकोच नहीं होता। त्याग के क्षेत्र में कभी संकोच नहीं करना चाहिए। भारत देश में सदैव त्याग की पूजा हुई। त्यागी को सत्कार मिलता है। यदि निष्ठा पूर्वक त्याग करोगे तो सम्मान मिलेगा।

एक पुलिस प्रॉसीक्यूटर को मैं जानता हूं उनके रात्रि भोजन का त्याग है। वे कहते हैं महाराज मेरे त्याग का ऐसा प्रभाव है कि बड़ी-बड़ी मीटिंगों में भी हमारे सीनियर अधिकारी मुझसे कहते हैं कि "जैन साहब आपका समय हो गया है, आप भोजन कर लें।" त्याग में कभी आलोचना नहीं होती। आलोचना का शिकार तो व्यक्ति तब होता है जब उसके आचरण में दोहरापन होता है। कुछ लोग रात्रि

भोजन का तो त्याग कर देते हैं पर फलाहार के नाम पर कितनी प्लेटें साफ कर देते हैं उसका कोई हिसाब नहीं। वह फलाहार है या फूलाहार ? समझ में नहीं आता। ऐसे लोग अवश्य हीं आलोचना के शिकार होते हैं। लोग कहते हैं कि तुम ढोंग कर रहे हो। त्याग का ढोंग करने वाला सदैव आलोचना का शिकार बनता है। जो ढंग से त्याग करते हैं उनकी प्रशंसा होती है। अतः त्याग ढंग से करो ढोंग से नहीं। रात्रि भोजन छोड़ने के बाद उसके प्रति आसक्ति भी छूटनी चाहिए। कई अजैन बंधु भी हम लोगों के संपर्क में हैं जो रात्रि में पानी तक नहीं पीते। हम जब जबलपुर में थे। समवशरण महामण्डल विधान के दौरान इस विषय पर हमारा प्रवचन हुआ कार्यक्रम के समापन के दो दिन बाद मेरे पास एक डॉक्टर साहब आये। उनके साथ उनकी पत्नी भी थी। वे ब्राह्मण थे। उन्होंने श्रीफल अर्पित करके कहा महाराज भी हम लोगों ने अपने घर के छत से आपके प्रवचन सुने थे। तभी आपको परोक्ष रूप से प्रणाम कर रात्रि भोजन का त्याग कर दिया था। हमें आर्शीवाद प्रदान करें, आगे से हम दोनों शाम छः बजे के बाद जल भी ग्रहण नहीं करेंगे।"

उनकी बात सुनकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई, एक अजैन व्यक्ति भी रात्रि भोजन का त्याग कर सकता है। व्यक्ति चाहे तो क्या नहीं कर सकता।

जो लोग साधु संगति में रहते हैं, साधु सन्तों के संपर्क में रहते हैं उनसे मैं कहना चाहता हूं, रात्रि भोजन त्याग करना तुम्हारी नैतिक जिम्मेदारी है। साधु सन्तों के संपर्क में आने के बाद भी यदि छोटे-मोटे नियम नहीं निभा सके तो फिर अपने जीवन में क्या कर सकोगे ? जिससे हमारी पहिचान बनती है उसे तो हर परिस्थिति में स्वीकार करना चाहिए अपनी पहिचान मत मिटने दो। यदि एकाध मौका आता भी है तो हम लोगों को याद कर लो। जब हम लोग मात्र एक बार भोजन ग्रहण कर अपनी पूरी जिन्दगी बिता सकते हैं तो क्या तुम एकाध दिन एक बार खाकर अपना काम नहीं चला सकते ? रात्रि में तो फलाहार भी नहीं करना चाहिए। नियम तो यही है। यदि शाम को आपने भोजन ग्रहण कर लिया तो फलाहार की आवश्यकता ही क्या है ? ग्रहस्थ के लिए तो वैसे ही दो ही बार भोजन का विधान किया गया है। कहावत है "एक बार योगी दो बार भोगी और बारबार रोगी।" भोजन की अनियमिता स्वास्थ्य के लिए भी हानिकारक है।

मैं तो चाहता हूं कि यदि दो बार में तुम्हारा नहीं चलता तो न सही कम से कम रात का खाना तो छोड़ो।

रात्रि भोजन का त्याग हमारा कुलाचार है, कुलाचार का पालन हर परिस्थिति में करना चाहिए यदि हम ही अपने कुलाचार का पालन नहीं करेंगे तो कौन करेगा ? हमारी पहिचान तो इसी से बनती है। अपने पूर्वजों को याद करो, उन्होंने विषमतम परिस्थितियों में भी अपने जैनत्व को नहीं छोड़ा। जब हम इतिहास को पलट कर देखते हैं, तो समझ में आता है कि हमारे पूर्वज कितने महान थे। तमिलनाडु का इतिहास मैं पढ़ रहा था, उसमें एक प्रसंग को पढ़कर हमारा मन मर्माहत हो गया वहीं उन पूर्वजों के प्रति श्रद्धा से झुक गया कि कितना बड़ा त्याग और कितनी गहरी निष्ठा थी।

एक राजा था जो बड़ा दुराचारी था। कुल और कर्म दोनों से नीच था। उसने एक जैन कन्या से शादी करने की इच्छा की और जैनियों के पास अपना आदेश भिजवाया कि "मैं किसी जैन कन्या से शादी करना चाहता हूं।" पूरे के पूरे जैनियों में खलबली मच गई कि क्या किया जाए ? पर वो जैनी कायर नहीं थे। महावीर की संतान थे, वह डरे नहीं। उन्होंने राजा को खबर दे दी कि अमुक स्थान पर आ जाइये, आपको एक "बाला" मिल जायेगी। आप उससे विवाह कर लेना। राजा तो उतावला हो रहा था निश्चित तिथि को निर्धारित स्थान पर वह पहुंचा। वहां देखा तो बिलकुल सुनसान था। एक भी आदमी नहीं था। राजा तो मन में सोचकर गया था कि राजा की शादी है, बड़ा ठाठ बाट होगा। बड़े गाजे-बाजे होंगे। बहुत सज्जा-सजावट होगी, पर वहां कुछ भी नहीं, एक भी आदमी नहीं। राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ।

नगर की सीमा से बाहर एक कुटिया को निर्धारित किया गया था राजा कुटिया के पास पहुंचा, वहां कोई कन्या तो नहीं एक कुतिया मिली। राजा आग-बबूला हो गया। उसकी आँखे लाल हो गई। तभी उसने देखा कि कुतिया के गले में एक चिट लगी थी। उसमें लिखा था। "कोई भी जैन बाला आपसे शादी करने को तैयार नहीं है, इसलिए आप मुझमें ही संतुष्ट रहें।" अब तो राजा का क्रोध सातवे आसमान को छूने लगा। सोचो राजा के साथ यदि ऐसा व्यवहार हो

तो वह क्या कर सकता है और फिर जो विचारों से नीच हों। उसने जैन धर्म को राष्ट्र द्रोह घोषित कर दिया और फरमान जारी कर दिया कि आज के बाद कोई भी जैनी इस राज्य में नहीं रहेगा। रात्रि भोजन का त्याग, पानी छानना, देव दर्शन करने को राजकीय अपराध घोषित कर दिया। हजारों जैनों को एक रात में कत्ल करवा दिया। बहुत से जैनी अजैन बन गये, कुछ जैनी ऐसे थे जो छिप-छिप कर अपने जैनत्व को बचाये रखे। कुछ तमिलनाडु से कर्नाटक की ओर भाग आये। कुछ जैनी ऐसे थे जो दबाव में आकर अजैनी हो गये थे, पर उनका संस्कार नष्ट नहीं हुआ था। एक दिन एक जैन भाई तालाब से पानी छान रहा था, तभी राजा के सिपाहियों ने उन्हें देख लिया और बंदी बनाकर राजा के पास पेंश किया गया। संयोग कुछ ऐसा था कि उस दिन राजा को पुत्र उत्पन्न हुआ था पुत्रोत्पत्ति की खुशी में उस दिन क्षमादान दे दिया गया। लेकिन जैसे ही उन्हें क्षमादान दिया गया उनके अंदर का स्वाभिमान जाग गया। उनके मन में आया कि कब तक ऐसे छिपकर धर्म का पालन करूंगा ? धर्म छिपकर के पालन करने की चीज नहीं है, धर्म तो खुले आम जीने की चीज है। उनका मन अंदर से कचोटने लगा, उन्होंने कहा कि अब मुझे धर्म का फिर से प्रवर्तन करना चाहिए। इस तरह से छिप-छिप कर करने से तो धर्म का पूरी तरह नाश हो जायेगा। वह वहां से चलकर सीधे श्रवणबेलगोल पहुंचे।

वहां पर जैन मुनियों का हमेशा सद्भाव रहता था। वहां का राजा भी जैन था। वहां उन्हें संरक्षण मिला। वहां जाकर के उन्होंने गूढ़ अध्ययन किया, दीक्षा ली और दीक्षा लेने के बाद उनका नाम वीरसेन पड़ा। वह वहां से सीधे निकले, उन्होंने कहा कि मैं तमिलनाडु में जाकर जैन धर्म का प्रवर्तन करूंगा और उन्होंने नियम ले लिया कि प्रतिदिन सौ व्यक्तियों को जैन बनाने के बाद ही आहार ग्रहण करूंगा। तमिलनाडु में वह आये, जहां जाते सौ व्यक्तियों को जैन बनाते फिर वह आहार करते। ऐसा करने में उनको कई-कई दिन निराहार रहना पड़ता था लेकिन फिर भी वे अपने आप में दृढ़ थे। पूरे के पूरे तमिलनाडु में जाकर उन्होंने तहलका मचा दिया। सारे लोगों को जो अजैन हो गये थे उन्हें फिर से जैन बनाया। आज तमिलनाडु में लगभग २०० स्थानों में जैनी हैं, वे तमिल के जैनी कहलाते हैं, दो सौ स्थान मात्र रह गये। एक समय था जब तमिलनाडु में जैन धर्म राजधर्म था।

आज बहुत थोड़े बचे हुए हैं पर जितने भी बचे हैं वह आचार्य वीरसेन की देन है। उन्होंने इतना बड़ा त्याग किया और उस विषम परिस्थिति में भी अपने जैनत्व को सुरक्षित रखा। आज आप जाओगे तो तमिलनाडु में तमिल के अनेक जैन आपको मिलेंगे।

मैं आपसे कहना चाहता हूँ, उस विषम परिस्थिति में भी जब उन्होंने जैनत्व को सुरक्षित रखा। देव दर्शन, जल गालन, और रात्रि भोजन का त्याग रखा आज तुम्हारे साथ ऐसी कोई विषमता नहीं है। तुम्हें अपने जैनत्व को सुरक्षित रखना चाहिएँ। यह तुम्हारा परम कर्त्तव्य है, तभी अपने पूर्वजों के ऋण को चुका सकोगे। सभीजन अपने आचरण में पवित्रता लाने का प्रयास करें युक्ताहार विहार का अर्थ इतना ही है।

संगत कीजे साधु की

लुकमान हकीम एक सदाचारी भक्त हुए हैं, वे जब मरणासन्न थे तो उन्होंने अपने पुत्र को सब अच्छी शिक्षायें दीं। सब प्रकार की शिक्षा दे चुकने के बाद उनके पुत्र ने उनसे फिर निवेदन किया कि पिताजी और भी ऐसी कोई बात हो तो मुझे बताने की कृपा करें। लुकमान अंतिम श्वासें गिन रहे थे, उन्होंने इशारा किया और इशारे के आशय को समझकर बेटा धूपदान में से एक मुट्ठी चंदन का चूरा ले आया। उसके बाद लुकमान ने दूसरा इशारा किया, बेटा उसे समझते हुए, चूल्हे में से कोयला ले आया। लुकमान ने फिर इशारा किया और कहा दोनों को फेंक दो। दोनों को फेंक दिया गया। अब की बार लुकमान ने पूछा यह बताओ दोनों में क्या है ? बेटा कुछ समझा नहीं बोला दोनों हाथ खालीं है, तो लुकमान ने कहा नहीं दोनों हाथ खाली नहीं है, तुम अपने हाथ को गौर से देखो। उसने गौर से देखा तो उसे लगा कि जिस हाथ में चंदन का चूरा था वह अभी भी सुगंध बिखेर रहा है और जिस हाथ में कोयला रखा गया था उस हाथ में अभी भी कालिख नजर आ रही है। लुकमान ने रहस्य समझाते हुए कहा कि बेटा मेरी तुम्हारे लिए यही अंतिम शिक्षा है, दुनिया में दो प्रकार के लोग हैं, कुछ ऐसे हैं जो चंदन की तरह सुरभि फैलाते हैं, चंदन का चूर्ण अभी भी तुम्हारे हाथ में सुगंध दे रहा है, जबकि अब चंदन नहीं है। कोयले का टुकड़ा तुमने हाथ में रखा था, तब भी काला था और हाथ से फेंक देने के बाद भी हाथ काला है। उन्होंने बेटे से कहा ठीक इसी तरह दो प्रकार के लोग हैं, दुनिया में कुछ ऐसे हैं, जिनके

साथ जब तक रहो तब तक हमारा जीवन महकता है, और उनका साथ छूट जाने पर भी वह महक हमारे जीवन से जुड़ी रहती है। और कुछ लोग ऐसे होते हैं, जिनके साथ रहने में भी हमारा जीवन बिगड़ता है, और छूटने के बाद भी बिगड़ा रहता है।

हम जिस समाज में रहते हैं, उस समाज में अनेक प्रकार के लोगों से हमारा संपर्क रहता है। कुछ ऐसे हैं, जो चंदन की तरह सुरभि फैलाने वाले हैं, हमेशा सद्गुणों की महक बिखेरा करते हैं, तो कुछ ऐसे भी होते हैं जिनके जीवन में दुर्गुणों की कालिख के अतिरिक्त कुछ नहीं है। ये हमें विचारना है कि किसके संसर्ग व संपर्क में रहें। शास्त्रों में ऐसे लोगो की संगति करने की प्रेरणा दी गई है, जिनके संसर्ग में रहने से हमारे विचारों में पवित्रता आये, हमें कुछ अनुभव मिलें, हमारे जीवन में विशिष्टता और विलक्षणता प्रकट हो। हम अपने लक्ष्य के प्रति दृढ़ता ला सकें, हमारे जीवन में सुसंस्कार प्रकट हो सकें। नीति ग्रंथों में कहा गया है-

हीयते ही मतिस्तात हीनै सह समागमात्।
समैश्च समतामेति विशिष्टैश्च विशिष्टताम्।।

मनुष्य की मति अपने से हीन व्यक्तियों के संसर्ग से हीन हो जाती है, समान लोगों के संसर्ग में रहने पर समानता रहती है, पर अपने से विशिष्ट गुणवान व्यक्ति के संसर्ग में रहने से हमारी गुणवत्ता बढ़ती है, हमारे जीवन में विशिष्टता आती है। अपने जीवन की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए हमेशा विशिष्टतर व्यक्ति से जुड़ने का प्रयत्न करना चाहिए। जो व्यक्ति अपने से नीचे वाले के साथ जुड़ता है, जो व्यक्ति अपने से हीन व्यक्ति के साथ जुड़ता है, उसके जीवन में हीनता प्रारंभ हो जाती है क्योंकि हीन व्यक्ति का संसर्ग व्यक्ति को मतिहीन बना देता है और मति हीन होने के बाद हमारा जीवन ही हीन हो जाता है। जैसी मति होती है, वैसी गति होती है। हमारी मति हमारी संगति से जुड़ी होती है, इसलिए कहते हैं, "सुमति जहाँ तहाँ संपत्ति नाना कुमति तहाँ विपति निदाना" जहाँ सुमति है वहाँ संपत्ति है और जहाँ कुमति है वहाँ विपत्ति है। संपत्ति है क्या, मति ठीक रहना ही संपत्ति है। अपनी बुद्धि और विवेक को जाग्रत रखना ही हमारे जीवन की सबसे बड़ी संपदा है।

इसलिए कहते हैं कि कभी हीन व्यक्तियों की संगति मत करो क्योंकि हीन व्यक्ति की संगति से हम अपने आप को नीचे ही गिरायेंगे। हमारा जीवन पतित ही होगा। ***"समैश्च समतामेति"*** समान व्यक्ति के विचारों में समानता बनी रहती है। हम ऊपर न चढ़ पायें तो न सही, कम से कम गिरें तो नहीं। लेकिन जब विशेष ज्ञानी जनों, विशेष गुणवान, विशेष संयमी व्यक्तियों का हम सानिध्य पाते है तो हमारे जीवन में संयम के पुष्प खिलने लगते हैं। हमारे जीवन में सद्गुणों का विकास होना प्रारंभ हो जाता है। इसलिए कहते हैं, कि विशिष्ट पुरूषों की संगति हमारी मति में वैशिष्ट्य उत्पन्न कर देती है। हमारा जीवन अनेक विशेषताओं से जुड़ जाता है। अपने जीवन में वैशिष्ट्य लाना है, तो हमें ऐसे ही पुरुषों के चयन की आवश्यकता है। हम, जैसे लोगों के बीच रहते हैं, हमारा जीवन वैसा बन जाता है। जीवन को जल की तरह कहा गया है जल का अपना कोई रंग नहीं होता, उसमें जो रंग मिला दो उसका रंग वैसा ही बन जाता है। एक ही जल जब केले पर गिरता है, वह कपूर बन जाता है, वही जल की बूंद अगर सांप के मुंह में जाती है तो जहर बन जाती है, किसी फूल पर गिरता है तो पूरे वातावरण में महक घोल देता है और वही जल की बूंद जब गर्म तवे पर गिरती है तो वहीं के वहीं नष्ट हो जाती है जल की बूंद ने अलग-अलग संसर्ग पाया तो उसका अलग-अलग परिणाम निकला।

कुरल काव्य में लिखा हैं कि "जैसे पानी का गुण बदल जाता है, वह जैसी जमीन पर बहता है, उसमें वैसे ही गुण आ जाते हैं, उसी प्रकार मनुष्य जैसी संगति में रहता है, उसमें वैसे ही गुण आ जाते हैं।" नदी में बहने वाला पानी शुद्ध माना जाता है और नाली में बहने वाला पानी, बहुत अपवित्र रहता है लेकिन नाली में बहने वाला पानी भी जब गंगा में मिल जाता है। तो गंगा जल बन जाता है। यह संगति का असर है। नीतिकारों ने लिखा है कि एक चीटीं जब फूल से जुड़ जाती है तो देवता के चरणों में फूल के साथ वह भी समर्पित हो जाती है उस चींटी को देवता के सिर पर बैठने का सौभाग्य मिल जाता है। इसी प्रकार व्यक्ति यदि भले जनों की संगति में रहता है, तो अपने जीवन का विकास कर लेता है, कहावत है ***"तुख्में तासीर सुहवते असर।"*** भूमि जितनी उत्तम होती है, उसमें बोया गया बीज उतना ही उन्नत बनता है। इसी प्रकार मनुष्य जितने उत्तम लोगों की संगत

में होता है, उतना ही विकास होता है। उसका उतना ही अधिक पल्लवन होता है। वह अपने जीवन को उतनी ही अधिक गति दे सकता है। कहते हैं, ***"जैसी संगत वैसी रंगत"*** भले लोगों के बीच में रहने वाले व्यक्ति के जीवन में अच्छाई का विकास होता है। एक आदमी साधुजनों के पास आता जाता है, एक आदमी सज्जन पुरुषों के समीप रहता है, तो उसके जीवन में सज्जनता विकसित होती है और दूसरा व्यसनी और व्यभिचारी के साथ रहता है तो उसके अंदर व्यसन और व्यभिचार के प्रति आकर्षण उत्पन्नं हुए बिना नहीं रहता। व्यसन और व्यभिचार से अपने आप को बचाने की कोशिश करो।

सज्जनों के पास जाओगे, सज्जनों का सामीप्य पाओगे तो जीवन का विकास हो जायेगा। थोड़ा सानिध्य पा लेने के बाद व्यक्ति का जीवन कितना महान हो जाता है। हम सड़क पर चलते हैं पत्थर हमारे पैरों से ठोकर खाते रहते हैं। जिन पत्थरों को हम सड़क चलते रोज ठोकर मारते हैं, वही पत्थर जब किसी शिल्पी के हाथ में आ जाता है, तो उसे भगवान का आकार मिल जाता है। और उसी पत्थर को कोई दूसरा आदमी उठाये तो लुढ़िया बना कर चटनी बाँटने के काम में ले लेता है। किसी राजमिस्त्री के हाथ में आ जाए तो उस पत्थर को दीवाल में चुन दे। पत्थर एक है, पर अलग-अलग लोगों के संसर्ग में आने के कारण उसका रूप अलग-अलग हो गया है। इसलिए हमारे आचार्यों ने कहा कि ***"संसर्गजा दोष गुणा भवति"*** मनुष्य के जीवन में जो दोष और गुण होते हैं वह संसर्गजन्य होते है। मनुष्य जैसे लोगों के बीच रहता है, जिन लोगों के बीच उठता बैठता है, उसका आचार-विचार वैसा ही बन जाता हैं।

एक बार एक राजा जंगल की ओर जा रहा था। रास्ते में डाकुओं का इलाका पड़ता था। राजा अपने काफिले के साथ जैसे ही उधर से गुजरा तो उसे एक तोते की आवाज सुनाई पड़ी। ***'वध्यताम् लूट्यताम्'*** मारो-मारो, रोको-रोको, पकड़ो-पकड़ो। राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ कि कैसा तोता है। ऐसा लगता है कि डाकुओं को सूचना दे रहा है। राजा को बड़ा क्रोध आया पर राजा आगे बढ़ गया। कुछ दूर चलकर वह ऋषियों के एक आश्रम में पहुंचा जैसे ही आश्रम में पहुंचा। वहां द्वार पर एक तोता था, उस तोते ने बड़े मधुर स्वर में कहा ***"स्वागतम, सुस्वागतम् पधार्यताम्,"*** अतिथि देव भव। राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। तोते की

आवाज सुनकर ऋषिगण बाहर आ गये, ऋषियों ने राजा का सत्कार किया, अपने आश्रम में ऊगे फल फूल से राजा को संतुष्ट किया। राजा से रहा नहीं गया उसने ऋषियों से पूछा कि ऋषिवर यह क्या देखा। एक ही कुल में ये दो तोते जन्में, दोनों का कुल एक, दोनों का वंश एक दोनों की जाति एक, पर मैं अभी क्या देख कर आ रहा हूँ कि रास्ते में मुझे जो तोता मिला वह मेरे लिए गालियां दे रहा था, मारने और पकड़ने की बात कर रहा था और यह तोता है जो मेरे स्वागत में अपना प्रेम बरसा रहा है। ऋषियों ने कहा राजन बात कुछ नहीं इनमें दोष तोतों का नहीं उन्हें पालने वालों का है। राजा को बात समझ में नहीं आई। ऋषियों ने कहा बात यह है कि दोनों एक ही मां की संतान हैं, पर एक डाकुओं के पास चला गया, एक ऋषियों के पास चला गया ***"ससंर्गजा दोष गुणा भवंति"***। जैसे लोगों के संसर्ग में रहते हैं वैसे ही गुण और दोष बन जाते हैं। मनोविज्ञान के अनुसार, मनुष्य की जो आदतें हैं, जो प्रवृतियाँ हैं उसका ६०% उसकी संगति से जुड़ा हुआ होता है। अगर मनुष्य अपनी संगति बदल दे तो अपने स्वभाव में ६०% बदलाव ला सकता है।

वातावरण का प्रभाव केवल मनुष्यों पर ही नहीं बल्कि वनस्पति और प्राणियों पर भी पड़ता है। ऐंसे बहुत सारे रिसर्च हुए कि जैसा वातावरण होता है जैसी भावना होती है, उसका प्रभाव सामने वाले पर पड़े बिना नहीं रहता। पशु भी वातावरण से सीख सकता है, जैसे तोते ने सीखा। पशु भी आपकी भाषा को समझता है। पशु-पक्षी और वनस्पतियों पर भी आपकी भाषा का पूरा-पूरा असर पड़ सकता है। एक प्रयोग किया गया है फूलों पर और देखा गया, फूलों के बीच जब माली जाता था तो फूल और अधिक खिल जाते थे। एक वैज्ञानिक वर्षों प्रयोग करता रहा और पोलीग्राफ पर उसका संवेदन मापता रहा। एक दिन जब वह माली के साथ गया और उसने देखा माली को देखते ही फूल खिल उठे पालीग्राफ पर सब कुछ अंकित हो रहा है। तभी उसके मन में आया फूल बड़ा सुंदर है उसे तोड़ लूं, जैसे ही तोड़ने का विकल्प किया उसमें स्पदंन बहुत तेज हो गया, "निगेटिव" सूचना आने लगी। यह हमारे विचारों का प्रभाव है। एक व्यक्ति क्रोधी के पास जाता है, तो क्रोध प्रकट होता है। यदि शांत व्यक्ति के पास जाता है, तो उसका आभामंडल सामने वाले व्यक्ति को शांत कर देता है। यही कारण है कि संत के

पास आने के बाद व्यक्ति के अंदर सदाचार और नैतिकता आने लगती है। और किसी व्यभिचारी दुर्गुणी के पास जाने के बाद व्यक्ति के मन में वैसी ही दुर्भावनाऐं आने लगतीं है। इसलिए संत कहते हैं, बुरी संगत से बचो। हो सकता है तुम्हारे अदंर बुराई न हो लेकिन वैसे लोगों के बीच रहना भी बहुत बड़ी बुराई है। एक आदमी शराब नहीं पीता, पर शराब की दुकान पर बैठेगा तो दुनिया उसे शराबी कहने से थोड़े चूकेगी। शराब की दुकान पर बैठना इसका प्रतीक है। कि शराब के प्रति तुम्हारा कुछ न कुछ आकर्षण है। बद की सोहबत में मत. रहो

वद की सोहबत में मत बैठो, बद का है अंजाम बुरा।
बद न बनो पर बद कहलाओ, बद अच्छा बदनाम बुरा।।

अपने यहां कहावत है बद अच्छा बदनाम बुरा। हम बद् और बदनाम दोनों से बचें। बद के साथ यदि हम रहेगें तो अपने आप को बदनामी से कभी बचा नहीं सकते। इसलिए बदनामी से बचना चाहते हो तो बद से बचो और अपने जीवन के विकास का मार्ग चुनो। भले व्यक्तियों के साथ रहों। कबीर दास ने बड़ी अच्छी बात कही है, कि

कबिरा संगत साधु की ज्यों गंधी को वास।
जो कुछ गंधी दे नहीं तो भी वास सुवास।।

कबीर कहते हैं संगत करो तो साधु की संगत करो। कैसी संगत जैसी गंधी वास। अगर इत्र की दुकान पर आप जायेंगे भले ही कुछ न खरीदो पर जितनी देर बैठोगे उतनी देर तो सुगन्ध का आनंद ले सकोगे। बस इसी प्रकार यदि संगति करनी है तो सज्जनों की संगति करो,साधु पुरुषों की संगति करो। कुछ लो नहीं, कुछ दो नहीं, कोई बात नहीं। साधु संगति में आने के बाद कोई ज्यादा परिवर्तन नहीं ला सकते, कोई बात नहीं, पर जितनी देर रहोगे, उतनी देर तो परिवर्तित रहोगे।

कुरल काव्य में लिखा है कि "हम समझते हैं कि मनुष्य का स्वभाव उसके मन में रहता है, किन्तु वास्तव में उसका निवास स्थान उस गोष्ठी में है जिन्की वह संगति करता है।"

यदि हम अपने मन में पवित्रता लाना चाहते हैं, अपने कर्म में पवित्रता

लाना चाहते हैं तो पवित्र गोष्ठी करें, पवित्रात्माओं की संगति में रहें। संगति की पवित्रता हमारे मन और कर्म का आधार है। अपने मन और कर्म में पवित्रता लाना चाहते हो तो अपनी गोष्ठी को बदलो, दुष्टजनों से दूर रहो, दुर्जनों से दूर रहो। जो व्यक्ति साधु पुरुषों की संगति में रहते हैं वह तुच्छ रहने के बाद भी महान बन जाते हैं। हमने पुराणों के आख्यान पढ़े बाल्मीकि जैसा दुर्दान्त व्यक्ति भी संत सानिध्य में आने के बाद, बड़ा संत बन गया। बुद्ध के सानिध्य में आने के बाद अंगुलीमाल का भी हृदय बदल गया, अंजन निरंजन हो गया। ये सब कुछ संत सानिध्य की महिमा है। कहा जाता है- *"गगन चढ़ै रज पवन प्रसंगा"*। धूल जिसको रोज अपने पैरों से रौंदते हैं, वही धूल जब हवा का आश्रय पा लेती है, तो आकाश में छा जाती है। कभी-कभी धूल इतनी सघन छा जाती है। कि सूरज का प्रकाश भी मंद हो जाता है। जिस धूल को आप पैरों से रौंदते हैं वही धूल जब संत के चरणों से लग जाती है तो वह हमारे मस्तक तक पहुंच जाती है। जिसका कोई मूल्य नहीं वह माथे तक पहुंच जाती है, यह संगति का असर है।

बिना सत्संग के हम अपने जीवन का विकास नहीं कर सकते। चाहे नैतिक दृष्टि से विचारें या सामाजिक दृष्टि से विचारें या मानसिक शुद्धि की दृष्टि से विचारें, हम संगति करें तो अच्छों की करें। और यही प्रेरणा देते हुए आचार्यों ने कहा है कि-

कुलीनै सह संपर्कः पण्डितैश्च मित्रताम्।
ज्ञातिभिश्च समं मेलं कुर्वाणो नावसीदति।।

जो कुलीन व्यक्तियों से संपर्क रखता है और सजातीय लोगों के साथ मेल-मिलाप रखता है, ज्ञानी जनों से जो मित्रता रखता है, उसे दुनिया में कभी दुखी नहीं होना पड़ता है। क्योंकि कुलीन व्यक्ति सदैव कुल की मर्यादा का ध्यान रखते हैं। कुलीन के साथ में रहने से कुलाचार के प्रति दृष्टि होती है। ज्ञानीजनों से मित्रता रखने से ज्ञान का विकास होता है, और सजातीय लोगो से संबंध बनाने से हमारी मर्यादायें कायम रहती हैं अतः इनकी संगत करने से हर व्यक्ति अपना नैतिक विकास कर सकता है। आप अपने वेटे को म्युनिसपैल्टी के स्कूल में भेजने की जगह दो सौ रुपये मासिक फीस लगनी है वहां भेजना पंसद करते हैं, जबकि पढ़ाई

एक है, किताबें वही हैं फिर ऐसा क्यों करते हैं ? इसलिए कि वहां का वातावरण ठीक नहीं है। जैसे पढ़ने-लिखने में वातावरण महत्त्वपूर्ण है। ऐसा ही हर क्षेत्र में वातावरण विशेष अर्थ रखता है। जीवन को दिशा देने में वातावरण एक महत्त्वपूर्ण घटक है। इसलिए अपने वातावरण को बदलना चाहिए। आत्मोन्नति की जहाँ तक बात है, आत्मा के विकास की बात है, वहाँ तो साधु संगति अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, एक क्षण की साधु संगति पूरे जीवन में परिवर्तन ला सकती है।

आचार्य शांतिसागर जी के जीवन का एक प्रसंग ध्यान में आ रहा है, उनके साथ उनके एक शिष्य थे पायसागर। आचार्य पायसागर बड़े तपस्वी व प्रभावी साधु हुए। वह कहा करते थे- मैं तो पापसागर था शांतिसागर जी ने मुझे पायसागर बना दिया। उनके बारे में कहा गया है कि वह सारे व्यसनों में पारंगत थे, एक दिन अचानक शांतिसागर जी के पास पहुंच गये और अपना ज्ञान उन पर थोपने का प्रयास करने लगे। बातचीत के दौरान उन्होंने कहा महाराज आप मुनि किसलिए बने हो महाराज ने कहा मोक्ष मिलता है। आज तो मोक्ष का रास्ता बंद है चौथे काल में मिलता है। महाराज जब चौथे काल में मोक्ष मिलता है, तो आज मुनि बनने का क्या औचित्य? महाराज ने सोचा इसे शब्दों के ज्ञान की अपेक्षा अनुभव के ज्ञान से समझायें तो ठीक होगा। तब उन्होंने उससे कहा यह बताओ कि सामने जो पेड़ खड़ा है, वह कौन सा पेड़ है ? उसने कहा आम का। महाराज बोले जाओ उससे दो चार आम तोड़ के लाओ। उसने कहा महाराज भादों के महीने में आम कहाँ से मिलेंगे ? आम अभी नहीं मिल सकते तो आम का पेड़ क्यों कह रहे हो? महाराज इसलिए कि अभी नहीं लगा लेकिन आगे लगेगा। महाराज ने कहा "वही तो हम कहते हैं मोक्ष अभी नहीं मिलता तो आगे मिलेगा।" इसमें क्या बुराई है। बस इतना सुनना था कि उनका हृदय परिवर्तन हो गया। उनका अभिमान चूर-चूर हो गया। पूरा का पूरा जीवन बदल गया। वो ही आगे चलकर पायसागर बने। वो कहते थे पापसागर से पायसागर बन गया। ऐसे बहुत सारे लोग हैं। जो सही अर्थों में साधु संगति करते हैं, जो आत्मोन्नति के मार्ग को खोल लेते हैं। बहुत से लोग हम लोगों के भी संपर्क में आये हैं, जिनके जीवन के पिछले अध्याय को देखते हैं, तो व्यसनी और व्यभिचारी जैसा जीवन दिखता है और आज के रुप को देखते हैं, तो ऐसा लगता है कि इनसे श्रेष्ठ कोई श्रावक

नहीं हो सकता। ऐसे-ऐसे लोग हम लोगों के संपर्क में आये हैं जिनकी सुबह शराब पीने से होती थी और आज वही ऐंसे व्यक्ति बन गये है कि अष्टमी और चतुर्दशी को उपवास करते हैं। जब समय आता है तो पूरी तरह से परिवर्तन हो जाता है। हमारे कटनी चातुर्मास के दौरान एक सज्जन पर्यूषण पर्व में रोज प्रवचनों में आते। पर्यूषण के पश्चात् वहां पर एक परंपरा है, जो लोग उपवास करते हैं उनकी सामूहिक पारणा कराई जाती है। बड़ी अच्छी परंपरा है। उपवास करने वाले सभी श्रावक आशीर्वाद लेने आये उनमें एक गंभीर मुद्रा वाले व्यक्ति भी थे। हमने उनसे पूछा तो बोले महाराज आपके वचनामृत सुनकर मैंने भी दसों उपवास किये हैं। पारणा हुई तदुपरांत वह आये और एक दम फूट-फूट कर रोना शुरू कर दिया। मैने पूछा क्यों क्या बात है, बोले महाराज मेरा उद्धार कर दो। मैं बड़ा पापी, बड़ा दुराचारी रहा। जैन होने के उपरांत भी जैनत्व पर कलंक लगाता रहा। मैंने पूछा क्या बात है ? बोले महाराज कुछ नहीं पूछो। आप तो मुझे संबल प्रदान करो और आज मैं अपनी सारी बुराई आपके चरणों में छोड़कर जा रहा हूं। मैने उनका परिचय पूछा वह इंजीनियर थे। मैंने उनसे कहा यदि तुम्हारे अंदर इतना पश्चाताप और अपराध बोध है तो तुम्हारे जीवन का उद्धार अवश्य होगा। सब छोड़ दिया उन्होंने। कुछ दिन बाद दर्शन के लिए आए तो उनकी चर्या सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने बताया महाराज जी अब मैं प्रतिदिन स्वाध्याय करता हूँ मंदिर सुलभ होता है तो पूजन-दर्शन भी करता हूँ। दो समय भोजन करता हूँ मैंने स्वाध्याय में एक दिन पढ़ा कि रास्ते का चला भोजन नहीं करना चाहिए सो अब वह भी बंद कर दिया। अब तो बस कुछ नहीं चाहिए, आप मार्गदर्शन दो, मैं अपनी जिम्मेदारियों से निवृत्त होऊं और आप जैसे रूप में आ जाऊं। यह परिवर्तन एकाएक आता है।

यह है सत्संगति का असर। जब व्यक्ति अंदर से संगति करता है तो व्यक्ति के जीवन में बड़ा परिवर्तन आ जाता है। और व्यक्ति जब ऊपर-ऊपर से ही साधु संगति में रहता है तो उसमें कोई फर्क नहीं आता। चंदन के वन में चंदन के वृक्षों के साथ-साथ उसके आस पास के पेड़ भी महक जाते हैं। उनमें भी चंदन की महक भर जाती है। ये चंदन की संगति का असर हैं पर उसी चंदन पर लिपटने वाले सर्प। उन पर कोई फर्क नहीं पड़ता। चंदन से लिपटकर रहने वाले सांपों में कोई परिवर्तन नहीं आता, बल्कि वे तो चंदन के वृक्ष से लिपट कर भी

उस पर जहर ही उगलते हैं। हांलाकि उस वृक्ष को कोई फर्क नहीं पड़ता। बहुत से ऐसे लोग हैं जो दूर से भी सान्निध्य में आते हैं और अपने जीवन को बदल डालते हैं, और बहुत से ऐसे लोग हैं जो चंदन के पेड़ में सांप की तरह लिपटे रहते हैं। जहर उगलते हैं, कुछ ग्रहण नहीं करते हैं। साधु संगति का अर्थ तो जीवन का गुणात्मक परिवर्तन है। यदि साधु संगति में आये हो तो अपने गुणात्मक परिवर्तन पर ध्यान देना चाहिए, कोशिश करनी चाहिए कि मेरे जीवन में कोई बदलाव आ रहा है या नहीं, मेरे जीवन में कोई परिवर्तन आ रहा है या नहीं। यदि कोई परिवर्तन हमारे जीवन में आ रहा है तो समझना हम अपने जीवन के लिए कुछ विकास की ओर ले जा रहे हैं। हम सही अर्थ में साधु की संगति कर रहे हैं। यदि व्यक्ति सही अर्थों में संगति करता है तो उसके जीवन में बहुत बड़ा परिवर्तन आ जाता है और यदि वह अपने अभिमान में भरा रहता है तो भगवान के सामीप्य में आने के बाद भी परिवर्तित नहीं होता है।

भगवान महावीर के जीवन को हम पलटकर देखें। वह जीव जब मारीच की पर्याय में था तो भगवान आदिनाथ का उपदेश भी उसके लिए कार्यकारी नहीं हुआ क्योंकि वो अभिमान में अकड़ा हुआ था। और वही जीव जब शेर की पर्याय में आया तो मुनियों के दो वचनों ने उसकी आँखों में आंसू ला दिए। मुनियों के दो वचनों से उसका हृदय परिवर्तित हो गया, अपना शिकार छोड़ कर हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। इसका अर्थ क्या है? इसका अर्थ यह है कि व्यक्ति के अंदर जब श्रृद्धा प्रकट होती है तो साधु का थोड़े समय का सामीप्य भी जीवन में बहुत बड़ा परिवर्तन ला देता है। और जब तक व्यक्ति अभिमान से भरा होता है तो बड़ा से बड़ा सानिध्य भी उसे परिवर्तित नहीं कर सकता। हमेशा-हमेशा सत्संगति में रहने की कोशिश करो। संत समागम में रहने की कोशिश करो, आचार्य श्री ने मूकमाटी में लिखा है -

संत समागम की
यही तो सार्थकता है
संसार का अंत दिखने लगता है
समागम पाने वाला
भले ही साधु-संयत बने या न बने
संतोषी अवश्य बन जाता है।

संतों के पास आने के बाद संतोष का विकास होना चाहिए। यदि संतोष को हम विकसित करते हैं तो समझना संतों का ये सामीप्य मेरे जीवन का विकास का साधन बन रहा है और संतो के पास आने के बाद भी हम असंतोष में जीते हैं तो हम अपने जीवन को सही अर्थों में विकसित नहीं कर पा रहे हैं। थोड़ा-थोड़ा संत समागम भी हमारे जीवन के लिए बहुत बड़ा काम कर सकता है, ये समागम आन्तरिक होना चाहिए। कहा गया है

एक घड़ी आधी घड़ी आधी में पुनि आधि।
तुलसी संगत साधु की हने कोटी अपराध।।

तुम एक घड़ी भी साधु की संगति करो तो करो एक घड़ी नहीं कर पाओ तो कोई बात नहीं आधी कर पाओ, आधी ही सही। उतना भी नहीं करो तो आधी से आधी, आधी की आधी भी कर लो। करोड़ों अपराध एक क्षण की भी साधु संगति से दूर हो सकते हैं। पर वह संगति सांप की जैसी संगति होगी, तो कभी कल्याणकारी नहीं होगी वह वृक्षों जैसी संगति होगी तब तो हो सकती है। ऐसे तो लोग चौबीस घंटे साधु-सन्तों से जुड़े रहते हैं। पर आज ऐसे लोगों की भी कमी नहीं है जो चंदन में सांप की तरह लिपटते हैं। ऐसे लोगों का कभी उद्धार नहीं होगा, एक क्षण को आओ, पर अपने अंतर्मन से आओ। ये सोच कर आओ कि यहां मुझे अपने जीवन के रूपांतरण का विज्ञान सीखने का अवसर मिल रहा है, ये सोच करके आओ कि मुझे अपनी आत्मा की उन्नति का मार्ग दिखेगा तो तुम्हारे जीवन का विकास होगा। अपनी आत्मा की सही पहचान करनी है, अपनी आत्मा की सही परख करना चाहते हो तो साधु संतों के चरणों में आना जरूरी है। साधु संगति में रहने से हमारे जीवन में परिवर्तन आता है। उस परिवर्तन से हम वर्तमान के पाप से बच जाते हैं। वर्तमान के पाप से बचते हैं तो हमारा भविष्य उज्जवल होता है। और इसी तरह उत्पन्न विशुद्धि पुरातन पाप को भी नष्ट कर देती है। साधु संगति से हमारा भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों सुधर जाता है। अतः जितना बन सके साधु संगति में रहना चाहिए।

खोले आंख विवेक की

एक अंधा व्यक्ति एक ऐसे कक्ष में भटक गया, जिससे बाहर निकलने का सिर्फ एक ही द्वार था। वह बाहर निकलने को व्याकुल हो रहा था। पर अंधे को कुछ दिखाई कहाँ पड़ता है ? वह दीवार टटोल-टटोल कर द्वार तलाशता, लेकिन संयोग कुछ ऐसा रहता कि जब कभी दरवाजा सामने आता उसे खुजलाहट होती, और उसके सिर खुजलाते-खुजलाते दरवाजा निकल जाता। काफी समय बीत गया वह अभी तक, उसी अंध-कक्ष में ही चक्कर लगाता जा रहा है।

यही स्थिति आज के मानव की है। जिस संसार में हम रह रहे हैं वह एक ऐसे अंध-कक्ष की तरह है जिससे निकलने का सिर्फ एक ही द्वार है, वह है धर्म और इस धर्म के द्वार में केवल वही आ सकता है, जिसकी आंख खुली हो। अगर आँखें बंद हों तो उसकी स्थिति दीवार को टटोलने के अतिरिक्त कुछ नहीं होगी। जन्म-जन्म से हमारे साथ यही रहा, हम दीवारों को टटोलते रहे और द्वार को कोसते रहे। दीवार को टटोलने वाला द्वार को कितना भी कोसता रहे, वह बाहर नहीं आ सकता। सन्त कहते हैं बाहर निकलना है तो दीवार को टटोलने में अपना समय मत गंवाओ, द्वार को खोलने का प्रयास करो। द्वार खुल सकता है, यदि तुम्हारी आंख खुल जाये तो। द्वार दिख सकता है, यदि तुम्हें दृष्टि मिल जाए तो। हमारे साथ यही हुआ है। सन्त कहते हैं, द्वार तो बिल्कुल खुला है पर आंखे बंद हैं, जिसे तुम दीवार मान रहे हो वह भी तुम्हारे लिए द्वार बन सकता है, बशर्ते

कि तुम आंखें खोल लो और आंखें न हों तो अंधे के लिए तो द्वार भी दीवार की तरह होता है।

इसी की प्रेरणा देते हुए सन्त कहते हैं कि प्रज्ञा की आंख को खोलो। जिसके जीवन में प्रज्ञा का जागरण हो जाता है, उसके लिए सर्वत्र द्वार खुल जाता है, विवेक की ज्योति जिसके अंतस् में जगमगाने लगती हैं उसका अंधकार हमेशा-हमेशा के लिए तिरोहित हो जाता है। उस आँख को खोलने की जरूरत है। आँखें बंद हों तो सामने वाले के लिए कितना भी प्रकाश फैलाया जाए, उसे कुछ दिखाई नहीं दे सकता। सन्त कहते हैं कि अन्धे को प्रकाश की नहीं ज्योति का जरूरत है, आंख की जरूरत है। अन्धे को प्रकाश दिखाना व्यर्थ है। क्योंकि, उसके लिए प्रकाश का कोई औचित्य ही नहीं, प्रकाश का कोई अर्थ ही नहीं। उसे आंख दे दो प्रकाश तो वह खुद तलाश लेगा।

विवेक को जागृत करना, इसका अर्थ है.अपनी आँख को खोल लेना, विवेक का जागृत हो जाना इसका अर्थ है प्रज्ञा का जागरण हो जाना, विवेक का प्रकट हो जाना इसका अर्थ है होश आ जाना। विवेक हमारे जीवन का एक महत्वपूर्ण पक्ष है। व्यक्ति के जीवन में जब तक विवेक जागृत नहीं होता तब तक विकास के द्वार भी नहीं खुलते, अभी तक हमारी स्थिति अन्धे की तरह रही है। हम दीवारों को टटोलते रहे पर द्वार आज तक नहीं मिल पाया। दीवारों को टटोलते रहे पर द्वार से बाहर निकलने का मौका नहीं मिला मौका मिल सकता है, आँख खुले तो। पर हम करें क्या ज्ञान तो हमने बहुत कुछ पा लिया लेकिन उसके बाद भी हमारे अंदर प्रकाश प्रकट नहीं हो सका। ज्ञान पाना अलग है और विवेक आना अलग है। प्रायः हम सोचते हैं जो आदमी जितना पढ़ा-लिखा, होशियार है वो उतना ही वड़ा विवेकी है। यह हमारी भूल है, बुद्धि और विचार अलग अलग हैं, विवेक भी अलग है। सन्त कहते हैं कि विवेक के अभाव में तुम्हारी बुद्धि और विचार भी तुम्हारे लिए बोझ बन सकते हैं। बुद्धि तो ज्ञान का बोझ है। और विवेक का अर्थ बोध है। बोझ और बोध में बड़ा अंतर है बोध से जीवन में बड़ा हल्कापन महसूंस होता है और जब बुद्धि बोझ बन कर आती है तो अहंकार का बोझ उस पर हावी हो जाता है, तो वह अहंकार से दब जाता है, बुद्धि और विवेक में अंतर करके चलना चाहिए।

विवेक का अर्थ है होश का जीवन जीना और बुद्धि का अर्थ है विचार का जीवन जीना। विचार में तर्क वितर्क होते है। जब व्यक्ति विचार करता है तो तर्क वितर्क करता है। किसी भी पक्ष पर जब विचार करता है तो पक्ष विपक्ष दोनों चलते हैं और तर्कों को इकट्ठा करने के बाद जो पक्ष प्रभावी होता है वो उसे स्वीकार कर लेता है। लेकिन विवेक में पक्ष विपक्ष, तर्क वितर्क कुछ नहीं होता, विवेक में तर्क वितर्क करने की जरूरत नहीं होती, जीवन में सर्तकता आ जाती है। वो हमेशा सतर्क रहता है स्वयमेव मार्ग उसे मिल जाता है। क्या करना, क्या नहीं करना, इसके लिए उसे विचार नहीं करना पड़ता। एक अंन्धे आदमी को कोई रास्ता बताये पूछेगा द्वार कहां है ? द्वार बताने के बाद वह लाठी टेकता टेकता दीवार को टटोलेगा फिर द्वार से बाहर निकलेगा, पर आंख वाले व्यक्ति को बताने की भी जरूरत नहीं है कि द्वार कहाँ है ? उसने द्वार देख लिया तो फिर निकलने के लिए किसी से वो कभी पूछेगा नहीं, वह सहज ही निकल जायेगा। बस विवेक का अर्थ है एक आंख पैदा करना, एक ऐसी आंख जो हमें जंजाल से बाहर निकाल दे, जो हमें हमारे भीतरी तत्व से पहचान करा दे। बुद्धि भटका सकती है बुद्धि में विचार है विचार व्यक्ति को भटकाते हैं, और कभी-कभी विचार विकार का कारण भी बन जाता है। विचार में जागृति नहीं रहती कि ये अच्छी है या बुरी जब व्यक्ति विचार में उतरता है तो उसे जैसा जो चाहे वैसा मोड़ सकता है। लेकिन जब विवेक का अंकुश हो तो विचार हमेशा उसके काम में आने वाले होते हैं, पर विवेकहीन व्यक्ति के विचार कभी शुद्ध नहीं होते। इसलिए कहते हैं विवेक का अर्थ सिर्फ इतना है जो हमारे हित और अहित की पहचान करा दे, जो कर्तव्य और अकर्तव्य का बोध करा दे, जो अपने और पराये का ज्ञान करा दे, जो सार और असार की समझ पैदा कर दे और जो अच्छे और बुरे का भेद सिखला दे, उसे विवेक कहते है। ये विवेक अंदर से प्रकट होता है और जीवन के हर क्षेत्र में आवश्यक है।

दो शब्द हैं पहला मृर्खता दूसरी मूढ़ता। सामान्य रूप से हम मूर्खता और मूढ़ता को एक मानते है, पर दोनों में अंतर है। मूर्खता मूढ़ता दोनो एक नहीं हैं। मृर्खता तो आदमी पढ़ लिख कर दूर कर सकता है, पर मूढ़ता दूर नहीं की जा सकती। स्कूल कालेज में पढ़ लिया, तुम्हारे विद्या के जितने भी केन्द्र हैं। शिक्षण

संस्थान हैं तुम्हारी मूर्खता को दूर करने में सहायक बन सकते हैं, वहां जाकर के व्यक्ति मूर्ख से विद्वान बन सकता है पर समझदार बने ये कोई जरूरी नहीं। विद्वान होना अलग है समझदार होना अलग है। विद्वान भी नासमझ हो सकता है और समझदार व्यक्ति भी अनपढ़ हो सकता है। मूर्खता तो दूर की जा सकती है बाहर के साधनों से, पर मूढ़ता को दूर करने का एक ही साधन है वह है धर्म। धर्म के बल पर विवेक का जागरण होता है। जिसके अंदर ऐसे संस्कार जागृत हो जाते हैं। उसके जीवन में फिर कोई मूढ़ता नहीं होती। उसका जीवन हमेशा विवेकयुक्त होता है, उसका प्रत्येक आचरण विवेक पूर्ण होता है, उसका एक एक कदम होश के साथ बढ़ाया हुआ होता है। ऐसा विवेक जागृत करने का प्रयास करें। अभी तो जनम-जनम से मूढ़ता हमारे जीवन में हावी रही है। कभी कभी तो हमने मूर्खता को ही अपनी विद्वता का आधार मानकर अपने आप को विवेकी होने की मूढ़ता कर ली है। सन्त कहते हैं ऐसा नहीं, विवेक का अर्थ है सूझबूझ होना।

नैतिक दृष्टि से विवेक के बारे में जब हम विचार करते हैं तो भी हमें लगता है कि उसके बिना हमारा काम नहीं चलेगा, और विवेक के आध्यात्मिक अर्थ पर विचार करते हैं, तो वो हमें बहुत गहरे ले जाता है। पहले हम विवेक के नैतिक अर्थ पर विचार करें, विवेक का नैतिक अर्थ है सूझबूझ रखना दूरदर्शिता रखना और धैर्य रखना। जो विवेकी होगा वो सूझबूझ से जियेगा, जो विवेकी होगा वो बड़ा धीर होगा, जो विवेकी होगा वो बहुत दूरदर्शी होगा। कभी-कभी जब व्यक्ति की सूझबूझ में चूक हो जाती है तो व्यक्ति को बहुत ज्यादा पछताना पड़ता है। अगर व्यक्ति में सूझबूझ नहीं है, तो अपने आप को सफल नहीं कर सकता और जिस व्यक्ति में सूझबूझ है, वो व्यक्ति कभी कोई गलत कदम नहीं उठा सकता। एक सूझबूझ वाला व्यक्ति होगा, एक विवेकी व्यक्ति होगा, वह सड़क पर चलेगा तो जीवों को बचाते हुए चलेगा,वो अगर कोई कार्य करेगा तो अपने हितों के साथ दूसरों के हितों का ध्यान रखेगा, वह अपने हितों की पूर्ति में दूसरों के हितों में बाधक नहीं बनेगा। पर विचारवान आदमी होगा, तो वह दूसरों के हितों का ध्यान तो रखेगा पर पहले, अपने हितों का। एक विचारवान आदमी भी सड़क पर देखते हुए चल सकता है, और एक विवेकी आदमी भी सड़क पर देखते हुए

चल सकता है, दोनों में बड़ा फर्क होता है विवेकी भी देखकर चलता है और विचारवान भी देखकर चलेगा, पर विचारवान अपने आप को कांटों से बचाकर चलेगा और विवेकी जीवों को बचाकर चलेगा। कितना फर्क आ गया है। इसमें विचारक तो कांटों को देख कर चलेगा और उसे ऐसा लगे कि मार्ग निष्कंटक है, तो वह अपनी दृष्टि में परिवर्तन भी ला सकता है वह लाभ-हानि का आँकड़ा देखता है पर विवेकी जीवों को बचा कर चलेगा। यानि विवेक एक ऐसी जीवन पद्धति है जो आंतरिक अनुशासन से प्रकट होती है, और विचार व्यक्ति को बांधकर रखता है। विचार से विवेक की ओर कदम बढ़ाने की जरूरत है। हम किसी भी क्षेत्र में रहे, यदि सूझबूझ न हो तो व्यक्ति बहुत ज्यादा असफल होता है। आपको घर का अच्छे ढंग से संचालन करना है, तो सही सूझबूझ से चलाना पड़ेगा। अगर घर में एक व्यक्ति भी विवेकी है तो पूरा घर संभल जाता है, और अगर घर के लोग विवेकहीन हैं, तो सबकुछ होने के बाद भी एक घर के कई घर बन जाते हैं। विवेक से बिगड़ती हुई परिस्थिति को भी संभाला जा सकता है और विवेकहीन व्यक्ति बनी बनाई स्थिति को भी बिगाड़ सकते हैं। इसलिए कहते हैं व्यक्ति को विवेकी होना अत्यंत आवश्यक है। सूझबूझ जरूरी है दूरदर्शी होना जरूरी है और धैर्य होना जरूरी है।

दो कारणों से व्यक्ति विवेकहीन होता है, एक कारण है आसक्ति और दूसरा कारण है उतावली। आसक्ति और उतावली के कारण विवेकहीन हो जाता है, उसकी विवेक की आँख पर परदा आ जाता है। कई प्रकार की आसक्ति होती है, धन की आसक्ति है, भोजन की आसक्ति है, पद प्रतिष्ठा की आसक्ति है और विषयों की आसक्ति है। ये आसक्ति व्यक्ति की सोच को कुंठित कर देती है। आसक्ति व्यक्ति को कभी सही नहीं सोचने देती। सही दिशा में व्यक्ति की दृष्टि ही नहीं जाने देती। एक व्यक्ति जिस पर धनासक्ति हावी है, वह नीति न्याय की बात को गौण कर देगा उसका विवेक हमेशा-हमेशा के लिए कुंठित हो जाता है, फिर वह कुछ सोच ही नहीं सकता कि मैं जो रास्ता अपना रहा हूँ वो ठीक अपना रहा हूँ या नहीं। उसका तो सिर्फ एक ही सोच होता है जैसे तैसे कैसे भी हो बस पैसे हों। कोई मार्ग हो पैसे हों, भले उसके पीछे उस आदमी को कितना भी कष्ट क्यों न भोगना पड़े भले ही उसके पीछे उस आदमी को कितनी ही अधिक तकलीफ

क्यों न उठानी पड़े, भले ही उसके पीछे व्यक्ति कितना ही बदनाम क्यों न हो जाए। आसक्ति होती है तो विवेक खत्म हो जाता है। धन की आसक्ति के कारण जाने कितने परिणाम होते हैं। आप लोग आए दिन सुनते हैं। भोजन की आसक्ति अगर हो तो फिर वह पेट नहीं देखेगा, वह तो भोजन का लंपट हो जायगा, ऐसे लोग भोजन-भट्ट होते है, पेट को नहीं देखते थाली को देख देख कर साफ करते हैं और अगर उसमें विवेक नहीं रखें, भोजनासक्ति हो तो आदमी अस्वस्थ होगा, स्वास्थ्य बिगड़ेगा।

मैंने सुना एक आदमी एक जगह मेहमान हुआ, वहाँ बहुत ज्यादा पेड़े थे खोवे के। उसने खूब जी भर के पेड़े खाये ठूंस-ठूंस कर पेड़ा खाया, और पेड़े से पेट खूब भर गया पानी वगैरह ठीक ढ़ंग से पिया नहीं उसे गैस्ट्रिक ट्रबल होने लगी। डाक्टर के पास गया, डाक्टर ने उसे देखा, देखने के बाद कहा भैया तुम्हें बड़ी Problem है, तुम एक काम करो, ये टेबलेट खा लो, तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक हो जाएगा। उसने कहा डाक्टर साहब टेबलेट के लिए जगह होती तो एकाध पेड़ा और नहीं खा लेता। ये लंपटता है आसक्ति का परिणाम है। आसक्ति व्यक्ति को भोजन में भी विवेक नहीं रहने देती। पद-प्रतिष्ठा के प्रति किसी की आसक्ति है तो वो येन-केन प्रकारेण वहां पहुंचने का प्रयत्न करता है और विषयासक्ति मनुष्य को बहुत अधिक गिरा देती है। विषयासक्ति में व्यक्ति अंधा बन जाता है। आँख से अँधे व्यक्ति को तो सिर्फ दिखाई नहीं पड़ता है मगर विषयांध व्यक्ति को तो न दिखाई पड़ता है न सुनाई पड़ता है। अगर किसी का चित्त किसी पर आसक्त है, तो उस पर सारे उपदेश भी कोई काम नहीं करते, फिर वह किसी की बात नहीं सुनता, एक ही बात उसके दिलोदिमाग में छाई रहती है, रात की नींद दिन का चैन सब खो जाता है। पुराणों में ऐसे कई आख्यान भरे पड़े हैं, जहां व्यक्ति इन आसक्तियों का शिकार हो करके अपने-अपने जीवन को बर्बाद किया है। रावण के मन में सीताजी के प्रति आसक्ति हुई रावण का सर्वनाश हुआ, जितने-जितने भी लोगों को किसी के प्रति आसक्ति हुई है उन सबका जीवन बर्बाद हुआ है। आसक्ति का यही परिणाम है आसक्ति हमारे विवेक को नष्ट करती है। गीता में बड़ी अच्छी बात कही है। हमारे आचार्यों ने भी कहा और वही बात सभी अध्यात्म ग्रन्थों में है-

"ध्यायेंतो विषयान् पुंसः संगस्तेषूपजायते
संगात् संजायूते कामः कामात् क्रोधोपजायते
क्रोधात् भवति संमोहों संमोहात् स्मृति विभ्रमः।
स्मृति भ्रंशात् बुद्धि नाशो बुद्धि नाशात् विनश्यति।।

व्यक्ति के मन में किसी विषय के प्रति जब आर्कषण होता है, तो उसके प्रति आसक्ति होती है, आसक्ति होने पर कामना पैदा होती है और कामना से क्रोध उत्पन्न होता है क्रोध होने के बाद उसके प्रति सम्मोहन होता है और सम्मोहन होने के उपरांत उसकी स्मृति का नाश होने लगता है। और जब स्मृति ही नष्ट होने लगती है तो बुद्धि भी नष्ट हो जाती है और व्यक्ति की बुद्धि या विवेक के नष्ट हो जाने पर व्यक्ति ही विनष्ट हो जाता है। इसलिए आसक्ति से बचने की प्रेरणा दी गई है।

आसक्ति मनुष्य को विवेकशून्य बना बन्धन में डाल देती है, जो व्यक्ति जिस पर आसक्त होता है उसके आकर्षण में उलझकर रह जाता है। कहते हैं बन्दर को चना बहुत प्रिय होता है, बन्दर पकड़ने वाले उसे पकड़ने के लिए सॅंकरे मुँह के बर्तन में चने रख देते हैं। चना के लोभ में बन्दर जब उसमें हाथ डालता है उसकी मुट्ठी भर जाती है, हाथ बड़ा हो जाता है, वह उसे बाहर नहीं निकाल पाता है। बन्दर यह सोचता है, कि इस बर्तन ने मुझे पकड़ लिया है। यही उसके बन्धन का कारण बन जाता है। बन्दर को इतनी समझ नहीं रहती कि यहाँ पकड़ने वाला और कोई नहीं, हमारी आसक्ति ही हमारे बन्धन का कारण है, यदि मैं मुट्ठी ढीली कर दूं तो हाथ अभी बाहर निकल सकता है। पर आसक्ति इतना विवेक कहां रहने देती है। इसलिए विवेकहीनता का पहला कारण है आसक्ति। दूसरा कारण है उतावली। उतावली में व्यक्ति धैर्य खो देता है।

जो व्यक्ति उतावला होता है वह कभी अच्छे बुरे का निर्णय नहीं कर सकता। कभी कभी तो उतावली, आवेग, और आवेश में व्यक्ति ऐसा कार्य कर लेता है जिसके पीछे उसे जीवन भर पछताना पड़ता है। व्यक्ति को अपने आवेग और आवेश पर नियंत्रण रखना चाहिए। आवेग और आवेश में बहने वाला व्यक्ति

अपने जीवन में कभी सफल नहीं हो सकता। आवेग की धारा उसे जिधर बहा कर ले जाये, वह उधर बह जाता है। कभी कभी वह बहुत गलत दिशा में भी प्रस्थित हो जाता है और जीवन भर उसे पछताना पड़ता है। घर घर में जितने झगड़े होते हैं, उसके पीछे ये उतावलापन, आवेग और आवेश है और विवेकहीनता का परिणाम हैं। विधायक चिन्तन से आवेश पर नियंत्रण लाया जा सकता है। आदमी ये सोचता है कि मैं जो कर रहा हूँ, वही सही है और यह सोचकर वह सामने वाले की बात टाल देता है। और अपनी ही बात को जब सही मान करके चलता है तो निर्णय में बहुत जल्दबाजी होती है और निर्णय की जहां जल्दबाजी होती है, वहां कई कई बार व्यक्ति से चूक हो जाती है। उस चूक से व्यक्ति को जीवन भर पछताना पड़ता है। उसके द्वारा निकले हुए एक एक शब्द के बहुत घातक परिणाम हो जाते हैं। कभी कभी ऐसी हरकत भी कर देता है कि अपने ही उपकारी का बहुत बड़ा अपकार कर देता है।

एक कहानी आप लोगों ने पढ़ी होगी, बड़ी प्रेरक कहानी है। एक घर में एक नेवला पलता था। घर में सभी लोग नेवले को बहुत अधिक प्यार किया करते थे, वह परिवार के सदस्य की तरह रहता था। घर में कोई ज्यादा लोग नहीं थे, मां थी उसका एक छोटा सा दूध पीता बेटा था और एक नेवला। एक दिन मां बेटे को सुला कर पानी भरने के लिए नदी के किनारे पहुंची और इधर न जाने कहां से घर में एक सांप आ गया और वह बेटे के बिस्तर की ओर बढ़ने लगा नेवले ने जैसे ही ये स्थिति देखी, वह एकदम छंलाग लगाकर सांप पर झपट पड़ा। उसने सांप की जीवन लीला समाप्त कर दी। बेटे की रक्षा हो गई। नहीं तो सांप तो बेटे को डंसने ही वाला था और इस खुशी में कि अब मां आयगी तो मुझे कुछ शावासी देगी, वह दरवाजे पर खड़ा होकर मां का इंतजार करने लगा। इधर मां पानी भर कर के आ रही थी, उसने नेवले का मुंह खून से सना हुआ देखा, तो उसने सोचा मेरे सूनेपन में इसने मेरे बेटे से जरूर छेड़छाड की है इसलिए इसके मुंह में खून है। और उसने अपना सारा विवेक खो दिया, क्रोध के साथ आवेश भी आया और उसकी मानसिक स्थिति आक्रोश में बदल गई फलतः जो घड़ा वह भर कर लाई थी, वही घड़ा उस पर पटक दिया, नेवला लहूलुहान हो गया। और फिर जल्दी

जल्दी में अपने बेटे को देखने के लिए गई कि बेटे की स्थिति क्या है तो बेटे को सुख से खेलते और वहीं पर मरे हुए सांप को देखा तो उसे सब कुछ समझ में आ गया, तब उसे अपने किए पर बहुत पश्चाताप हुआ, "लेकिन अब पछताये होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत," उतावली व्यक्ति को विवेक शून्य कर देती है। कई कई बार व्यक्ति अपने ही अविवेक के कारण स्वयं संकट से घिर जाता है, इसलिए विवेक पर हमें हमेशा ध्यान देना चाहिए, विवेक के जागरण की बात हमें सोचनी चाहिए। ये तो हुआ विवेक का नैतिक पक्ष। हम आसक्ति और उतावली पर थोड़ा सा नियंत्रण लायें तो हर दिशा में सफलता प्राप्त कर सकते हैं।

विवेक के अध्यात्मिक अर्थ पर जब हम विचार करते हैं तो वो विवेक तो बहुत आगे की चीज है। विवेक का अर्थ है विभाजन, अपने और पराए का विभाजन, सार और असार की पहचान; हित और अहित का बोध। जिसके अंदर विवेक प्रकट हो गया उसके अंदर भेद विज्ञान जागृत हो गया। जिसके अंदर भेद विज्ञान जागृत हो गया उसके जीवन की दशा और दिशा दोनों बदल गई। बहुत गहरा अर्थ है, सार और असार की पहचान करना। जीवन में सार क्या है, असार क्या है इसे जानना बहुत जरूरी है। आज व्यक्ति असार के आर्कषण में उलझ रहा है। और सार की उपेक्षा कर रहा है। सार वह है जो हमारा अपना है, जो हमारा निजी है, जो हमारे सुख का आधार है। असार वह है जो हमारे जीवन में विकार लाता है, अभी तक मनुष्य ने असार को संरक्षण दिया है। जन्म जन्म में हमने असार की उपासना की है। सार की उपेक्षा की है।

साधु ऐसा चाहिए जैसे सूप सुहाय।
सार सार को गहि रहे थोथा देय उड़ाय।।

ऐंसी बुद्धि जागृत होनी चाहिए जैसे कि सूप का स्वभाव होता है। सूप के माध्यम से जब कोई चीज फटकते हैं तो सार को तो अपने सूप में रखते हैं और असार को बाहर कर देते हैं। असार थोथा देय उड़ाए, बस विवेक को जागृत करने का अर्थ सिर्फ इतना ही है कि जो असार हैं उसे बाहर निकाल दो, और जो सार है उसका संग्रह कर लो। सार का संचय कर लो असार का विसर्जन कर दो। अभी

हमारा सारा जीवन असार विषयों में ही जा रहा है।

हम अपने जीवन के बारे में विचार करके देखें कि सुबह से शाम तक हम जिसके संग्रह में लगे हैं, वह हमारे जीवन के लिए कितना काम का है। उसमें कितना सार है, कितना असार है। तब आपको समझ में आयेगा कि मेरे जीवन का बहुभाग असार की सेवा में जाता है और बहुत थोड़े से क्षण होते हैं जब हम कुछ सार का काम करते हैं। फटक तो हम सब रहे हैं पर फिर भी भटक रहे हैं। अगर हम सही ढंग से फटकन की क्रिया करते, तो हमारे सूप में सार होता। और सार होता तो सार की पहचान संतुष्टि है। जीवन में संतुष्टि है तो समझना तुम्हारे जीवन के सूप में सार है, और असंतुष्टि है तो समझना असार है क्योंकि भूसे से पेट नहीं भरता पेट तो अनाज से भरता है। अनाज सूपे में होगा तो पेट जरूर भरेगा। अनाज से ही रोटी तैयार की जाती है, भूसे से रोटी तैयार नहीं की जाती। जिसे इसका विवेक नहीं है कि सार क्या असार क्या तो गेहूं के छोटे छोटे दानों को बाहर करके अपने सूपे में भूसे के बड़े बड़े कण भी भर सकता है। विवेकहीन व्यक्ति के साथ यह हो सकता है इसलिए आचार्य कहते हैं कि आंख खोल करके फटको, आंख खोलोगे तो तुम्हारी फटकने की क्रिया होगी। फिर तुम सार को अपने सूप में रखोगे असार को बाहर कर सकोगे। पर दो प्रकार के व्यक्ति होते हैं एक सूप जैसी प्रकृति के व्यक्ति, दूसरे चलनी जैसी प्रकृति के व्यक्ति होते हैं। सूप और चलनी की प्रकृति में बड़ा अंतर है। सूप में हमेशा असार को बाहर उड़ाया जाता है, सार का संग्रह किया जाता है, पर चलनी आटे को बाहार निकाल देती है भूस को संग्रहित करके रखती है। आज चलनी के प्रकृति के लोग ज्यादा हैं। सूप की प्रकृति के लोग कम हैं। सूप की प्रकृति में जीने का अर्थ है विवेक को प्रकट कर लेना, और चलनी की प्रकृति में जीने का अर्थ है मूढ़ता का जीवन जीना। नीर छीर विवेकनी दृष्टि होनी चाहिए। हंस को विवेक का प्रतीक माना जाता है, सिर्फ इसलिए कि हंस के पास अगर पानी मिलाकर दूध रखा जाए तो वह दूध - दूध को पी लेता है, पानी-पानी को छोड़ देता है। उसकी चोंच में एक ऐसा रासायनिक स्त्राव होता है कि दूध अलग हो जाता है पानी अलग हो जाता है।

संत कहते हैं कि शरीर और आत्मा का जो सबंध है वह भी दूध और पानी की तरह का संबध है।

तू चेतन यह देह अचेतन, यह जड़ तू ज्ञानी।
मिले अनादि यतन तें बिछुड़े ज्यों पय अरू पानी।।

तू चेतन है यह देह अचेतन है। यह शरीर जड़ है तू ज्ञानी है, दोनों का अनादि काल से मेल बना हुआ है। पर थोड़ा प्रयत्न करो विवेकपूर्ण पुरूषार्थ करो तो तुम इन दोनों को पृथक् भी कर सकते हो। ज्यों पय अरू पानी दूध और पानी को जिस तरह अलग–अलग किया जा सकता है ऐसे ही शरीर से भिन्न इस आत्मा के संबंध को भी अलग किया जा सकता है। जन्म-जन्म के इस बन्धन को भी दूर किया जा सकता है। पर उसी के द्वारा जो दोनों के भेद होने का विवेक रखे, जिसे ये पता लगे कि दोनों अलग अलग हैं। आज तो जितने लोग हैं वे शरीर के स्तर पर जीने वाले लोग हैं बहुत कम ऐसे लोग हैं जो शरीर से भिन्न आत्मा की प्रतीति करते हैं। बहुत थोड़े से ऐसे लोग हैं जिनको शरीर से भिन्न आत्मा की पृथक् सत्ता का अहसास है। अधिकतर लोग तो ऐसे हैं जो शरीर की उत्पत्ति को ही अपनी उत्पत्ति और शरीर के विनाश को ही अपना विनाश मानते हैं। अध्यात्म की दृष्टि से शरीर की उत्पत्ति को अपनी उत्पत्ति और शरीर के विनाश को अपना विनाश मानने वाले लोग विवेकहीन हैं। अभी उनकी प्रज्ञा की आंख नहीं खुली, प्रज्ञा की आंख बंद है। प्रज्ञा की आंख खुलते ही शरीर और आत्मा के भेद का भान हो जाता है। आत्मतत्व की सही पहचान हो जाती है। ऐंसे लोग हंस की तरह आचरण करते है। सन्त कहते हैं तुम्हें हंस की तरह आचरण करने की जरूरत है। हंस की शोभा तो मानसरोवर में डुबकी लगाने की है तुम कहां विषयों में लगे हुए हो। तुम्हारा जीवन कैसा बनता जा रहा है। हंस मोती चुगता है पर आज हंस अपने मानसरोवर को भूल गया है।

हंस मानसर भूला।
सनी पंक में चंचु हो गये
उजले पर मट मैले

कंकर चुगने लगा वही जो
मुक्ता चुगता पहले
क्षर में क्या ऐंसा सम्मोहन
जो तू अक्षर भूला ?
कमल नाल से बिछुर कांस के
सूखे तिनके जोरे
अवगुण्ठित कलियों के धोखे
कुण्ठित शूल बटोरे
पर में ऐंसा क्या आकर्षण
जो परमेश्वर भूला ?
नीर क्षीर की दिव्य दृष्टि में
अन्ध वासना जागी
गति का परम प्रतीक बन गया
जड़ता का अनुरागी
क्षण को अर्पित हुआ
साधना का मन्वन्तर भूला।

आज हंस अपने विवेक को भूल गया है, उसका ये परिणाम है कि मानसरोवर को भूलकर सूखे ताल तलैयों में आनंद मान रहा है। जिसे मान सरोवर के अगाध जल में तैरना चाहिए आज वो पंक भरे इस पोखर में अपनी चोंच को भी पंक लिप्त कर रहा है, जिसे अपनी आत्मा के आनंद में रहना चाहिए, आज पाप में लिप्त हो करके अपने जीवन के इन उजले परों को भी मटमैला कर रहा है। करे क्या क्षर का ऐसा आकर्षण, नश्वर का ऐसा आकर्षण है ऐसा सम्मोहन है कि वह सब कुछ भूल गया है। अपने अक्षर अविनश्वर रूप आत्मस्वरूप को भूल कर जो क्षर है जो नाशवान है उसके पीछे पागल हो रहा है। इससे बड़ी अज्ञानता की बात और क्या होगी। 'कमलनाल से विछुर कांस के सूखे तिनके जोरे' हंस हमेशा कमल नाल में आनंद लेता है अपनी चोंच में कमल की नाल जोड़ता है, पर आज तो कांस के सूखे तिनके जोड़ रहा है, कांस के हरे भरे नहीं। कमल नाल और कांस के तिनके में बड़ा अंतर है कमलनाल तो हमारे अध्यात्म

का प्रतीक है और कांस के जो सूखे तिनके हैं वो विषयों के प्रतीक हैं। जो अध्यात्म की उपेक्षा कर विषयों की ओर आकर्षित हो रहे हैं वे कमलनाल को छोड़कर कांस के सूखे तिनके जोड़ रहे हैं। कांस और कमल के अंतर को हमें समझना चाहिए। जो कमलनाल को अपने जीवन में अपनाते हैं, उनका जीवन ही कमल की तरह खिल सकता है पर करे क्या ? पर पदार्थ में ऐसा क्या आर्कषण जो परमेश्वर को भुलादे ? पर का आर्कषण जब तक होगा तब तक परमेश्वर का सही सम्मान नहीं होगा। पर के आकर्षण में व्यक्ति परमेश्वर को भी भूल जाता है। इसलिए सन्त कहते हैं पर के आकर्षण में मत भूलो। हंस की तरह तुम्हारा जीवन है तुम्हारे अंदर तो नीर-क्षीर की विवेकनी दृष्टि होनी चाहिए। जिसके अंदर ये भेद विज्ञान की दिव्य दृष्टि होनी चाहिए, आज वो वासना का दास बन रहा है। जिसे गति का प्रतीक कहा गया है, वह आज जड़ता का अनुरागी बना हुआ है। साधना के बल पर युगयुगान्तर के लिए, जो कई मन्वंतर तक मिलने वाले सुख की उपेक्षा कर आज क्षणिक भौतिक सुख के लिए अपने जीवन को अर्पित कर रहे हो। इससे बड़ी विवेकहीनता की बात और क्या होगी ? यह हमारे अविवेक का परिचय है। ऐसे ही अविवेक के कारण व्यक्ति जन्म जन्म तक दास बनता रहा है व्यक्ति अपनी ही विवेकहीनता के कारण संसार के बन्धन में बंधता है। विवेक को हम कैसे जागृत करें यह बड़ा अहम् प्रश्न है विवेक को जागृत करने का एक ही उपाय है वह है यथार्थ का चिन्तन। व्यक्ति अपने जीवन के यथार्थ पर विचार करें मैं कौन हूँ, मेरा क्या है ? जगत् और जीवन का संबंध क्या है? जीवन की नश्वरता और आत्मा की अमरता के बारे में जब व्यक्ति विचारना शुरू कर देता है तो उसकी आसक्ति समाप्त होती है। उसकी बुद्धि नियंत्रित होती है। उसका विवेक जाग्रत होता है। व्यक्ति को प्रतिदिन प्रतिपल ये विचार करना चाहिए। हमारे आचार्यों ने कहा है-

जगत् काय स्वभावौ वा संवेग वैराग्यार्थम्

संसार शरीर और भोगों के स्वरूप का जो चिन्तन करता है वो अपने संवेग और वैराग्य को जागृत करता है। ऐसे ही व्यक्ति का विवेक जाग्रत रहता है। ऐसे ही व्यक्ति अपने जीवन में विवेक को विकसित कर सकते हैं। हमारी मति इधर उधर क्यों भागती है हम अपनी मति को कैसे ठिकाने लगा सकते हैं इस बात की प्रेरणा देते हुए एक आचार्य ने कहा है

कोऽहम् कीदृक् गुणः क्वत्यः किं प्राप्यः किन्निमित्तकः।
इत्युहं प्रत्यहं नोच्चेदन्यस्थाने मति र्भवेत्।।

मैं कौन हूँ, मेरा गुणधर्म क्या है, मैं कहाँ से आया हूँ, मेरे आने का प्रयोजन क्या है, मैं यहां किस निमित्त से आया हूँ। इस प्रकार के प्रश्नों को जो प्रतिदिन अपने आप से नहीं पूछता है, उसकी ही मति इधर उधर भागती है। अपनी मति को ठीक रखना है, अपनी मति को सुमति बनाना है, अपने विवेक को जागृत रखना है तो प्रतिदिन जब सुबह उठो तो अपने आप से पूछो मैं कौन हूं ? मेरा गुणधर्म क्या है ? मै कहाँ से आया हूँ ? मेरा क्या प्रयोजन है ? मैं किस निमित्त से यहाँ आया हूँ ? मुझे क्या करना है? ये प्रश्न जब आप अपने आप से पूछोगे, तो स्वयं ही इसका समाधान भी मिलेगा। कौन हूं मैं, ये शरीर मैं हूं, ये नाम और रूप मैं ? ये मैं नहीं। मैं तो इन सबसे परे हूँ क्योंकि नाम तो आज का है और यह रूप भी अभी का है फिर कहां चला जाए कोई पता नहीं। ये रूप जिसे मैं अभी देख रहा हूँ इस रूप की अंतिम परिणति चिता में होगी और इसकी पहली परिणति प्रसव में है, प्रसव से चिता तक की यात्रा आप देख लो, आपको समझ में आ जायेगा कि ये तो बीच की चीजें हैं, नाम भी अभी दिए हुए हैं एक ही जीवन में कई कई नाम हो सकते हैं। पर जन्म के पहले क्या था और मृत्यु के बाद क्या होगा इस प्रश्न पर आप विचार करोगे तो आपको समझ में आयेगा कि मैं इन नाम और रूपों से परे हूँ। अब तक इस नाम और रूप के मोह में ही उलझकर जन्म जन्म में भटकता आया हूं अनेक योनियों से भटक कर के आया हूँ। कहाँ मुझे जाना है मुझे इसका भी कोई पता नहीं पर इतना तय है कि जिस रास्ते से मैं चलूंगा वहीं पहूंचूगा। सत्कर्म करूंगा, सद्गति पाऊंगा, दुष्कर्म करूंगा, दुर्गति का पात्र बनूंगा। सदाचार का मार्ग अपनाऊंगा सद्गति का पात्र बनूंगा और दुराचार के पथ पर चलूंगा दुर्गति का भागी बनूंगा। ऐसे प्रश्नों पर जब आप विचार करोगे, आपके मन से ही उसका समाधान उत्पन्न होगा। आपकी चेतना अन्तर्मुखी होगी। यही अन्तर्मुख चेतना विवेक जागृति का साधन बनेगी। सभी के जीवन में ऐसे विवेक जागृत हो सभी अपनें जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त कर सके इसी शुभ भावना से अपनी वाणी को विराम दे रहा हूँ।

होउं नहीं कृतघ्न कभी मैं

सद्गुणों में एक गुण हैं कृतज्ञता। भारतीय संस्कृति में कृतज्ञता को बहुत महत्त्व दिया गया है। कृतज्ञता का अर्थ हैं, यदि किसी ने कभी हमारे ऊपर किसी भी प्रकार का उपकार किया है, तो हम उसके प्रति हमेशा आदर रखें, उनके ऋणी रहें। इसे बहुत्त महत्त्व दिया गया है।

"अवसर पर जो उपकार किया जाता है वह देखने में छोटा भले ही हो पर जगत् में सबसे महान है।"

किसी मुसीबत में फंसे व्य्क्ति का अगर कोई उपकार करता है, तो उपकार भले छोटा हो पर छोटा होकर भी बहुत बड़ा है। यहं हमारे देश की संस्कृति रही है, जहाँ हमेशा उपकारी को सम्मान दिया गया है। उसके प्रति श्रृद्धा व्यक्त की गयी है। हमारे ऊपर अगर किसी ने एक क्षण का भी उपकार किया है तो जीवन भर उसके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने की परम्परा हमारे देश में रही। और यह कहा गया कि "सब दोषों से कलंकित मनुष्य का तो उद्धार हो सकता है, किंतु अभागे अकृतज्ञ का कभी उद्धार नहीं होगा।" कितनी गहरी प्रेरणा है इसमें, कृतज्ञ बनने की। यदि हम किसी के एहसान के बदले एहसान फरामोश होते हैं तो बहुत बड़े अकृतज्ञ बनते हैं, इसलिए मेरी भावना में यह कहा गया है कि

होऊँ नहीं कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे।
गुण ग्रहण का भाव रहे नित्. दृष्टि न दोषों पर जावे।।

हे, भगवान ! मैं कभी कृतघ्न न बनूँ, हर व्यक्ति के प्रति कृतज्ञ बना रहूँ, कदाचित् कृतज्ञता में कमी रहे तो कोई बात नहीं, पर कृतघ्न तो कभी नहीं बनूं। कृतघ्न का अर्थ क्या है ***"कृतम् उपकारं हन्ति इति कृतघ्न"*** जो दूसरों के किये गये उपकार का घात करे, वह कृतघ्न है। कृतघ्न व्यक्ति वह है जो उपकारी के उपकार का मूल्य कभी नहीं आंकता, उसके ऊपर कोई कितना भी बड़ा उपकार करे वह उसके प्रति कभी भी बहुमान का भाव नहीं रख सकता, उसके प्रति आदर का भाव नहीं रख सकता, उसके प्रति कभी श्रद्धा नहीं कर सकता। ये कृतघ्नता की परिणति है। कहा जाता है कि कृतघ्न की स्थिति तो उस साँप के जैसे होती है जिसे दूध पिलाने के बाद भी वह जहर उगलता है। सांप को कितना भी दूध पिलाया जाए वह जहर ही उगलता है। गिरधर कवि ने एक बड़ी अच्छी कुंडली में लिखा-

कृतघ्न कबहूँ न मानिहीं, कोटिकरें जो कोय
सरवस आगे राखिये तऊ न अपनो होय
तऊ न अपनो होय भले की भली न माने
काम काढ़ि चुप रहे, फेरि तिहि नहि पहिचाने
कह गिरिधर कविराय रहत नित ही निर्भय मन
मित्र शत्रु सब एक दाम के लालच कृतघन

बहुत अच्छा चित्रण किया है कृतघ्न की मानसिकता का। कृतघ्न व्यक्ति कभी अपना नहीं हो सकता। कृतघ्न व्यक्ति कभी किसी का उपकार मान ही नहीं सकता, चाहे उसके ऊपर करोड़ों उपकार क्यों न किये जायें। जिस समय उसके ऊपर उपकार किया जाता है, या जिस समय उसे किसी के सहयोग की आवश्यकता होती है, तब तो वह चाटुकारिता को अपनाता है। स्वार्थ के कारण सबके सामने दास बन जाता है, लेकिन जैसे ही स्वार्थ पूरा होता है वह किनारा काट लेता हैं ***"सरवस आगे राखिये तउ न अपनो होय"*** उसका कभी विश्वास नहीं करना, सब कुछ समर्पित करने के बाद भी वह कभी तुम्हारा अपना नहीं होगा। वह कभी भी पलट करके वार कर सकता है। कहते हैं तुम कितना भी भले की बात करो वह भले का भला नहीं मानता। वह मुसीबत में हो और तुम उसकी भलाई करो तो उस समय तो स्वीकार कर लेगा, पर जब कार्य सम्पन्न हो जायेगा

तो वह तुम्हारे उपकार को नहीं मानेगा। वह तो यही कहेगा कि "जब मैं निर्धन था, मेरी कोई पूछ परख नहीं थी, कोई मुझे पूछता नहीं था। मैं पुरुषार्थ और भाग्य से बड़ा हो गया तो मेरे चक्कर काटते हो।" कृतघ्न व्यक्ति के ऊपर अगर कोई उपकार किया जाता है तो वह बड़े से बड़े उपकारी को भी भूल जाता है। जिसने अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया वह भी यदि सामने जाये तो आँख फेर लेता है। अपना होने के बाद भी पहिचानने से इंकार कर देता है और ऐसे व्यक्ति लोभ लालच के पीछे सबको अपनाने लगते हैं। कहते हैं –

कह गिरधर कविराय रहत नित ही निर्भय मन
मित्र शत्रु सब एक दाम के लालच कृतघन

कृतघ्न व्यक्ति का तो एक ही लक्ष्य होता है अपना स्वार्थ जहाँ से स्वार्थ पूरा हो उसके पीछे वह पागल हो जाता है और जहाँ स्वार्थ टकरा जाता है अपनों को भी भूल जाता है। अपनों को पहिचानने में भी संकोच करता है। कृतघ्न की स्थिति है। और ऐंसे व्यक्ति कभी अपने जीवन का विकास नहीं कर सकते। हमारी परंपरा कहती है कि आदमी बड़ा हुआ है, खड़ा हुआ है, योग्य बना है तो इसके पीछे किसी की भूमिका है उस भूमिका की कभी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। एक कवि ने कृतघ्न की मानसिकता को बहुत अच्छे ढंग से रेखांकित करते हुए कहा है कि "एक माली ने पेड़ लगाया वो बड़ा हुआ। रात-दिन सींच-सींच कर माली ने उसे बड़ा किया, उसकी साज-संवार की, उसका रख-रखाव किया और बड़ा होने के बाद जब उसमें फल-फूल लगे और भौंरे मंडराने लगे तो फूल इतराने लगे। वह भूल गया माली के श्रम को, कि मैं आज जो इतना खिल रहा हूँ उस खिलने के पीछे भी किसी का कोई श्रम है। जब उसने माली के श्रम की उपेक्षा शुरू की तो कवि ने अपनी बात उस फूल से कही कि "रे ! फूल आज तू इतना फूल रहा है कल घूरे के ढेर पर था वहाँ से उठाकर के माली तुझे अपने यहाँ नहीं लगाता, तुझे सींचता नहीं, तुझे रोज-रोज पानी नहीं देता, तुझे रोज-रोज खाद नहीं देता तो न आज तू इतना बड़ा हो पांता, न आज तुझमें फूल लगते, न आज तुझमें फल लगते और न भौंरे मंडराते। फूल को बात समझ में आ गयी। बंधुओ बस बात इतनी ही है हर फूल के खिलने में किसी माली का श्रम है। माली के श्रम

के सिंचन से ही फूल खिलता है। हमारी कृतज्ञता सिर्फ इतना ही बताती है कि फूल खिले, और खेले माली को कोई एतराज नहीं, पर कम से कम माली के श्रम को नजरअंदाज तो न करे, माली के श्रम को हमेशा-हमेशा ध्यान में रखे क्योंकि इसके बिना हमारा जीवन बिल्कुल बढ़ नहीं सकता। एक विचारक ने बहुत अच्छी कही कि "संसार में कोई गहरे रंग का अपराध है तो वह है कृतघ्नता। कृतघ्नता से गहन कोई गहरे रंग का अपराध नहीं।" यानि जो व्यक्ति कृतघ्न हो गया उसने अपनी आत्मा को एकदम पतित कर दिया। कृतघ्नता से नीच कोई कार्य नहीं क्योंकि कृतघ्न व्यक्ति गुण-अवगुण सब कुछ छोड़ देता है, उसके जीवन में सत्य, दया, करूणा, प्रेम कुछ नहीं आता क्योंकि उसकी आँखों में स्वार्थ का चश्मा चढ़ता है उसे परमार्थ कहीं नजर नहीं आता कृतघ्न से नीच कोई व्यक्ति है ही नहीं। इसलिए लिखा गया है -

गोघ्ने चैव सुरापे च चौरे भग्नव्रते तथा।
निष्कृति विहिता सद्भिः कृतघ्ने नास्ति निष्कृति।।

एक आदमी गाय की हत्या कर लेता है उसके पाप का प्रायश्चित हो सकता है, कोई व्यक्ति मदिरा पान करता है तो प्रायश्चित करके स्वयं को शुध्द कर सकता है, कोई चोर है तो चोरी करने के बाद यदि पश्चाताप करता है तों अपने आप को उस पाप से मुक्त कर सकता है, किसी का कोई व्रत टूट जाता है तो भग्न व्रत भी अपने को स्थिर करके प्रायश्चित से अपने पाप की शुद्धि कर सकता है। सबके पाप के प्रायश्चित की बात तो कही जाती है लेकिन कृतघ्न के पाप की कोई बात नहीं कही गयी है क्योंकि कृतघ्नी जैसा नीच कोई व्यक्ति नहीं है और कृतघ्नता जैसा कोई कर्म नहीं।

एक ऋषि गंगा स्नान करके लौट रहे थे। उन्होंने देखा सामने से एक चांडालिनी आ रही थी। उसके एक हाथ में गंदगी से भरा खप्पर था। सिर पर एक टोकनी थी जिसमें मरा हुआ कुत्ता था। दूसरा हाथ खून से लथपथ था। वह अपने रक्त सने हाथों से गंगा का जल सींचते हुए जा रही थी। ऋषि को बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह क्या ! उन्होंने उस चांडालनी से पूछा रे ! बहिन मैं यह क्या देख रहा हूँ कि; तेरे एक हाथ में खप्पर है उसमें गंदगी है, सिर पर जो टोकना है उसमें

मरा हुआ, कुत्ता है और तेरे हाथ खून से लथपथ हैं, फिर तू यह गंगा का जल क्यों सींचते जा रही है, तू कौन सी पवित्रता पाना चाहती है ? तो चांडालनी ने जो जबाब दिया तो आप सब लोगों को नोट करने लायक है। उसने कहां कि "हे महाराज आप तो भोले-भाले हैं आपको दुनियाँ का कोई पता नहीं। मैं अपना कर्म करती हूँ इसलिए मैं इतनी अपवित्र नहीं हूँ मुझसे भी अपवित्र कोई है, मैं उस अपवित्रता की छाया से अपने को बचाना चाहती हूँ।" क्यों, क्या बात है ? "बात इतनी है कि अभी-अभी इस धरती से एक कृतघ्नी निकला है मैं नहीं चाहती कि उसकी अपवित्र धूल मेरे पैरों में लगे, इसीलिए मैं गंगा जल सींच-सींच कर आगे जा रही हूँ।"

ये कृतघ्नी की स्थिति है। इसीलिए कहते हैं कि यदि किसी ने कोई उपकार किया है तो उसे कभी मत भूलो। हम जब प्राणी जगत् पर विचार करते हैं तो कुत्ते को जिसको कि अपनी जाति देखकर गुर्राने वाला प्राणी माना जाता है जिसे सबसे निकृष्ट प्राणी माना जाता है, कुत्ता भी कृतघ्न नहीं होता, शेर जैसा खूँखार प्राणी भी कृतघ्न नहीं होता। लेकिन यह आदमी कैसा है जो कुत्ते से भी नीच काम करता है।

एक कवि ने कृतघ्नी को कुत्ते से भी नीच बताते हुए बड़ी रोचक बात लिखी है "कुत्ते को किसी ने नीच कह दिया तो कुत्ता बड़ा शोकमग्न् हो गया, शोक मग्न देखकर उस कवि ने कहा कि ''रे कुत्ते तू शोकमग्न मत हो तू ही नीच नहीं नहीं है तुझसे भी बड़ा नीच तो वह कृतघ्न है।" क्योंकि कुत्ते के बारे में यह कहा जाता है कि एक कुत्ते को यदि बचपन में कोई दो रोटी खिला दे, तो जीवन पर्यन्त उसके सामने दुम हिलाता रहता है। दो रोटी खिलाने वाले के लिये जीवन पर्यन्त दुम हिलाता है। पर आदमी की स्थिति ऐसी है कि वो तो अपने जन्म देने वाले, जीवन देने वाले माँ बाप तक को भूल जाता है। कृतघ्नता की इससे बड़ी हद क्या होगी।

इसीलिए कहते हैं कि एक स्वामी भक्त कुत्ता कृतघ्न मनुष्य से अच्छा है। कृतघ्नता मनुष्य को नीचता की सीमा से नीचे ले जाती है। पशु पक्षी कभी कृतघ्न नहीं होते। ऐसे अनेक उदाहरण देखने को मिलते हैं इतिहास में पुराणों में जिसमें पशुओं द्वारा मनुष्यों के उपकार का बदला चुकाया गया है।

यूनान की एक घटना है जब दास प्रथा प्रचलित थी, आप लोगों ने सुना होगा। डायजनिस की कथा है। डायजनिस एक दास था, गुलाम था। अपनी गुलामी से तंग आकर के एक दिन वो भागा। पीछे-पीछे सैनिक उसका पीछा कर रहे थे भागता-भागता वह जंगल में पहुंचा। देखता क्या है एक झाड़ी के नीचे एक शेर कराह रहा था। उसने शेर को देखा तो पहले तो घबराया, फिर शेर की कराह को सुनकर उसने अंदर करूणा उमड़ आयी। सारा भय त्याग कर वह शेर के सामने पहुंच गया। जैसे ही शेर के सामने पहुंचा, शेर ने अपना पंजा उसकी ओर कर दिया। उसके पंजे में एक तीखा सूल चुंभा हुआ था। और शेर को बहुत अधिक पीड़ा हो रही थी। शेर इसी पीड़ा में कराह रहा था। उसने उसकी स्थिति देखी तो समझ गया कि शेर मुझसे सहयोग चाहता है। उसने सब कुछ भूल कर उसके उस सूल को बाहर कर दिया। जैसे ही सूल को बाहर किया शेर की पीड़ा कम हो गई उसने उसकी तरफ कृतज्ञता भरी नजरों से देखा और चुपचाप अपना रास्ता पार कर लिया। कहते हैं कुछ दिन बाद वह डायजनिस पकड़ा गया और उसे सजा में यह कहा गया कि इसे भूखे शेर के पास छोड़ दिया जाये, भूखा शेर इसे खा लेगा उसे प्राण दण्ड दे दिया गया। बीच चौराहे में उसे सजा देने के लिये एक पिंजरे में तीन दिन के भूखे शेर को लाया गया और उसे पिंजरे में धकेल दिया गया। पहले तो शेर जोर से दहाड़ा पर जैसे ही वह पास आया उसकी गंध शेर तक पहुंची शेर बिल्कुल शांत हो गया। बहुत प्रयत्न किया गया कि किसी तरह से शेर उसका भक्षण कर ले पर शेर ने उसे सूँघा उसकी परिक्रमा लगायी और अपने स्थान पर आकर बैठ गया। भूखे रहने के बाद भी शेर ने उसका भक्षण नहीं किया क्योंकि शेर को मालूम पड़ गया था कि यह वही डायजनिस है जिसने मेरे पैर का कांटा निकाला था। पशुओं के अंदर भी कृतज्ञता होती है, अंग्रेजी विचारक होल्टन ने बड़ी अच्छी बात लिखी कि-

Brutes leave ingratitude to Man.

पशु भी मानव के प्रति कृतघ्नता छोड़ देते हैं।

चोर, लुटेरे, बदमाश भी, यदि उनके ऊपर कोई उपकार करता है तो जीवन पर्यन्त कृतज्ञ रहते हैं। वे और सब बातों को गौण कर सकते हैं पर कभी किसी के प्रति

अकृतज्ञ नहीं होते। एक प्रसंग मैंने पढ़ा एक डॉक्टर अपने परिवार के साँथ कहीं जा रहे थे। कार में, वे थे उनके बच्चे थे और पत्नी थी। रास्ते में बीच जंगल में उनकी गाड़ी खराब हो गयी। डा. साहब को बड़ी दिक्कत हुई क्या किया जाये। उनने अपनी पत्नी और बच्चों को कहा कि तुम यहीं रहो, मैं पास के गांव से कुछ आदमियों को लेकर आता हूँ, उनके सहयोग से गाड़ी में सुधार करके आगे बढ़ेंगे। पत्नी और बच्चे बीच जंगल में अकेले रह गये डाक्टर सहयोग पाने के लिये पास के गाँव गया। अचानक जंगल की झाड़ियों से लुटेरों का एक दल आ गया। उन्होंने गाड़ी को चारों ओर से घेर लिया । गाड़ी में एक महिला और बच्चों को देखकर एक ने कड़कते स्वरों में कहा- "निकाल दो जो कुछ भी है।" बंदूकधारियों को देखकर डॉक्टर की पत्नी और बच्चे सकपका गये। उन्होंने अपने जेवर और रुपये जो कुछ भी थे सब उतार कर दे दिये। इसी बीच डाक्टर भी आ गया। उसे गांव में कोई सहयोगी नहीं मिला था। इसलिये वह अकेला ही आया था। लुटेरों को देखकर वह एकदम घबरा गया। तभी लुटोरों के सरदार ने डाक्टर को पहचान लिया पहिचानते ही उसने हाथ जोड़कर कहा "डा. साहब मुझे क्षमा कर दीजिए मुझे मालूम नहीं था कि यह आपकी गाड़ी है अन्यथा उसे हाथ भी नहीं लगाता। मुझसे गलती हो गयी। मुझ पर तो आपका बड़ा उपकार है। आप वही डा. हो न जिसने मेरे बेटे को बचाया था। हम सब कुछ कर सकते हैं पर कभी किसी के उपकार की अवमानना नहीं कर सकते हैं क्योंकि कृतघ्नता तो नरक का द्वार है। इसलिये मुझे क्षमा कीजिये। आपका जो कुछ सामान है। हम सब आपको लौटाते हैं और उसने साथियों से गाड़ी को धक्का दिलवाते हुए गाड़ी को जंगल के बाहर किया। कहते हैं कि लुटेरे भी कभी किसी के प्रति अकृतज्ञ नहीं होते। सारी प्रकृति कृतज्ञता सिखाती है। एक पेड़ को कोई सींचता है उसमें पानी डालता है, खाद डालता है, तो वह बड़ा होता है और बड़ा होकर फल-फूल देकर छाया देकर कृतज्ञता व्यक्त करता है।

शेख सादी ने एक जगह बड़ी अच्छी बात लिखी है कि "वो एक मिट्टी का ढेला उठाये उसमें बड़ी खुशबू थी सुगंध थी उन्होंने मिट्टी के ढेले की सराहना की और कहा कि तुझमें कितनी अच्छी सुगंध है।" मिट्टी ने हाथ जोड़ लिये कहा

कि "यह सुगंध मेरी नहीं है मैं तो गुलाब की क्यारी में थी। गुलाब ने अपनी सुगंध बरसायी है इसीलिये वो मेरे अंदर आ गयी है।" कितनी कृतज्ञता की भावना है। पेड़-पौधे भी कृतज्ञ होते हैं। संस्कृत के एक कवि ने इसे अत्यंत रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है। उन्होंने नारियल का उदाहरण दिया है। नारियल के अंदर जल क्यों रहता है? कभी आपने विचार किया? कवि कहता है-

प्रथम वयसि पीतम् तोयमल्पं स्मरन्तः
शिरसि निहित भारा नारिकेला नराणाम्।।
उदकममृत तुल्यं दधुराजीवनान्तम्
न हि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति।।

नारियल का पेड़ कहता है कि जब मैं छोटा था तब मनुष्यों द्वारा सिंचित थोड़ा सा जल पिया है इसलिए जीवन भर अपने सिर पर फलों को लादे रहता हूँ और अमृत तुल्य जल अपने पेट में रखता हूँ। इसलिए उस जल का मूल्य चुका सकूं मैं उनके उपकार का बदला चुका सकूं। इसलिए नारियल का पेड़ हमेशा अपने माथे पर नारियल रखे रहता है और उसके अंदर जल रहता है। क्योंकि *"न कि कृतमुपकारम् साधवो विस्मरन्ति"।* जो सज्जन पुरुष होते हैं, वह कभी भी किसी के उपकार को नहीं भूलते। थोड़ा सा भी यदि उन पर उपकार किया जाता है तो जनम-जनम तक वह उस उपकार को याद रखते हैं। और जो इस उपकार को भूल जाते हैं उनके जीवन का कभी उद्धार नहीं हो सकता। उनके लिये तो कहते हैं -

मित्र द्रोही कृतघ्नश्च स्तेयी विश्वासघातकः।
चत्वारो नरकं याति यावच्चन्द्र दिवाकरौ।।

जो मित्र से द्रोह करता है, कृतघ्नी है, विश्वासघाती है, चोर है ये चोरों सिर्फ नरक जायेंगे। जब तक सूरज और चाँद रहेगा वह नरक जावेंगे। नरक के अलावा उनका कोई ठिकाना नहीं है। इसीलिए कहते हैं कि व्यक्ति कभी किसी के प्रति कृतघ्न न बने।

सामाजिक दृष्टि से यदि हम विचार करें तो कृतघ्नता से तीन हानि हैं।

(१) परोपकारक वृत्ति का लोप (२) अभिमान की पुष्टि (३) प्रेम और आत्मीयता का अभाव। पहली हानि यदि व्यक्ति कृतघ्न होगा तो दूसरे के मन में परोपकार की वृत्ति का लोप हो जायेगा। यदि किसी आदमी ने किसी के ऊपर कोई करूणा की, किसी के ऊपर कोई कृपा की, उसकी उपेक्षा हो जाती है तो दूसरे आदमी सोचते हैं भैया! आजकल सेवा का जमाना नहीं है। हमने जिनकी सेवा की वो ही हम पर ऐंठ रहा है। अपने यहाँ तो यह कहा गया है कि कोई थोड़ा सा भी उपकार तुम पर करता है तो जनम-जनम तक उसके दास रहो। पर आज तो उल्टी स्थिति हो रही है-

मैं जिसके हाथ में एक फूल देकर आया था।
उसी के हाथ का पत्थर मेरी तलाश में है,

कृतघ्नता का इससे बड़ा नमूना और क्या होगा जिसके हाथ में एक फूल देकर आया उसके हाथ का पत्थर अगर मेरी तलाश में है तो कोई किसी को क्यों फूल देना चाहेगा ? एक अंग्रेजी विचारक ने बड़ी अच्छी बात लिखी है -

One ungreatful Man does an injury to all who stand in need of aid.

"एक अकृतज्ञ मनुष्य उन सब को हानि पहुँचाता है, जो सहयोग की आशा से खड़े हैं।" दूसरी हानि है- अभिमान की पुष्टि। कृतघ्न मनुष्य विनम्र नहीं हो सकता। पर अपने बड़े से बड़े उपकारी को भी बहुमान नहीं देता। दे भी कैसे, उपकारी उसकी दृष्टि में है ही नहीं। एक विचारक ने बड़ी तीखी बात लिखी है-***"अकृतज्ञ मनुष्य तो उस सुअर की तरह है जो पेड़ के नीचे गिरे हुए फलों को तो खाता है पर भूलकर भी अपना सिर ऊपर नहीं उठाता कि ये फल कहाँ से आ रहे हैं।"*** हम दूसरे के उपकार तो चाहते हैं पर उपकारी को कभी मूल्य नहीं देना चाहते। ऐंसा व्यक्ति अपने जीवन का कभी विकास नहीं कर सकता। अभिमान में अकड़ने वाले आदमी को हमेशा धरती में दबना पड़ता है। यह अभिमान का आज तक का इतिहास है। और तीसरी बात- अकृतज्ञता के कारण आत्मीयता और प्रेम का आभव हो जाता है। कृतघ्न व्यक्ति स्वार्थी होता है। स्वार्थ

में अपनत्व का अभिनय हो सकता है, आत्मीयता नहीं। स्वार्थी व्यक्ति अपने माता-पिता तक को नहीं पूछता। अपनत्व, आत्मीयता, प्रेम, सेवा और सौहाद्र सामाजिकता के मूल तत्त्व हैं। इन तत्त्वों के रहने पर ही समाज स्वस्थ रह सकता है। यह तभी संभव है जब व्यक्ति एक दूसरे के प्रति कृतज्ञ बनें। एक कृतज्ञ सेठ के बारे में पढ़ा है, आपको सुना रहा हूँ, बड़ी प्रेरक है।

एक गांव में भयंकर दुष्काल पड़ा। लोग दाने-दाने को मोहताज होने लगे। परिणाम यह निकला कि लूटपाट, राहजनी और चोरी बढ़ गयी। पूरे के पूरे गांव में आतंक का साया फैल गया। उस गांव में एक वृद्ध सेठ रहते थे। बड़े दूरदर्शी समझदार प्रतिष्ठित और सूझबूझ वाले थे। वे जितने सम्पन्न थे उतना ही उनका सम्मान था। उनने जब यह स्थिति देखी कि पूरे के पूरे अंचल में मारा-मारी मची हुई है। तो उनके अन्दर राष्ट्र भक्ति जागृत हो गयी। उनके मन में अपनी मातृभूमि के प्रति कृतज्ञता का भाव उमड़ आया। उन्होंने अपने कुटुम्ब और परिवार के लोगों को बुलाया और कहा कि "हमने जिस मातृभूमि में जन्म लिया है, जिस धरती पर हम रहते हैं उसका हमारे ऊपर बड़ा उपकार है। आज तक जो कुछ भी हमने पाया और खाया है वह इस धरती का ही है। आज धरती के ऊपर संकट छाया है, लोग दाने दाने के लिये तरस रहे हैं। अब हमारे पास जो अनाज है उसे जनता के लिये बाँट देना चाहिये, तभी हम सही कृतज्ञ हो सकेंगे। उनके परिवार के लोगो में से एक ने टोका कि अगर ऐसा करेंगे तो हम क्या खायेंगे। तो उन्होंने समझाया कि देखो अगर हम ऐसा नहीं करते तो भी कुछ नही खा पायेंगे। इतनी मारा-मारी मची है कि अगर तुम बचा कर के रखोगे तो लोग लूट करके ले जायेंगे। तुम शांति से नहीं रह सकोगे। इसलिए शांति से रहना चाहते हो तो कुछ लोगों को बांटो, यही हमारा धर्म है। यही हमारा कर्तव्य है। सभी को बात समझ में आ गयी। उसने पूरे गांव के लोगों को बुलाया और उनसे कहा कि "इस समय सारे के सारे इलाके में बहुत संकट है। अब गर्मी के दिन तो आ चुके हैं, चार महीने का समय हमें बिताना है यदि चार महीने हमने कुछ सावधानी से बिता लिये तो आने वाला समय हमारे लिये ठीक हो जायेगा। चार महीने में यदि वर्षा हो गयी तो हम सब बच पायेंगे, नहीं तो बचेंगे भी नहीं। मैंने एक उपाय सोचा है यदि तुम

लोग चाहो तो मैं उसे बताऊँ।" सभी लोगों ने हाथ जोड़कर कहा, आप तो हमारे अन्नदाता हो, हमारे दिशादर्शक हो जो भी उपाय है, आप बताइये हमें किसी भी प्रकार से इस संकट से मुक्त कराइये। उन्होंने कहा "देखो मेरे पास ५०० बोरे अनाज है और चार महीने का यह संकट है। इन ५०० बोरे में से ५० बोरे में मेरे कुटुम्ब का काम चल जायेगा इसीलिये ५० बोरे मैं रख लेता हूँ। और २०० बोरे से पूरे के पूरे गाँव के लिये बोनी के योग्य अनाज रह जायेगा इसलिए इसे भी सुरक्षित रख लेता हूँ। २०० बोरे बोनी के लिये और ५० बोरे मेरे लिये। शेष जो है वो तुम लोग ले लो और आपस में बाँट लो। पर देखो भाई अब इतने में ही चार महीने काम चलाना होगा। जैसे तुम्हें चलाना हो सो चलाओ। गाँव के लोग बड़े कृतज्ञ हुये उन्होंने वो सब स्वीकार लिया, सब में अनाज बंट गया और इधर सेठ को भी शांति हो गयी। यदि वह अनाज नहीं बाँटता तो अपने जीवन को भी शांति से नहीं बिता सकता। और सब अनाज तो चला ही जाता क्योंकि भूख व्यक्ति से क्या नहीं करा लेती। कहते हैं कि व्यक्ति हमेशा सबके प्रति कृतज्ञ बना रहे क्योंकि जो जरा से उपकार के लिये कृतज्ञ रहता है। व्यक्ति महान प्रसन्नता का अनुभव करता है। कृतज्ञता पूर्ण मानस महान और प्रसन्न मानस होते हैं। कृतज्ञता की कितनी उत्कृष्ट भावना है। आज ऐसे लोग बहुत कम मिलते हैं, आज राष्ट्र और समाज की बात तो जाने दीजिए, अपने जन्मदाता माता-पिता के साथ भी प्रेमपूर्ण व्यवहार नहीं करते। ऐसे लोगों के सम्बन्ध में क्या कहा जाए-

शास्त्रों में लिखा है कि तीन का उपकार दुष्प्रतिकार होता है वे है-
(१) माता-पिता (२) भर्ता-जिनके सहारे भरण पोषण हो (३) गुरू

इन तीनों का जो उपकार होता है, उसे जन्म-जन्म की दासता स्वीकार करने के बाद भी चुकाया नहीं जा सकता। इसलिए इन तीन का सदैव ऋणी रहना चाहिए।

माता-पिता जन्म देते हैं, पढ़ा लिखाकर योग्य बनाते हैं। हमारा जो कुछ भी है वह माता-पिता की देन है। कितना बड़ा उपकार है उनका। हमारे शरीर का एक एक बूंद खून भी उन्हीं के द्वारा प्रदत्त है। क्या कभी हम मूल्य चुका सकेंगे उनका। इसलिए कहते हैं कि अपने माता-पिता के उपकार को कभी मत भूलो पर

आज ऐसे लोग भी बहुत हैं जो अपने माता-पिता को कुछ समझते ही नहीं।

मैंने एक प्रसंग पढ़ा कि एक पिता अपने डेढ़ साल के बेटे को गोद में खिला रहे थे। आँगन में बैठे थे। छप्पर पर बैठा एक कौआ कांव-कांव कर रहा था। बेटे ने देखा और अपनी तुतलाती आवाज में पूछा कि पिताजी ये क्या है? पिता ने कहा बेटा यह कौआ है। थोड़ी देर बाद बेटे ने फिर पूछा पिताजी यह क्या है। "बेटे कौआ है।" बेटे तो बेटे होते हैं उनको होश कहाँ रहता। तीन चार बार बार-बार पूछा पिताजी यह क्या है। वे बताते रहे बेटा यह कौआ है। उनको कोई दिक्कत नहीं थी जितनी उत्सुकता से बेटा पूछ रहा था उतना ही प्रेम से जबाब दे रहे थे। पर न जाने पिता के मन में क्या अज्ञात भाव जाग्रत हुआ उन्होंने अपनी बही निकाली और जितनी बार कौआ पूछे, कौआ बताये और उस बही में लिखते जायें। बही के कितने पन्ने भर गये कुछ कहा नहीं जा सकता। अपना पूरा का पूरा प्यार उस बेटे में उड़ेलते रहे। बेटे को पढ़ा लिखा कर बड़ा किया। बेटा योग्य हो गया। पर जैसे जैसे बेटा बड़ा हुआ उसने अपने पिता की उतनी ही अवज्ञा शुरू कर दी। अब बात बात में उसकी अपने पिताजी से तकरार होती। बात-बात में अनबन होती। वह पिता पर फब्तियाँ कसता, पिता को कोसता रहता और अपने पिता को पिता न कहकर बुढ्ढा कहता। सम्मान देना भी भूल गया। ऐसें जब पिता रोज रोज उपेक्षा का शिकार हो गया, तो पिता तो पिता था भले वो शरीर से दुर्बल हो गया था पर अनुभव तो बहुत मजबूत था। एक दिन उसके पिता ने देखा छप्पर पर एक कौआ बैठा काँव-काँव कर रहा है। उसने बेटे से पूछा बेटा यह क्या है ? उसने कहा "कौआ है अंधा हो गया है? दिखता नहीं है। पिता ने सब कुछ कड़वे घूंट की तरह पिया और थोड़ी देर बाद फिर उसने पूछा बेटा. यह क्या है? "कौआ है कौआ दिमाग खराब हो गया है क्या ?" फिर थोड़ी देर बाद उसने पूछा बेटा यह क्या है? अब तो बेटा आपे से बाहर हो गया। बोला हद हो गयी लगता है ग्वालियर भेजना पड़ेगा तुम्हें, कौआ है कौआ कितनी बार कहूं दिमाग खाये जा रहा है।" अब की बार उस पिता को थोड़ी सी शांति मिली फिर थोड़ी देर बाद उस पिता ने कहा "बेटे तू एक काम कर अमुक सन् की बही तो लेकर आ।" अच्छा जब डांटा तब तुम्हारा दिमाग ठिकाने आया है। बता उसमें किसका कुछ लेना-देना है कुछ लेना-देना है तो बता, फालतू का दिमाग मत चाट।" सब कुछ

सुनते हुए उस पिता ने बही निकाली और बही निकालकर के उसे खोल करके दिखाया थोड़ा यह पढ़कर तो सुनाओ। बेटे का तो दिमाग ठनक गया। कई पेज में कौआ, कौआ, कौआ लिखा था। बोला अरे मुझे तो अब मालूम पड़ा की तुम्हारा दिमाग तो पहले से खराब हो गया था मुझे क्या पता था कि तुम्हारे दिमाग में इतना कचरा भरा है जो आज तक निकल रहा है। पिता ने अत्यन्त संयत स्वर में कहा कि "बेटे जो मैं तुझे दिखा रहा हूँ यह मेरा हिसाब है। मैंने तुझे कौआ बोलना सिखाया तो मुझे इतनी बार कौआ बोलना पड़ा। इतनी बार बोल बोल कर मैंने तुझे कौआ बोलना सिखाया है। मैंने तो तुमसे सिर्फ तीन बार ही पूछा है और तुम उसमें इतना इतरा गये हो, ये सिर्फ एक शब्द का हिसाब है। यदि तुम्हें आज तक जितना सिखाया है उसका मैं हिसाब माँगू तो क्या तुम हिसाब चुका सकोगे। बेटे की आँख खुल गयी। बंधुओं हमें भी सोचने की जरूरत है एक एक शब्द जो हमने सीखा है वह कितने मूल्य पर सीखा है उसे हम कभी चुका नहीं सकते।

भर्ता जिसके सहारे हमारा जीवन बना, जिसने हमें आजीविका दी, जिसने हमारा भरण-पोषण किया उसके प्रति हमेशा कृतज्ञ बनकर रहना चाहिये। भले ही तुम्हारी स्थिति कितनी भी मजबूत क्यों न हो जाये पर यह देखो कि हमारी मजबूरी में कौन आड़े आया है, किसने साथ दिया है। जिसने तुम्हारी मजबूरी में साथ दिया उसके प्रति हमेशा कृतज्ञ बने रहने की बात कही गयी है। एक उदाहरण मैंने पढ़ा वह उदाहरण भी बहुत प्रेरक है। एक गाँव में दुष्काल फैला। गाँव के लोग दाने दाने को तरसने लगे। सारे लोगों ने सलाह करके गाँव छोड़ दिया। उस गाँव में एक छः साल का अनाथ बेटा भी था। गांव के महाजनों ने उसे भी साथ ले लिया पर वह बेटा तो बेटा था, बार-बार खाने-पीने की चीजों के लिये मचल जाता तो गांव वालों को बड़ी दिक्कत होती। वे गांव से शहर में आये और शहर के एक उपकारी सेठ के यहाँ उसे छोड़ दिया। सेठ ने उसे अपने बेटे की तरह पाल पोष के बड़ा किया। वह बेटा भी बड़ा होनहार निकला। बड़ा होने के बाद उसने सेठ का सारा धंधा सम्हाल लिया, सेठ ने उसे हेड मुनीम का दर्जा दे दिया। शुरूआत में सेठ ने अपने धंधे में और थोड़ी भागीदारी दी और भागीदारी बढ़ा बढ़ाकर उसकी योग्यता और कृतज्ञता को देखकर उसने अपने हिस्से का आधा भागीदार बना दिया। यद्यपि वह बालक नहीं चाहता था कि मुझे सेठ जी कि तरफ से कुछ मिले पर सेठ जी

बड़े उपकारी थे। उससे कहते थे तूने मेरा इतना काम बढ़ाया तो तेरा ये अधिकार है, सेठ जी ने बड़े होने के बाद बेटे की शादी भी कर दी। शादी करने के बाद एक दिन बेटे ने अपने पिता तुल्य सेठ से कहा कि सेठजी अब मैं अपने गांव जाना चाहता हूँ। मेरी इच्छा यह हो रही है कि मैं इतना योग्य हो गया हूँ तो गांव वालों का मुझ पर बहुत उपकार है। मैं चाहता हूँ कि गांव वालों का भी कुछ ऋण चुकाऊं। सेठ बड़े प्रसन्न हुए उसके आधे हिस्से का सब कुछ उसे दे दिया और बहुत द्रव्य उपहार में उसे देकर के विदा किया।

बेटा गांव आया। गांव आने के बाद अपना काम धंधा भी बहुत फैला लिया। उसकी उपकारी वृत्ति के कारण उसकी मान प्रतिष्ठा भी खूब बढ़ गयी। सब लोग गांव में उसे सम्मान देने लगे। लेकिन इधर तो बिल्कुल पासा ही पलट गया। सेठ की स्थिति दिनोंदिन कमजोर होने लगी। सारा धंधा चौपट हो गया। वह दाने दाने को मोहताज हो गया। एक दिन सेठानी ने सेठ से कहा कि इस स्थिति में आप किसी से कुछ मांग नहीं सकते पर जिस बेटे को आपने पाल पोस कर बड़ा किया है आज उसकी स्थिति बहुत मजबूत है। आप उसके पास जाइये वह बहुत गुणवान बेटा है। अपने लिये बहुत सहयोग देगा। सेठजी न चाहते हुए भी अपनी पत्नी के कहने पर वहाँ गये। घर से पैदल ही चले गांव में पता चला कि उसका बेटा काफी सम्पन्न है और उसकी बहुत अच्छी प्रतिष्ठा हैं। लोगों के मुख से उसकी प्रशंसा सुनी तो सेठजी को कुछ आशा बंधी। सेठ जी लोगों से उसका पता पूछकर उसकी गद्दी के पास पहुंच गये। जैसे ही गद्दी के पास सेठ जी को देखा वह अपना सारा काम छोड़कर उनके चरणों में गिर गया। और कहा कि "पिताजी आप यहाँ कैसे आ गये! बिना सूचना के यहाँ कैसे आ गये! उन्हें बैठाया और अपने सारे लोगों से कहा, ये मेरे मालिक हैं ये मेरे पिता तुल्य हैं जिन्होंने मुझे योग्य बनाया आज जो कुछ भी तुम मेरा देख रहे हो यह सब इनकी ही कृपा का फल है।" फिर उन्हें स्नान आदि से निवृत्त कराने के बाद वह और उसकी पत्नी दोनों ने उनके पैर छुए और बड़े आदर से उन्हें भोजन कराया। आराम होने के बाद वो गया और कहा पिताजी आप यहाँ अनायास, इस स्थिति में कैसे आ गये आप सूचना भिजवा देते तो मैं स्वयं आपको लेने आ जाता। उसकी इस भावना को देखकर सेठ ने अपने मन की सारी बात बता दी, उसने कहा पिताजी आपको

चिंता करने की कोई आवश्यकता नहीं अभी मैं हूँ आप आराम से यहाँ रहिये, मैं वहां जाता हूँ और आपका सारा काम देखकर के आता हूँ।

वह काफी सारा पैसा अपने साथ ले कर वहां गया जिन-जिन का कर्ज था उन का कर्ज चुका दिया, और राजाज्ञा के कारण सेठ जी को जिन-जिन से लेना था वो पूरा पैसा भी वापिस आ गया। उसने अपने कई आदमियों को लगाकर के उनका काम बहुत अच्छे ढंग से जमा दिया। काम इतना ज़मा कि वह पहले से भी अच्छा बन गया। तीन चार महीने में काम जमा देने के बाद एक दिन वह आया और अपने उस धर्म पिता के चरणों में गिरकर के कहा कि "पिताजी आपका काम अब फिर जम गया है आप फिर सम्हालिये।" उसने सुना तो उसकी आँखें भर आयीं और अपने उस बेटे को अपनी छाती से लगा लिया।

ये है कृतज्ञता। ऐसे ही व्यक्ति का यश बढ़ता है, ऐसे ही व्यक्ति की प्रतिष्ठा बढ़ती है। यही हमारी भारतीय संस्कृति का मूल है कि कभी किसी के प्रति अकृतज्ञ न हो, वो बेटा अगर अकृतज्ञ होता तो अपने जीवन का विकास नहीं कर पाता, न ही सेठ उसको इतना सम्मान दे पाता, न ही सेठ उसको अपना भागीदार बना पाता और न ही उसकी इतनी प्रतिष्ठा होती। लेकिन उसके अन्दर कृतज्ञता की भावना थी, उसकी इस कृतज्ञता की भावना ने ही उसके जीवन का विकास कर दिया।

गुरू के प्रति भी व्यक्ति को हमेशा कृतज्ञ होना चाहिए गुरू की भूमिका माता-पिता से भी ऊपर होती है। माता-पिता तो जन्म देते है मगर गुरू जीवन देते हैं। गुरूओं से जो दिशा मिलती है वह हमारी दशा को बदलने वाली होती है। गुरू का एक वचन हमारे जीवन के रूपांतरण का बहुत बड़ा कारण बन जाता है इसलिए कहते हैं कि गुरू के उपकार को कभी मत भूलना। गुरू क़ा बहुत बड़ा उपकार है। गुरू का दिशा दर्शन ही सब कुछ है। हम लोगों की जब मुनि दीक्षा हुई, सोनागिर में दीक्षा हुई, दीक्षा के उपरांत आचार्य श्री के साथ हम सब चन्द्रप्रभु भगवान के पास प्रतिक्रमण करने के लिये पहुँचे। प्रतिक्रमण कर चुकने के उपरांत मैने महाराजश्री से निवेदन किया कि महाराजजी आज आपने हम सब को कृतार्थ किया है, दीक्षा दी है। अब आप हमें उपदेश दें हमें कुछ आदेश दें, तो

महाराज जी ने जो बात कही वो आप लोगों को ध्यान में रखने योग्य है हमने तो उसे उसी दिन अपने मन में नोट करके रख लिया। महाराज जी ने कहा कि "मैं जो तुम्हें दे सकता था सब कुछ दे दिया अब तुम्हें उसका ध्यान रखकर अपना जीवन आगे बढ़ाना चाहिये।" बस गुरू तो इतना ही कर सकते हैं, दीक्षित कर सकते हैं शिक्षित कर सकते हैं। यदि हम उनके आदर्श का अनुसरण करते हैं उनके उपदेशों को आत्मसात करके गुरू की कीर्ति बढ़ाते हैं तो गुरू की कीर्ति बढ़ाना ही गुरू के प्रति सबसे बड़ी कृतज्ञता है। गुरू की आज्ञा में चलकर गुरूओं का आज्ञानुवर्ती बने रहना ही गुरूओं के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करना है। यदि हमें किसी गुरू का समागम मिला है, तो हमें हमेशा उनकी आज्ञा का अनुसरण करना चाहिये। उनके चरणों का दास बनकर रहना चाहिए, उनकी आज्ञा के आगे अपना सिर कटवाने को भी तैयार रहना चाहिए।

गुरू को सिर पर राखिये चलिए आज्ञा माहि
कहत कबीर ता दाश को तीन लोक भय नाहि।।

गुरू को तो सिर पर रखने की बात है। "शीश दिये जो गुरू मिले तो भी सस्तो जान" गुरूओं के प्रति कृतज्ञता की बात हमारे यहां कही गयी है। तीनों के प्रति जब कृतज्ञता होती है तो हमारे जीवन का विकास होता है। जो व्यक्ति कृतज्ञ होते हैं वह अपने जीवन में सब के साथ मित्रता और प्रेम को स्थापित करते हैं और अकृतज्ञ व्यक्ति की कभी मैत्री नहीं होती।

भारतेंदु हरिश्चंद्र का एक प्रसंग सुनाकर मैं अपनी बात पूरी कर रहा हूँ। भारतेंदु हरिश्चंद्र बड़े दानशील थे। खूब ज्यादा दान करते थे, दान देते-देते वे एकदम विपन्नता से घिर गये। उनकी स्थिति इतनी खराब हो गयी कि वे अपने मित्रों के पत्रों के जबाव भी नहीं दे पा रहे थे क्योंकि लिफाफा में टिकिट चाहिये थे। एक दिन उनके एक मित्र पहुंचे। उन्होंने देखा कि उनकी टेबिल पर बहुत सारी चिट्ठियां रखी हैं पर पोस्ट नहीं हो सकीं। उन्हें बात समझते देर नहीं लगी। उन्होंने पाँच का नोट निकाला टिकिट मँगवाये और सब पर लगाकर उन्हें पोस्ट करवा दिया। भारतेंदु हरिश्चंद इससे बहुत प्रभावित हुए। यह बहुत बड़ा उपकार था उनके लिये। कुछ दिन बाद उनका समय बदला, वह सम्पन्न हो गये। उसके

बाद उनका मित्र जब कभी भी उनके पास आता तो वो पाँच का नोट निकाल कर उनकी जेब में डाल देते। इस पर उनका मित्र कहता भैया यह आप क्या कर रहे हो? भारतेंदु जी बोलते हैं। आपने एक बार मुझे पाँच रूपया दिया था इसीलिए ये मैं आपको चुका रहा हूँ। दो तीन बार जब आये वो बैठे नहीं कि पाँच का नोट निकाल कर उसे दे दें। एक दिन उनके मित्र से रहा नहीं गया। वो बोले भैया आप यह क्या कर रहे हो? मैंने आपको एक बार पाँच रूपया दिया आपने एक बार चुका दिया। यदि आप बार बार ऐसा करोगे तो मुझे आना बंद करना पड़ेगा। हरिश्चंद्र जी ने जो जबाव दिया वह बहुत अर्थ पूर्ण है। उन्होंने कहा कि तुमने मुझे जो पाँच रूपया दिया है वह ऐसे आड़े वक्त में दिया है। ऐसी कठिन परिस्थिति में दिया है। वो इतना मूल्यवान है कि मैं जीवनपर्यन्त तुम्हारी जेब में रोज रोज पाँच रूपया भी दूँ तो उसे चुका नहीं सकता। यह कहलाती है कृतज्ञता की दृष्टि। अवसर पर यदि छोटा सा भी उपकार किया जाता है, तो वह बहुत महान होता है। इस महानता को हम समझें अपने उपकारी के उपकार को कभी न भूलें यही हमारे लिये कृतज्ञता का पाठ है।

संयम बिन मा घड़ी इक जाए

आज की बात को मैं भगवान महावीर और उनके प्रिय शिष्य गौतम के संवाद से शुरू करना चाह रहा हूँ। एक बार भगवान महावीर ने गौतम से प्रश्न किया कि "गौतम यदि तुम्हें किसी नटखट घोड़े से सवारी करने को कहा जाए, तो क्या तुम कर लोगे?" गौतम स्वामी ने कहा भगवन् ! मैं कर लूंगा, मुझे कोई दिक्कत नहीं होगी। भगवान ने पूछा कैसे? उन्होंने जबाब दिया इसलिए कि मेरे हाथ में लगाम है। व्यक्ति के हाथ में लगाम हो तो वो नटखट से नटखट, दुष्ट से दुष्ट घोड़े को भी अपने नियंत्रण में रख सकता है। भगवान का जो इशारा था, वो सिर्फ इतना ही था कि यह शरीर एक नटखट घोड़े के समान है और इस शरीर पर सवारी करके अपने अंतिम गंतव्य तक हमें पहुँचना है, हर व्यक्ति नहीं पहुंच सकता। गौतम स्वामी ने कहा प्रभु ! मैं पहुंच जाऊंगा क्योंकि मेरे हाथ में संयम की लगाम है, मेरे हाथ में उन सब पर नियंत्रण रखने की क्षमता है। जो व्यक्ति अपनी वृत्तियों पर नियंत्रण रखने की क्षमता अर्जित कर लेता है, वह अपनी वृत्तियों का परिष्कार कर लेता है, उसकी प्रवृत्ति बदल जाती है। वह स्ववश होता है। धर्म में साधना को बहुत अधिक महत्त्व दिया गया है और साधना का मूल लक्ष्य अपनी वृत्तियों का शोधन है। जब तक मनुष्य अपनी वृत्तियों में बदलाव नहीं लाता, उसके सोच में परिवर्तन नहीं आता, तब तक उसकी प्रवृत्ति भी नहीं बदलती और प्रवृत्ति नहीं बदलती, तो जीवन में कोई परिवर्तन भी दिखाई नहीं पड़ता। इसलिए

कहते हैं कि अपनी वृत्तियों को परिशुद्ध बनाओ। वृत्तियों के परिशोधन के लिए तुम्हें स्वयं पर नियंत्रण रखना जरुरी है।

कैसे करें नियंत्रण? सबसे पहले यह सोचें कि अनियंत्रण कहाँ से आता है? आचार्यों ने कहा है कि असंयम चित्त को अनियंत्रित करता है और असंयम तब आता है जब हम अपनी इंद्रियों को विषयों की ओर दौड़ाते हैं। आसक्ति असंयम को जन्म देती है। कोई भी चीज प्रिय लगी, प्रियता से आकर्षण हुआ, आकर्षण से आसक्ति हुई। आसक्ति हमें हर हद तक पहुँचा सकती है। जिस व्यक्ति के जीवन में जितनी गहन आसक्ति है वह उतना ही बड़ा असंयमी है और जिसने आसक्ति पर जितनी विजय पा ली, वह व्यक्ति उतना ही बड़ा संयमी हैं। इंद्रिय आसक्ति, विषय आसक्ति व्यक्ति पर बहुत अधिक हावी है। पाँच इंद्रिय और मन मनुष्य को मौलिक शक्ति के रूप में प्राप्त हुई है। इन पर यदि नियंत्रण हो तो वह अपने जीवन का विकास कर सकता है। प्रश्न है वृत्तियों के नियंत्रण का, आखिर इन्हें नियंत्रित कैसे किया जाए ? मनुष्य की जितनी भी वृत्तियाँ हैं वे उसके मन से जुड़ी हैं, मन ही इन्द्रिय चेतना के बल पर हमारी वृत्तियों को प्रेरित और प्रवृत्त करता है। उससे ही हमारी प्रवृत्ति बनती है वृत्तियों पर नियंत्रण का अर्थ है अपने मन पर नियंत्रण, मन पर नियंत्रण के लिए इंद्रियों का दमन आवश्यक है। जितेन्द्रिय व्यक्ति ही अपने मन को वश में रख सकता है। इन्द्रिय विषयों की आसक्ति हमारी चेतना को बहिर्मुखी बनाती है, यह बहिर्मुखता ही आकुलता का कारण है। जो व्यक्ति अपनी इन्द्रियों को वश में रखकर वशी बन जाता है उससे अधिक निराकुल इस दुनिया में कोई नहीं है।

इन्द्रियाधीनता आकुलता उत्पन्न करती है वह मनुष्य को मृगमारीचिका की तरह दौड़ाती रहती है। मनुष्य एक-एक इन्द्रिय के विषयों की पूर्ति करने में अपना सारा जीवन बिता देता है, पर इन्द्रियाँ तृप्त नहीं हो पातीं क्योंकि मन को कभी तृप्ति नहीं मिलती। पाँचों इन्द्रियों के विषयों के सेवन के बाद भी मन कभी तृप्त नहीं होता। प्रतिपल उनके अच्छे स्पर्श की चाह, अच्छे स्वाद की चाह, अच्छे गंध की चाह, रूप लावण्य के दर्शन की चाह और मधुर गीत-संगीत के श्रवण की चाह, मनुष्य को पीड़ित करती रहती है। जब तक इन्द्रिय विषयों की चाह है विश्रान्ति नहीं। मनुष्य विषयों के आकर्षण में उन पर मुग्ध होता हुआ, रात-दिन

उनकी चाकरी में लगा रहता है। संत कहते हैं कि इन्द्रियों की चाकरी नहीं, उनके मालिक बनो, अभी तुम इन्द्रियों के दास बने हुए हो, दासता दुखःदायिनी है। दास नहीं स्वामी बनो। जो व्यक्ति इन्द्रियों का स्वामी बन जाता है वह ईश्वरीय सत्ता को अभिव्यक्त कर लेता है। इन्द्रियों को बस में रखकर इन्सान भी ईश्वर बन सकता है। और इन्द्रियाधीनता के कारण ईश्वरोपम इन्सान भी नीचे गिर जाता है।

इन्द्रियों को अपने वश में रखने की आवश्यकता है। हमारा अतीत हमें बताता है कि हम जन्म-जन्म से इन्द्रियों की दासता स्वीकारते आ रहे हैं। विषयों में उलझते रहे हैं विषयों में उलझने में कोई सार्थकता नहीं है।

एक-एक इंद्रिय के दास बनने के कारण अनेक-अनेक जीव जन्म-जन्म में कष्ट पाते हैं। तुम्हारे पास तो पाँचों इंद्रियां हैं जो पाँचों का दास होगा उसकी क्या स्थिति होगी? शास्त्रों में कहा गया है कि स्पर्श इंद्रिय की दासता में हाथी जैसा बलशाली प्राणी भी अपनी जान गँवा देता है।

आपको पता होगा कि हाथी को पकड़ने के लिए कृत्रिम हथिनी तैयार की जाती है और हाथी उस हथिनी के स्पर्शन के मोह में अपना सारा विवेक खो देता है और गढ्ढे में गिर जाता है। संत कहते हैं कि तुम्हें भी जो स्पर्श इंद्रिय मिली है तुम उसके पीछे अपना कितना अनर्थ करते हो। आज मनुष्य के पहनावे में जो कुछ आ रहा है, मनुष्य के ओढ़ने बिछाने के लिए जो सामग्री है वह सब स्पर्श के ही लिए तो है। अपने शरीर को सुख पहुँचाने के लिए कितने जीवों का गला घोंट दिया जाता है कभी विचार किया? चाहे रेशमीं वस्त्र हों, चाहे चमड़े के जूते चप्पल हों, चाहे अन्य कोई चीज हो मनुष्य स्पर्श का सुख पाने के लिए बहुत अधिक अनर्थ कर डालता है। उसका विवेक खत्म हो जाता है। स्पर्श का सुख भोगने वाले व्यक्ति के जीवन का कभी विकास नहीं हो सकता।

एक राजा था, रोज फूलों की सेज पर सोना उसकी आदत थी। एक माली नियुक्त था, वह उसके लिए रोज-रोज ताजे फूलों की सेज बनाता था, राजा आराम से उस पर सोता था। एक दिन माली कुछ जल्दी आ गया सेज बिछाने, उसे लगा कि राजा को अभी विलंब है, राजा इन फूलों पर रोज सोता है, कैसा आनंद आता है, मैं भी थोड़ा सोकर देखूँ। और ऐसा सोचकर वह लेट गया। लेटा

क्या उसकी नींद लग गई। राजा समय पर आया और अपनी शय्या पर उसे सोते हुए देखकर तमतमा गया। उसने सोचा कि असली मजा तो यही लूटता है, मुझे तो बाद में मौका मिलता है। राजा ने क्रोधित होकर उस पर कोड़े बरसाना शुरू कर दिये। जैसे ही कोड़ों की बौछार पड़ी माली के होश उड़ गये। अचानक राजा को सामने देखकर उसने रोने की जगह हँसना शुरू कर दिया। राजा का क्रोध और बढ़ गया। एक तो बद्तमीजी की और ऊपर से हँस रहा है। राजा ने और कोड़े मारे, उसको जितने कोड़े मारें वह उतनी ही जोर से हँसे। राजा मारते-मारते थक गया। उसने पूछा यह बताओ तुम हँस क्यों रहे हो? बोला राजन्! मैं इसलिए हँस रहा हूँ कि मैं पहली बार थोड़ी-सी देर के लिए इस शय्या पर लेटा तो इतने कोड़े खाने पड़े। मैं तो इसलिए हँस रहा हूँ कि तुम्हें कितने कोड़े खाने पड़ेगें। स्पर्श के सुख के पीछे यहाँ नहीं तो कहीं न कहीं कोड़े तो खाने ही पड़ेंगे।

रसना इंद्रिय के लिए कहा जाता है कि मछली रसना इंद्रिय की दास बनकर अपने जीवन को गँवा देती है। मछली को पकड़ने वाले काँटे डालते हैं और कांटो में आटा रहता है, आटे के आकर्षण में मछली आती है और जीवन को काटें में फँसा देती है, वह भूल जाती है कि काँटा आटे से सना है, आटे में कांटा है, आटे का आकर्षण उसे आकर्षित करता है और उसे अपनी जान से हाथ धोना पड़ता है। संत कहते हैं जो रसना इन्द्रिय का दास बनता है उसके साथ भी यही होता है।

तीसरी इन्द्रिय है घ्राण इन्द्रिय-यह इन्द्रिय हमें सुगन्ध की तरफ प्रेरित करती है, इसी के कारण मनुष्य तरह-तरह के सुगन्धित पदार्थों का सेवन करता है। उसके पीछे कितनी ही हिंसा हो जाए वह सोचता नहीं है। भ्रमर गन्ध का लोभी होता है। गन्ध की लोलुपता में वह कमल के मध्य बैठा रहता है, सूर्यास्त होने पर जब कमल संकुचित होने लगता है तो भी वह नहीं उड़ता। वह यह सोचता है कि सुबह कमल फिर से खिलेगा और मैं उड़ जाऊंगा। वह फूल में ही बंद होकर मर जाता है। काष्ठ को छेदने की साम्मर्थ्य रखने वाला भौंरा फूल की कोमल कली को नहीं छेद पाता। इन्द्रियासक्ति क्या नहीं कराती।

चक्षु इन्द्रिय का विषय रूप है। रूप लावण्य के दर्शन का भी एक आकर्षण है। मनुष्य सुन्दर-सुन्दर रूप लावण्य का दर्शन करना चाहता है, अपने सौन्दर्य के

पीछे बहुत कुछ बर्बाद करता है। लेकिन उसके बाद भी तृप्ति नहीं मिलती। जीवन में हताशा और निराशा के अतिरिक्त कुछ भी हाथ नहीं लगता। चक्षु इन्द्रिय की अधीनता के लिए चमरी गाय का उदाहरण मिलता है। चमरी गाय के पूँछ के बाल बड़े सुन्दर होते हैं, उसे उनसे बहुत मोह रहता है। जब कभी वह झाड़ियों के मध्य से गुजरती है, उसके बाल झाड़ियों में फँस जाते हैं। वह इस मोह से कि कहीं बाल टूट न जायें वहीं ठिठक कर खड़ी हो जाती है और शिकारी उसे पकड़ लेते हैं।

श्रोत इन्द्रिय का विषय शब्द है। मनुष्य सुनने का बहुत आदी है। वह अच्छे से अच्छा गीत सुनना चाहता है। इस इन्द्रिय की अधीनता के लिए हिरण का उदाहरण दिया जाता है। हिरण संगीत का बड़ा प्रेमी होता है। कहते हैं कि जब मधुरतम ताल से युक्त संगीत की स्वर लहरियां फूटती हैं तब हिरण यंत्रवत्-कीलित होकर संगीत सुनने लगता है। वह अपनी सुध-बुध खो देता है। इसी बीच शिकारी उसे पकड़ कर बन्धन में डाल देते है। इन्द्रियाधीनता तो आखिर बन्धन का ही कारण है। एक-एक इन्द्रिय की दासता का जब यह परिणाम है तो जो पांचों इन्द्रियों का दास है उसका क्या हाल होगा? आप विचार करें।

अपनी इन्द्रियों पर नियंत्रण रखो, इन्द्रियों पर नियंत्रण रखने के लिए मन पर नियंत्रण रखना जरूरी है क्योंकि जब तक मन तृप्त नहीं होता इन्द्रियां भी तृप्त नहीं हो सकतीं। इंद्रियाँ तो मन की गुलाम हैं। मन जहाँ आर्डर करता है इन्द्रियाँ वहाँ भागती हैं। मन को कभी एक से तृप्ति नहीं होती, मन को जब सुकोमल स्पर्श की इच्छा होती है तो वह इन्द्रियों को भगाता है किसी अच्छे स्पर्श की तरफ जाओ। स्पर्श मिलता है तो मन कहता है इससे काम नहीं चलेगा बढ़िया रस होना चाहिए जाओ कोई रसदार पेय लाओ। रस आ जाता है तो मन कहता है अच्छी गंध भी आनी चाहिए। गन्ध आ गई तो बढ़िया दृश्य भी होना चाहिए। इस तरह जब पाँचों इन्द्रिय के विषय आ जाते हैं तो मन तुलना करता है कि कौन सबसे ज्यादा रस दे रहा है। जिसमें रस मिलता है मन उसमें ज्यादा रस लेने लगता है। जब उसमें भी तृप्त नहीं होता तो दूसरों की ओर भागता है, इस तरह मन भाग-भाग कर पूरे जीवन भर हमें दौड़ाता रहता है। मृगमारीचिका में भटककर मन अशान्त रहता है। इन्द्रिय के विषय भोगों से आज तक हमें शांति नहीं मिली। तुमने विषयों का सेवन तो जन्म-जन्म में किया है पर मिला क्या? आचार्य कुन्द-कुन्द कहते हैं-

सुद परिचिदाणुभुदा सव्वस्सवि काम भोग बन्ध कहा।
एयत्तस्सुवलंभो णवरि ण सुलहो विहत्तस्य।।

तुम्हारे द्वारा काम, भोग और बन्ध की कथाएं जनम-जनम में की गई हैं। जन्म-जन्मान्तरों से तुमने इन्द्रिय विषयों में अपने आपको उलझाया है, तुम्हें मिला क्या? उपलब्धि क्या हुई। कभी विचार किया। आज तक का अनुभव हमें यही बताता है कि इन्द्रिय विषयों से मनुष्य को स्थायी सुख नहीं मिला, वह तो मात्र सुखाभास है, वहां मृगमारीचिका के अतिरिक्त और कुछ नहीं। इस के बाद भी विषयों के आकर्षण में व्यक्ति आकर्षित होता जाता है। संत कहते हैं अपने अनुभव को आधार बनाओ। विषय वासनाओं ने तुम्हारा बहुत अहित किया है जन्म-जन्म से तुम उनकी पुनरावृत्ति करते आये हो उसमें कुछ नयापन नहीं है। एक बार स्कूल में शिक्षक ने छात्रों से कुत्ते पर लेख लिखकर लाने को कहा। सभी छात्र लेख लिखकर लाये। एक छात्र के लेख को देखकर शिक्षक बड़े हैरान हुए, उन्होंने कहा कि "बेटा, लेख तो तुमने बहुत अच्छा लिखा है, लेकिन ऐसा ही लेख पिछले साल तुम्हारे बड़े भाई ने लिखा था। उसमें और इसमें कोई भी अन्तर नहीं है।" छात्र ने जबाब दिया- "सर ! कुत्ता वही है तो लेख दूसरा कहाँ से लिखें ?

यही हो रहा है हम आज तक एक ही कुत्ते पर लेख लिखते आ रहे हैं,वह है पंचेन्द्रिय विषयों का, वह है भोग और विलासिता का। आज तक का यही इतिहास है हर प्राणी ने आहार, निद्रा, भय ओर मैथुन इन चार संज्ञाओं की आतुरता में अपना जीवन गँवाया है। एक बार मनुष्य अपने अतीत के जीवन पर दृष्टिपात कर ले, तो यह विषयासक्ति सहज ही छूट जायेगी।

इन्द्रियाधीनता के कारण मनुष्य की बुद्धि भ्रमित हो जाती है उसकी सोच कुण्ठित हो जाती है, इन्द्रियासक्ति के कारण वह उचित और अनुचित का निर्णय नहीं ले पाता। उसकी स्थिति दास की तरह हो जाती है, जो मन के इशारे पर नाचता रहता है। मैंने एक कविता लिखी थी 'घन चक्कर' मेरी दृष्टि में इन्द्रियों का दास बनकर अपने धर्म और कर्म से भ्रष्ट होना घन चक्कर नहीं तो क्या है?

आदमी के पास है, जीभ
जीभ के साथ है खान-पान व्यंजन का चक्कर
आदमी के पास है नाक, नाक के साथ है
नयी-नयी सुगंध, जैसे इत्र फुलेल चन्दन का चक्कर
आदमी के पास है कान
कान के साथ है मधुर संगीत,
लय-ताल के श्रवण का चक्कर
आदमी के पास है आँख, आँख के साथ है
रूप लावण्य के दर्शन का चक्कर
आदमी के पास शब्द वचन की है शक्ति
कहीं भी कुछ भी बकता है,
बुराई करते करते नहीं थकता है,
वचन के साथ है अथकन का चक्कर
आदमी के पास है मन, मन के साथ है
राग-द्वेष, भोग-विलास, छल-कपट का चक्कर
आदमी के पास जब तक हैं प्राण,
प्राणों के साथ लगा है सघन चक्कर
और इन चक्करों के बीच चकराते चकराते
आदमी का नाम हो गया है 'घन चक्कर'

जो इन्द्रिय विषयों का दास है, वह घन चक्कर नहीं तो और क्या है? बन्धुओ। मानव जीवन घन चक्कर बनने के लिए नहीं अपितु संसार का चक्कर मिटाने के लिए मिला है। इसका सदुपयोग करो। अनेक जन्मों के प्रबल पुण्य और पुरुषार्थ से यह मानव जन्म मिलता है, यह पर्याय फिर से प्राप्त हो या नहीं इसका कोई भरोसा नहीं है। इस जीवन को प्राप्त कर इसे सार्थक बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। हमें यह बात नहीं भूलना चाहिए कि एक मानव जीवन व्यर्थ चला जाए तो पुनः उसका प्राप्त होना अत्यन्त दुर्लभ हो जाता है। अतः ऐसे जन्म को यूं ही गंवा देना मूर्खता का लक्षण है। अतः इससे पहले कि मृत्यु आए हमें अपने जीवन का पूरा-पूरा लाभ उठा लेना चाहिए।

प्रश्न है जीवन का लाभ कैसे उठाएं ? जीवन का लाभ आत्म कल्याण करके उठाया जा सकता है। आत्म कल्याण का मार्ग है त्याग, तपस्या और संयम। जो लोग अपने महान जीवन को पाकर मात्र आमोद-प्रमोद एवं भोग और विलासिता में बिता देते हैं वे अपने जीवन का दुरूपयोग करते हैं। जीवन का ध्येय भोग नहीं योग होना चाहिए। संतों ने मानव जीवन को कड़वी तुम्बी की तरह कहा है। तुम्बी का यदि उपयोग किया जाए तो उसके सहारे नदी और नालों को पार किया जा सकता है। और यदि हम उसका उपभोग करते हैं तो वह फुड प्वाईजन (Poison) बन जाता है। अतः जीवन का उपयोग करो उपभोग नहीं।

शरीर को घोड़े की तरह कहा गया है। घोड़े से दो तरह के लोग जुड़ते हैं, एक रईस और दूसरे सईस। रईस घोड़े की सेवा नहीं उसकी सवारी का आनन्द लेता है, पर सईश रात-दिन घोड़े की चाकरी में लगा रहता है, वह उसको दाना खिलाता है, नहलाता है, धुलाता है, उसके पिस्सु बीनता है पर उसकी सवारी का आनन्द नहीं उठा पाता। संत कहते हैं अनन्त जन्म बीत गये हैं घोड़े की चाकरी करते-करते, सईश का जीवन छोड़ो वास्तविक रईश बनने की कोशिश करो, जीवन की सार्थकता इसी में है।

एक व्यक्ति अपने बचपन के मित्र से मिलने गया। एक लम्बे अन्तराल के बाद वह अपने मित्र से मिलने जा रहा था। रास्ता लम्बा था फिर भी वह अपने घोड़े के सहारे आसानी से पहुँच गया। जैसे ही वह अपने मित्र से मिला दोनों खूब प्रफुल्लित हुए। और उसके साथी ने कहा- "भाई ! तुम तो काफी दूर रहने लगे हो, आज यहां तक कैसे आ गये, रास्ते में कोई कठिनाई तो नहीं हुई।" उसने कहा "नहीं मुझे कोई कठिनाई नहीं हुई, क्योंकि मेरे पास मेरा एक प्राण प्यारा घोड़ा है, उसके सहारे मैं जहाँ जाना चाहता हूँ वह मुझे एक अच्छे साथी की तरह पहुँचा देता है।"

"अच्छा! तब तो वह घोड़ा बहुत महान है। कहाँ है वह घोड़ा"? उसने कहा-"उसे मैं बाहर बांध आया हूँ।"

मित्र ने कहा- "आप यहीं ठहरो, मैं जरा घोड़े के दर्शन करके आता हूँ।" उसने अपने मित्र को कमरे में छोड़कर दरवाजा लगा दिया। और वह घोड़े को देखकर

फूला न समाया। वह घोड़े से लिपट गया। बार-बार दोहराने लगा कि तुमने तो मुझे मेरे मित्र से मिलवाया है, रात दिन वह घोड़े में ही लगा रहता था। उसे नहलाता, धुलाता, दाना खिलाता, पूरे समय उसकी सेवा में डूबा रहता था। तीन दिन बीत गये। घोड़े में इतनी दिलचस्पी देखकर लोगों ने उससे पूछा -"कि भाई क्या बात है, इस घोड़े की इतनी सेवा क्यों कर रहे हो?" उसने जबाब दिया -"ये घोड़ा बहुत महान है, इसने मुझे मेरे मित्र से मिलाया है। इसलिए मैं इसकी सेवा कर रहा हूँ। लोगों ने सोचा जरूर इसका मित्र कोई महान आदमी होगा, तभी तो यह उसके घोड़े की इतनी सेवा कर रहा है।" लोगों ने पूछा कि "भाई जिस मित्र से मिलाने वाले इस घोड़े की तुम इतनी सेवा कर रह हो, उस मित्र के भी तो दर्शन कराओ, कहाँ है वह?" उसने जबाब दिया कि "वह तो तीन दिन से कमरे में बन्द है।" लोगों को उसकी मूर्खता पर हँसी आई उन्होंने कहा कि तुम यहाँ घोड़े की इतनी चाकरी कर रहे हो, जाकर देखो तो सही तीन दिन के भूखे प्यासे तुम्हारे साथी की हालत कैसी है? वह जिन्दा बचा भी है या नहीं।" लोगों के कहने पर उसे अपने मित्र का ख्याल आया। अन्दर जाकर दरवाजा खोला तो उसने देखा कि उसका मित्र बेहोश पड़ा था।

आप को हँसी आ रही होगी उस व्यक्ति की मूर्खता पर। पर बन्धुओं यह हम सबकी कथा है। हम सब शरीर रूपी घोड़े की चाकरी में लगे है, उसकी रात दिन सेवा कर रहे हैं, उसे ही नहाने धुलाने और खिलाने में आनन्द का अनुभव कर रहे हैं। पर आत्मा को भूल चुके हैं। उसका हमें कोई ख्याल ही नहीं है। बन्धुओ शरीर की सेवा त्याग कर आत्मा की उपासना करो, घोड़े की चाकरी नहीं, सवारी का आनन्द लो। यह जीवन बहुत दुर्लभ है, मानवता का यदि हम सही उपयोग करें तो इसके माध्यम से अपनी आत्मा का उद्धार भी कर सकते हैं। कवि ने कहा है-

जगत् जलधि से पार उतरने को अद्भुत नौका है।
मानव भव शाश्वत सुख पाने का अदभुत मौका है
जाग जाग हे ज्योतिपुंज ! यह अवसर बीता जाता।
जो क्षण गया-गया, वापस फिर कभी नहीं आता।।

हमें जागने की आवश्यकता है, अपनी आँख खोलने की जरूरत है। जीवन का कोई भरोसा नहीं है, वह क्षण-क्षण क्षीण हो रहा है। क्षण-क्षण क्षीण होते इस जीवन को सार्थक बनाने में एक क्षण का भी प्रमाद नहीं करना चाहिए। एक कवि ने जीवन को सार्थक बनाने की मधुर प्रेरणा देते हुए कहा है-

जौ लौ देह तेरी कानौ रोग से न घेरी
जौ लौ जरा नाहीं नेरी जासु पराधीन परिहैं
जौ लौ जमनामा बैरी देथ न दमामा
जौ लौ माने कान रामा बुद्धि जाए ना बिगारि है
तौ लौ मित्र मेरे निज कारज सम्हारि ले रे
पौरूष थकेंगे फेरि पिछे काहि करिहैं
आग के लगाय जब झोपड़ि जरनि लागी
कुआं के खुदाय फेरि कौन काम सरिहैं।

कितना प्यारा सम्बोधन है कहते हैं जब तक तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक है, कोई रोग नहीं है, बुढ़ापा पास नहीं आता, जब तक बुद्धि विकृत नहीं होती और जब तक मृत्यु दूर है तब तक अपने आत्म हित का उद्यम कर लो, क्योंकि जब शरीर में सत्व नहीं बचेगा, काया क्षीण हो चुकेगी, फिर तुम क्या कर सकोगे ? जब तुम्हारा पौरुष ही मन्द पड़ जायेगा तो फिर तुम क्या पुरुषार्थ करोगे। अंत में कहते हैं कि आग लगने के बाद कुआं खुदवाने से काम नहीं चलेगा। अतः आग लगने से पहले कुआं खोदकर तैयार रखो ताकि आग लगने पर कोई परेशानी न हो। आग कभी भी लग सकती है। क्या जाने कब शार्ट सर्किट हो और आग लग जाये।

जब सभी तार अपनी-अपनी लाईन में रहते हैं तो शार्ट सर्किट नहीं होता। शार्ट सर्किट तभी होता है जब एक तार दूसरे तार से टकराता है। जीवन में शार्ट सर्किट होना यानि अपनी धारा का उल्लंघन करना जो अपनी धारा का उल्लंघन करते है, जो अपने जीवन के मर्यादित पक्ष की उपेक्षा करके इधर-उधर जाते हैं, उनके जीवन में शार्ट सर्किट होती है। जिनके जीवन के तार में संयम की केबिल लगी हुई है कवच लगा हुआ है उनके जीवन में कभी शार्ट सर्किट नहीं होता। शार्ट सर्किट नहीं होता तो कभी आग नहीं लगती, आग नहीं लगती तो कभी कुआं

खोदकर पानी की जरूरत नहीं पड़ती। अपनी केबिल को ठीक रखने की जरूरत है यदि कहीं गड़बड़ है तो कम से कम टेप तो चिपका लो। सन्त कहते हैं ये जो छोटे-छोटे नियम हैं यह और कुछ नहीं, कहीं कोई फाल्ट है तो उस पर टेप है। एक-एक टेप लगाकर के आप अपने आप को ठीक कर सकते हो। यदि उपेक्षा करोगे तो उस आग से कोई बचा नहीं सकता, वह आग कभी भी लग सकती है और जन्म-जन्म से इस काया की झोपड़ी में आग लगी है, वह असंयम की आग है, उस आग को बुझाने का हमने कितना भी पुरुषार्थ किया कभी कुछ हमारे काम में नहीं आया, इसलिए कहते हैं कि संयम को अपनाओ ***"संयम बिन मा घड़ी इक जाए"*** तुम्हारी एक घड़ी भी असंयम के साथ न जाए, एक-एक क्षण संयम के साथ बीतें, तुम अपने जीवन में जितना अधिक संयम और सदाचार लाओगे, तुम्हारा जीवन उतना ही मूल्यवान बनता जाएगा, तुम्हारे जीवन का उतना ही अधिक विकास होता जावेगा, पर क्या बताऊँ अन्त-अन्त में भी व्यक्ति की आसक्ति नहीं छूटती है।

एक सन्त ने बड़ी अच्छी प्रेरणा दी है। वह वृद्धावस्था का चित्रण करते हुए कहते हैं कि तुम्हारी सारी स्थितियां क्षीण होती जा रही हैं, फिर भी तुम्हारी आसक्ति नहीं घट रही है, आश्चर्य है-

> ***वपुः कुब्जी भूतं गति-रपि च तया यष्टिशरणा***
> ***विशीर्णा दन्तालि श्रवण विकलं श्रोत्र युगलं***
> ***शिरः शुक्लः चक्षुः तिमिर पटलैरावृतमहो***
> ***मनो ते निर्लज्ज तदपि विषयेषु स्पृहयति।।***

वृद्धावस्था के कारण तुम्हारा शरीर कुबड़ा होता जा रहा है कमर झुक गई है, अब तुम्हारी चाल भी लाठी के आश्रित हो गयी है, दांतों की पँक्ति बाहर आ गई है; मुँह से लार बहता है, कान सुनने से जबाब दे रहे हैं, सिर के बाल सफेद हो गये हैं, आँखों के सामने अँधेरा छाने लगा है। पूरा शरीर क्षीण हो गया है, यूँ कहें कि कब्र पर पैर लटके हैं, फिर भी तुम्हारा यह मन विषयों की आकांक्षा करता है। कितना निर्लज्ज है। एक बार मेरे पास अस्सी वर्ष के वृद्ध बाबाजी आए उन्होंने मुझसे कहा कि महाराज अब हम भी ब्रह्मचर्य का अभ्यास कर रहे हैं। ऐसे व्यक्ति

को क्या कहें? आसक्ति यही होती है वह मनुष्य की आयु और अवस्था नहीं देखती। आसक्ति के समक्ष आयु का कोई बन्धन नहीं एक अल्प उम्र का युवक भी निस्पृह हो सकता है। और अधिक उम्र के वृद्ध में भी अधिक आसक्ति हो सकती है। यह आसक्ति ही हमें असंयम की ओर आकर्षित करती है। अतः हमें आसक्ति पर नियंत्रण लाने की कोशिश करना चाहिए। जितना भी बन सके अपनी वृत्तियों पर नियंत्रण रखते हुए संयम धारण करने की कोशिश करें, छोटे-छोटे व्रत नियम भी हमारे भाग्योद्धार में बहुत सहायक हैं। आचार्यों ने कहा है- ***"भवस्य सारं किलव्रत धारणं"*** -इस भव का सार व्रताचारण है, उसी से हम अपनी आत्मा का उद्धार कर सकते हैं। सभी जन अपने एक-एक क्षण को संयम के साथ व्यतीत कर अपनी आत्मा का उद्धार कर सकें इसी शुभ भावना के साथ अपनी वाणी को यहीं विराम देते हैं।

बोओगे सो काटोगे

एक व्यक्ति ने बबूल का पेड़ लगाया, वह रात दिन उसके रख रखाव में लगा रहता पूरा समय उसके विकास में लगाता, लोग उसकी इस प्रवृत्ति को देखकर हँसते। एक दिन एक व्यक्ति ने उससे कहा कि भाई तुम इस बबूल के कटीले पेड़ के लिए इतना श्रम क्यों कर रहे हो? उसने जबाब दिया "तुम्हें क्या पता थोड़े दिन रूको इसमें बहुत मीठे-मीठे आम लगने वाले हैं।" वह आदमी उसकी बात को सुनकर हँसकर रह गया। बबूल के पेड़ को कितना भी सींचा जाए उसमें आम के फल नहीं लग सकते। हमारे यहाँ बहुत पहले कहा गया है "जैसा बोओगे वैसा काटोगे" बबूंल के बीज बोकर आम के फल खाने की सोचना हमारी नादानी है। जो व्यक्ति जैसा बोता है वैसा ही उसे खाने को मिलता है। जैसी करनी वैसी भरनी की उक्ति हमारे देश में बहुत पुरानी है। अंग्रेजी में भी कहावत है "As you sow, so you reap" जैसा बोओगे वैसा काटोगे। मनुष्य जैसी प्रवृत्ति करता है वैसा ही उसका जीवंन बनता है।

आचार्यों ने जीवन के गंभीर रहस्यों को अनावृत करते हुए कहा कि प्रत्येक प्राणी के पास तीन मूलभूत शक्तियाँ हैं वह हैं मन, वचन और कर्म यानि शरीर। इन तीनों शक्तियों पर ही हमारा जीवन निर्भर करता है। हमारे जीवन का विकास और विनाश इन पर आधारित है। जैन दर्शन के अनुसार मन, वचन और काया रूप इन तीन शक्तियों के कारण हमारी आत्मा में एक विशेष प्रकार का परिस्पन्दन

होता है। इस परिस्पन्दन के कारण कर्म के परमाणु हमारी आत्मा से जुड़ जाते हैं। जैसे कर्म के संस्कार जुड़ते हैं वैसी प्रवृत्ति बनती है। जैसी प्रवृत्ति होती है वैसा जीवन बनता है। हमारा जो व्यक्तित्व है वह हमारे कृत्य का ही परिणाम है। मनुष्य का जीवन उसके आचरण का प्रतिबिम्ब है।

प्रवृत्ति शुभ और अशुभ दोनों प्रकार की होती है। शुभ प्रवृत्ति हमारे जीवन के शुभ का कारण बनती है। अशुभ प्रवृत्ति से जीवन का पतन होता है। शुभ प्रवृत्ति पुण्य का सेतु है, अशुभ प्रवृत्ति से पाप बंधता है। यह क्रम चौबीस घंटे चलता है। एक क्षण भी ऐसा नहीं है जिसमें कर्म का बन्ध नहीं होता है। प्रवृत्ति के अनुरूप कर्म बंधते हैं और बंधन के अनुरूप उनका फल मिलता है। कर्म बंध का संबंध टेपरिकार्ड की तरह है। जैसे टेपरिकार्ड के सामने हम जो कुछ भी बोलते हैं, वह उसमें अंकित हो जाता है। हम गीत गाते हैं गीत अंकित होता है, कोई गाली दे तो गाली भरेगी, भले ही केसिट में कुछ दिखाई नहीं पड़ता पर सुनाई अवश्य पड़ता है। जब कभी भी हम उसे प्ले करते हैं तो वही बजता है जो उसमें भरा है। उसी प्रकार जैसी हमारी प्रवृत्ति होती है वैसे कर्म के संस्कार हमारी आत्मा में अंकित हो जाते हैं। शुभ प्रवृत्ति से शुभ कर्म आते हैं और अशुभ प्रवृत्ति से अशुभ कर्म बंधते हैं। जैसे कर्म बंधते हैं वैसा फल मिलता है। बाहर के टेप में तो फिर भी एक सुविधा है आगे पीछे करने की। तुम्हें जो अच्छा लगता है उसे तुम बार-बार सुन सकते हो और जो अच्छा नहीं लगता आगे बढ़ा सकते हो, उसे खाली भी कर सकते हो। पर भीतर के टेप की व्यवस्था बिल्कुल भिन्न है। इसमें तो जो और जितना भरा है उसे भोगना ही पड़ेगा। वहाँ तुम्हारी इच्छा नहीं चलेगी। जैसा किया है उसे भोगना ही पड़ेगा। इसे दुनिया की कोई शक्ति रोक नहीं सकती। गीत हैं तो गीत के स्वर सुनाई देंगे, गाली है तो गाली सुनने को बाध्य होना पड़ेगा। तुम्हारा जीवन तुम्हारे ही आचरण का प्रतिबिम्ब बनकर उभरेगा।

यह एक व्यवस्था है, मनुष्य एक क्षण में जो कर्म बाँधता है उसे अनेक जन्मों में भोगने के लिए बाध्य होना पड़ता है। कर्म बाँधतें वक्त मनुष्य यह नहीं समझता। पर जब उसका परिणाम सामने आता है तो पछताता है। मनुष्य अपने लिए सब प्रकार की अनुकूलता चाहता है, पर जिससे अनुकूलतायें मिलती हैं उस मार्ग को नहीं अपनाता। मनुष्य पुण्य के उदय में अच्छा शरीर पाता है, अच्छी

बुद्धि पाता है, समृद्धि पाता है, रूप पाता है, और अन्य प्रतिष्ठा, यश-कीर्ति आदि जो उपलब्ध करता है वह उसके पुण्य का फल है। पाप के कारण जीवन में दरिद्रता, विद्रूपता, विकलांगता, रोग और अन्य तरह-तरह के विकार और असुविधायें मनुष्य को प्राप्त होती हैं। जितनी भी विपन्नता और विसंगतियां हैं सब पाप के कारण हैं। हम दुनिया में नजर दौड़ाकर देखें, हमें पाप और पुण्य का चित्र दिखाई पड़ेगा।

किसी व्यक्ति के पास सब कुछ है अच्छा शरीर, रूप, संपन्नता, बुद्धि और अच्छे संस्कार हैं, किसी के पास कुछ भी नहीं। कुछ मनुष्य आप लोगों को ऐसे भी देखने को मिलेंगे जिनके पैदा होते ही माँ बाप का साया उठ गया और जिनके हाथ पैर काट दिये गये और रोज सड़कों पर भीख माँगने के लिए मजबूर किया जा रहा है। वह भी मनुष्य हैं, आप भी मनुष्य हैं। हम सब मनुष्य हैं जो अपना काम कर रहे हैं। ऐसे भी मनुष्य देखने को मिलेंगे कि आदमी होकर भी पशुओं का काम कर रहे हैं, कभी कलकत्ता जाओ तो देखने को मिलेगा कि वे पशुओं की तरह इक्के में जुते हुए हैं। एक मनुष्य उस इक्के पर सवार है, एक मनुष्य उसे खींच रहा है। सोचने की जरूरत है यह किसका फल है ? यह अपने-अपने कर्मों का फल है, यदि हमें सब कुछ अनुकूल प्राप्त हुआ है तो यह हमारे पुण्य का फल है और यदि किसी को प्रतिकूल उपलब्ध हुआ है तो वह भी उसके अपने कृत्य का फल है। कुरल काव्य में बहुत अच्छी बात कही कि **"तुम कहारों को देखो जो किसी को अपने कांधे पर बिठाकर ले जा रहे हैं, और उन्हें देखो जो इन कांधों पर बैठकर जा रहा है, इसे देखकर तुम धर्म की महिमा समझ लो।"**

एक आदमी कहार बनकर ढो रहा है और दूसरा उस पर सवार होकर चला जा रहा है। कैसी विडम्बना है? अतः पाप और पुण्य के इस रहस्य को समझो और अपने जीवन को पाप से बचाने का प्रयत्न करो।

संसार में जितने भी व्यक्ति हैं, कोई भी पाप का फल नहीं चाहता। हर व्यक्ति यह जानता है कि पाप का फल नरक है। नरक जाना कोई भी पसन्द नहीं करता। नरक की बात स्वप्न में भी नहीं सोचता। शायद इसलिए मृत्यु के उपरान्त व्यक्ति के नाम के आगे स्वर्गीय जोड़ा जाता है। एक भी आदमी के आगे कभी

नारकीय नहीं जोड़ा? बताओ! क्या सभी के सभी स्वर्ग ही जाते हैं ? नहीं जाते हैं, पर जाना जरूर चाहते हैं। चाहने मात्र से क्या होगा? एक आचार्य ने बड़ी उद्‌बोधक बात लिखी है-

पुण्यस्य फल इच्छन्ति पुण्यं नेच्छन्ति मानवः।
फलं पापस्य नेच्छन्ति पापं कुर्वन्ति यत्नतः।।

मनुष्य पुण्य के फल को तो चाहता है, पर पुण्य करना नहीं चाहता। पाप का फल नहीं चाहता लेकिन रात दिन पाप में लगा रहता है। यह कैसी विडम्बना है। यह तो ***"पुण्य की चाह और पाप की राह"*** वाली बात है। पाप के बीज़ बोकर कोई भी पुण्य की फसल नहीं काट सकता। व्यक्ति इस बात को अच्छी तरह जानता है पर मानता नहीं है। वह हमेशा पाप का काम करता है और पुण्य के गीत गाता है। पाप का काम और पुण्य का नाम कभी भी हमारे जीवन का उद्धार नहीं कर सकता।

"एक बार पुण्य और पाप दोनों एक दूसरे से मिले। दोनों में एक दूसरे से श्रेष्ठता की चर्चा चल पड़ी। पुण्य और पाप दोनों अपने आप को दूसरे से श्रेष्ठ कह रहे थे। बात विवाद में बदल गई। पुण्य ने पाप से कहा कि तुम इतने नीच हो, लोग तुम्हारा नाम लेना भी अच्छा नहीं मानते, फिर भी तुम अपने आप को मुझसे महान कहते हो ? देखो जगत् में मेरी कितनी प्रतिष्ठा है। सारी दुनिया मुझे चाहती है।" पाप ने कहा दुनिया भले ही तुम्हें चाहती है पर साथ किसका देती है ? दुनिया चाहती तुम्हें है पर साथ मेरा देती है, चाहते पुण्य को हैं पर करते पाप हैं। पाप की राह चलने वाले अपने जीवन को कभी सुखी नहीं बना सकते, इसलिए आचार्य कहते हैं कि पाप की राह पर मत चलो क्योंकि तुम्हारे द्वारा किया गया एक क्षण का पाप जन्म-जन्म की दासता का कारण बनता है।

आचार्यों ने कहा है ***"ना भुक्तंक्षीयते कर्मः"*** तुमने अगर कोई पाप किया है तो बिना भोगे वह नष्ट नहीं होता। कहावत है ***"पाप और पारा कभी पचता नहीं।"*** आदमी पाप करके दुनिया की आँखों में धूल झोंक सकता है। पर कर्म की आँख में कभी धूल नहीं झोंक सकता। हो सकता है दुनिया के कानून में कोई

अपराधी सजा से बच जाये और निरपराध फँस जाय क्योंकि आज का कानून अँधा कानून है। दुनिया के अँधे कानून में पाप करके आदमी बच सकता है पर कुदरत के कानून में कोई बच नहीं सकता। कुदरत का कानून अँधा नहीं है। वहाँ तो मनुष्य जैसा करता है उसे वैसा फल मिलता है। तुम्हारा कानून तो सिर्फ तुम्हारे अपराध को पकड़ता है पर कुदरत का कानून पाप को पकड़ता है। पाप और अपराध में बड़ा अंतर है। अपराध वह है जो बाहर दिखाई पड़ता है और पाप वह है जो मन में उत्पन्न होता है। कानून में यदि काय से (शरीर से) कोई पाप कर ले तो दंड की व्यवस्था है। वाणी से दुर्व्यवहार कर लें तो उसके लिए भी कानून है, पर मन में जो पाप होता है उसके लिए कोई कानून नहीं है। पर कुदरत का कानून ऐसा कानून है कि मन में भी कोई भाव उत्पन्न होते हैं तो उसका परिणाम उसे मिलता है। कुदरत के कानून में कोई छल नहीं चलता, कोई बल नहीं चलता वहाँ रिश्वत, घूस, आरजू, मिन्नत की कोई गुंजाइश नहीं होती। सामान्य व्यक्ति की बात तो दूर है तीर्थंकर जैसी हैसियत के भगवान आदिनाथ के जीव को भी उनके कर्म ने नहीं छोड़ा। किसी जन्म में उनने कोई कर्म बाँधा उस कर्म के कारण तीर्थंकर जैसी हैसियत पाने के बाद भी छह माह तक आहार से वंचित रहे। यही तो पाप का फल है। व्यक्ति यदि इन सभी आख्यानों को गंभीरता से समझने की कोशिश करे तो उसकी आँख खुल सकती है। आदिनाथ भगवान के जीव ने कभी पूर्व पर्याय में किसी बैल के मुँह में कुछ देर के लिए मूसिका बाँधी थी, ऐसा अंतराय बँध गया कि छह महीने तक उन्हें आहार उपलब्ध नहीं हो सका। सीताजी के वर्तमान जीवन को देखकर हम सबको उनके प्रति कितनी संवेदना और सहानुभूति होती है पर उनके अतीत में झाँको। आज यदि सीता के साथ कुछ हुआ तो उसके पीछे कोई और कारण नहीं वह उनके अपने पूर्वकृत पाप का ही परिणम था। किसी निर्ग्रंथ, निर्दोष मुनि पर उन्होंने लांछन लगाया था उसका परिणाम यह निकला कि खुद निर्दोष रहने के बाद भी वह लांछित हो गई। एक क्षण का पाप कई-कई जन्मों में भोगना पड़ता है।

आप ***"श्रीपाल चारित्र"*** को पलटकर देख लो। श्रीपाल ने अपने जीवन में जितने प्रकार के पाप किये (सिनेमा की रील की तरह)..चलचित्र की तरह सब

उसके जीवन में झलकने लगे। हर बार जब-जब श्रीपाल ने पाप किया पाप बाँधा बाद में कहीं से सत्प्रेरणा मिली तो उसने पश्चाताप किया। पाप को घटा लिया पर नष्ट नहीं कर सका। हमने जो अर्जित किया है एक बार तो भोगना ही पड़ेगा। वह पूरी तरह से कट नहीं सकता बगैर भोगे। यदि तुम अपने आप को बचाना चाहते हो तो ऐसे कृत्य से बचो कि ऐसा कुछ हो ही नहीं। मनुष्य अपनी प्रवृति के समय यदि सावधान रहे तो पाप से हमेशा-हमेशा के लिए बच सकता है। वह प्रवृत्ति में सावधान नहीं रहता परिणाम में परेशान जरूर होता है। प्रत्येक प्रवृत्ति यदि विचारपूर्वक होगी तो परिणाम में विचरना नहीं पड़ेगा। कहा जाता है ***"जो विचार करके करता है वह शूर है और जो करके विचारता है वह धूर है।"*** यानि करने के पहले जो व्यक्ति विचारता है वह बहुत बुद्धिमान है। वह कभी ऐसा कार्य नहीं करता जिससे उसका जीवन गर्त में जाए, जो उसके जीवन का अहित करे। लेकिन जो बिना विचारे करते हैं उन्हें जीवन भर विचारना पड़ता हैं। इसलिए आचार्य कहते हैं अपनी करनी को सुधार लो। अगर अपने जीवन में कड़वाहट रखोगे तो तुम्हारा प्रत्येक अनुभव कड़वाहट भरा होगा। अगर अनुभव में मिठास लाना चाहते हो तो अपने आचरण में मिठास लाओ। पाकिस्तान की एक घटना है, बड़ी लोमहर्षक घटना है।

एक मांसाहारी मुस्लिम परिवार था। परिवार प्रमुख रोज एक मुर्गे को हलाल करता था। मुर्गा चीखता और वह अट्ठहास भरता। उसके तीन अबोध बच्चे थे। बड़ा करीब ४ वर्ष का था, दूसरा ढाई वर्ष का और तीसरा गोद का बच्चा था। उसके बच्चे इन कृत्यों को देखते तो उन्हें ऐसा लगता कि पिता कोई खेल खेलते हैं और पिता को उसमें बड़ा आनंद आता है। एक दिन पिता किसी काम से कहीं बाहर गये। घर में मुर्गा नहीं आया, बच्चों ने सोचा आज पिताजी नहीं हैं चलो अपन भी यह खेल खेलें। बड़े बेटे ने छोटे को लिटाया, लिटाकर एक पैर से उसे दबाया एक हाथ से सिर दबाया, और उसके गले को छुरे से रेत दिया। जैसे ही रेता, बच्चा चीख पड़ा। वह चीखा तो इसके भी होश उड़ गये यह सीधा भागकर ऊपर गया। चीख की आवाज सुनी तो माँ उपने छोटे बेटे को नहला रही थी, वह उसे वहीं छोड़कर ऊपर भागी, बेटे ने देखा माँ आ रही है मुझे मारेगी, उसने

अपना संतुलन खो दिया और छत से गिरकर अपनी जान दे दी। इधर वह बेटा भी मर चुका था उसके गले की नस कट चुकी थी। माँ दोनों बेटों का हाल देखकर वहीं मूर्छित होकर गिर गई। काफी देर बाद उसे होश आया तो याद आया कि मैं तो अपने छोटे बेटे को टब में नहलाते हुए छोड़कर आई थी। तब तक काफी समय गुजर चुका था, जब वह नींचे आई तो उसका गोद का बालक टब में ही शांत हो चुका था। ये है पाप का कहर। आदमी पाप करता है तो उसका परिणाम उसे भुगतना पड़ता है। ये बात अखबारों में छपी। मनुष्य इन सब चीजों को देखता है पर कभी इनसे भय नहीं खाता।

आचार्य कहते हैं भय खाने की कोशिश करो जब तुम भय खाओगे तभी पाप से बच सकोगे। दो तरह के लोग होते हैं कुछ लोग ऐसे होते हैं जो पाप करके भयभीत होते हैं, कुछ पाप से भयभीत होते हैं। आजकल पाप करके भय खाने वाले लोगों की संख्या ज्यादा है, पाप से भय खाने वालों की अपेक्षा। आचार्य कहते हैं पाप से भय खाओगे तो तुम्हारे अदंर दया और करूणा उत्पन्न होगी। पाप करके भय खाना तो कायरता है, पाप से भय खाओं तुम्हारा जीवन सुधरेगा, तुम्हारी आत्मा का उद्धार होगा। एक आचार्य ने तीन प्रकार की वृत्ति बताई, अलग-अलग वृत्ति के लोग होते हैं, लिखा है

पापं समाचरति वीत घृणो जघन्यः
प्राप्यापंदं सघृण एव हि मन्द बुद्धि।
प्राणात्ययेपि न हि साधुजनः स्ववृत्तं
बेलां समुद्र इव लंघयितुं समर्थः।।

पाप करने के बाद भी जिन के मन में पाप के प्रति किसी प्रकार की घृणा या संकोच नहीं होता वे लोग जघन्य हैं। ऐसे लोग बेधड़क पाप करते रहते हैं, इनके जीवन से पाप छूट नहीं सकता। जो पाप को पाप मानने को ही तैयार नहीं उनके जीवन से पाप छूट कैसे सकता है। जैसे कसाईखानों में जो पशुओं को काटा जाता है उनको ज्यादा पैसा नहीं मिलते, मात्र १५-२० रूपये में एक-एक पशु को हलाल किया जाता है। पर वह उन्हें ऐसे काटते हैं जैसे गाजर मूली छील रहे हों, उनके मन में पाप के प्रति कोई घृणा नहीं होती, उनके मन में पाप के प्रति कोई

पश्चाताप नहीं होता। वह नहीं समझते कि इस पाप का हमें क्या परिणाम मिलने वाला है। ऐसे जघन्य कृत्य करने वाले लोग मनुष्य होते हुए भी मानवता पर कलंक होते हैं।

दूसरी प्रकृति के वे लोग होते हैं जो पाप करते नहीं है पाप करना पड़ता है, विवश होकर पाप करते हैं। जैसे किसी गृहस्थ को गृहस्थी चलाना है, गृहस्थी में पाप करता है। पाप वह करता नहीं उसे करना पड़ता है। पाप उसकी विवशता है। ऐसे लोग पाप करने के बाद सदा अपराध के बोध से भरे रहते हैं। ऐसे लोग पाप से बहुत जल्दी ही मुक्त हो सकते हैं। ये मध्यम श्रेणी के लोग हैं। इसीलिए आचार्यों ने कहा कि एक-सा पाप करने के बाद भी सबको परिणाम एक-सा नहीं मिलता। पाप के साथ जैसी भावना जुड़ी रहती है, वैसा परिणाम मिलता है। एक व्यक्ति बिना भय के अगर पाप करता है तो उसको जो बंध होता है बहुत तीव्र होता है। लेकिन पाप के साथ यदि पश्चाताप जुड़ा रहता है, मंद कषाय होती है, तो जो बंध होता है वह मंद होता है वह पाप बहुत जल्दी धुल जाता है।

उत्तम पुरुष तो साधु जन की तरह होते हैं कि ***"प्राण जाए पर प्रण न जाए"*** अपने चारित्र से स्खलित नहीं होते। जैसे समुद्र के अंदर उत्ताल तरंगें उठती रहती हैं फिर भी समुद्र अपने तट की सीमाओं को नहीं छोड़ता। उसी प्रकार जो उत्तम पुरुष होते हैं, उनके अंदर आवेग संवेग की कितनी ही लहरें क्यों न उत्पन्न हो जाएँ वे अपनी मर्यादा का कभी उल्लघंन नहीं होने देते। ऐसे पुरुष अपने जीवन का विकास करते हैं। ऐसे व्यक्ति के जीवन में कभी पाप विकसित नहीं हो पाता, हम कम से कम पाप से घृणा करने की कोशिश करें, जब तक पाप से घृणा नहीं होती जब तक पाप से भय नहीं होता, तब तक वह छूटता नहीं है। कहते हैं ***"भय बिन प्रीत न होय गुँसाई"*** जब तक पाप से भीति नहीं होती तब तक प्रभु से प्रीति नहीं होती। आचार्यश्री ने एक दिन बड़ी अच्छी बात कही

"पाप से भीति हुए बिना प्रभु से प्रीति नहीं होती, प्रभु से प्रीति बिन स्वयं की प्रतीति नहीं होती।"

पाप से भीति रखो, तुम ये सोचो कि मैं पाप कर रहा हूँ इसके परिणाम

से मैं बच नहीं सकता। दुनिया की निगाहों से बचा जा सकता है पर पाप से नहीं क्योंकि पाप तो तुम्हारी परछाईं की तरह तुम्हारा पीछा करने वाला है। जैसे तुम्हारी परछाईं हमेशा तुम्हारे साथ चलती है वैसा ही तुम्हारा पाप भी तुम्हारे साथ चलने वाला है। उसे कोई रोक नहीं सकता। इसलिए सावधान रहो, ये समझो कि मेरी परछाईं मेरा पीछा कर रही है, परछाईं से भागने की कोशिश मत करो। जब तक भागोगे, तब तक परछाईं तुम्हारे पीछे भागेगी। परछाईं से बचना चाहते हो तो अपनी पीठ मोड़ लो परछाईं भाग जायेगी। पाप से घबड़ाने से काम नहीं होगा, पाप की क्रियायें छोड़ने से काम होगा।

पाप से बचने के तीन दृष्टिकोण हो सकते– इहलोक भय, परलोक भय, और आत्मभय। इहलोक भय शरीर का भय, समाज का भय और राष्ट्र भय, ये भय आदमी को अपराध से रोकते हैं। मैं पाप करूंगा मेरा स्वास्थ्य न बिगड़ जाए, पाप के फल से मेरे हाथ पैर न टूट जाएँ। समाज में लोग क्या कहेंगे? मेरी पोजीशन खराब होगी, जाति से बहिष्कृत कर दिया जाऊँगा, समाज से बाहर कर दिया जाऊँगा, मेरी प्रतिष्ठा मेरा सम्मान नष्ट हो जाएगा, लोगों को मैं कैसे मुँह दिखाऊंगा। मैं ये अपराध करूँगा जेल में चला जाऊँगा, राष्ट्रद्रोही घोषित कर दिया जाऊँगा, लंबी सजा काटनी पड़ेगी ये राष्ट्र भय है। ये तीनों भय व्यक्ति को अपराध से रोकते हैं। पाप से बचने के लिए इस तरह का भय आदमी के दिल दिमाग में बैठा रहना चाहिए। आचार्य उमास्वामी ने एक सूत्र दिया,

"हिंसादिस्विहामुत्रापायावद्य दर्शनम्।
दुःखमेव वा।।"

अगर तुम पाप से बचना चाहते हो तो मानों इन पाँचों द्वारा इहलोक और परलोक में हमेशा अकीर्ति, अपमान और कष्ट भोगने पड़ते हैं। ये पाप, पाप ही नहीं दुख भी हैं, तभी तुम पाप से बच सकोगे। शरीर का भय, समाज का भय और राष्ट्र का भय यह इहलोक भय है, इहलोक भय से भी व्यक्ति पाप से बचता है।

परलोक भंय क्या है-पाप करूँगा तो नर्क में जाना पड़ेगा, सुना है वहाँ कढ़ाई में डाला जाता है, भारी यंत्रणायें भोगना पड़ती हैं, बड़ा कष्ट होता है, यह

परलोक भय है। परलोक भय भी व्यक्ति को पाप करने से रोकता है। तीसरा है आत्म भय जो बहुत ऊँचा है और यह होना ही चाहिए मैं पाप करूँगा तो मेरे चित्त में कलुषता बढ़ेगी, विकृति बढ़ेगी, मेरी आत्मा का भार बढ़ेगा। मैं पाप करूँगा तो आत्मा के संस्कार बिगड़ेंगे, मेरी आत्मा कलंकित होगी। मैं पाप करूँगा तो आत्मा पाप के बोझ से दब जाएगी। इस बोध का नाम है आत्म भय और जिसे यह आत्म भय जागृत हो जाता है, वह व्यक्ति पाप कर ही नहीं सकता। श्रीमद् रायचंद्रजी हुए, गृहस्थ होने के बाद भी वो बहुत बड़े साधक थे। वह कहा करते थे मनुष्य को तीन बातें हमेशा याद रखना चाहिए (१) काल सिर पर सवार है (२) कदम-कदम पर पाप लगता है (३) आँख खोलते ही जहर चढ़ता है।

बड़ी गहरी भावनाएँ छुपी हुई हैं इसमें। अगर आदमी इन तीन बातों का हमेशा ध्यान रखे तो अनर्थ से बच सकता है। कभी भी हमारी मृत्यु हो सकती है। एक-एक कदम पर हमसे पाप होता है, प्रत्येक कदम गर्त में ले जाने वाला है। और विषयों की तरफ तुमने देखा कि उनका विष व्याप्त हो गया। विषयों की आसक्ति से बचना चाहते हो तो यह समझो कि उनमें जहर है, भले ही जहर मीठा हो पर जहर तो जहर ही होता है। ऐसा भय जागृत हो जाए तो आसक्ति नहीं होती आसक्ति से बचने के लिए भी भय चाहिए। तभी पाप की परिणति छूटेगी।

भरत चक्रवर्ती बहुत बड़े चक्रवर्ती थे, छह खंड का आधिपत्य था उनके पास उनके लिए सुबह-सुबह जब उठाया जाता था तो घंटा बजता था। घंटों की नाद के साथ यह कहा जाता था वर्धते भयं,वर्धते भयं, वर्धते-भयं भय बढ़ता है, भय बढ़ता है, भय बढ़ता है। किसका भय बढ़ रहा है चक्रवर्ती को? मृत्यु का भय, पाप का भय, बढ़ रहा है। जो इस बोध के साथ अपनी आंखें खोलेगा उसका जीवन कितना मंगलकारी होगा। आचार्य कहते हैं कि जब सुबह उठो तो प्रभु से यह प्रार्थना करो कि हे भगवान आज के दिन मुझसे ऐसा कोई दुष्कृत न हो, जो मेरी आत्मा को कलंकित करने वाला हो। हे भगवान मेरी बुद्धि को इतना नियंत्रित रखना कि जितना भी बन सके मैं अच्छा ही कर सकूँ। इस भाव से जब व्यक्ति उठेगा तो पूरा दिन उसका अच्छा बीतेगा। रात में जब सोने को जाओ तो भगवान को धन्यवाद दो कि प्रभु आप की कृपा से आज का दिन अच्छा निकल गया, रात
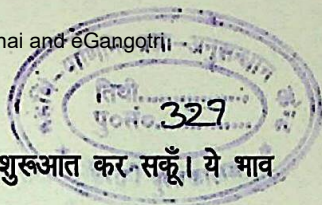
भी अच्छी निकले ताकि कल की सुबह की अच्छी शुरूआत कर सकूँ। ये भाव व्यक्ति के मन में होना चाहिए।

भरत चक्रवर्ती के पास एक बार एक जिज्ञासु पहुँचा। उसे इस बात में संदेह था कि भरत चक्रवर्ती हैं ६६ हज़ार रानियाँ हैं। फिर भी इतना बड़ा तत्त्वज्ञ और सम्यग्दृष्टि कैसे ? वह चक्रवर्ती के पास पहुँचा और कहा कि "प्रभु ! मैं आपके जीवन का रहस्य जानना चाहता हूँ। मैं एक से परेशान हूँ आप ६६ हजार को कैसे संभालते हैं? फिर भी निस्पृह और अनासक्त कैसे बने हो ? चक्रवर्ती ने सुना और कहा तुम्हारी बात का जबाब मैं बाद में दूँगा, पहले एक काम करो मेरे रनिवास में घूम आओ और देखो वहाँ क्या-क्या है। एक बार देख लो फिर मैं बताऊंगा कि मेरे जीवन का रहस्य क्या है। वह बड़ा प्रसन्न हुआ कि आज चक्रवर्ती के रनिवास में घूमने का मौका मिलने वाला है। जैसे ही वह जाने को हुआ तो चक्रवर्ती ने कहा सुनो ऐसे नहीं, उसके हाथ में एक दीप पकड़वाया गया। और कहा इस दीपक के प्रकाश में तुम्हें पूरे रनिवास का चक्कर लगाकर आना है, पर एक शर्त है, ये चार तलवारधारी तुम्हारे चारों ओर हैं। रास्ते में न तो दीपक बुझना चाहिए, न ही एक बूँद तेल गिरना चाहिए। यदि दीपक बुझा तो तुम्हारे जीवन का दीपक बुझ जायेगा और तेल गिरा तो तुम्हारी गर्दन भी नीचे गिर जायेगी। उसने सोचा फँस गये अब तो। बड़ी गडबड़ी है। पर क्या किया जाए चक्रवर्ती के साथ उलझा था कोई मार्ग नहीं था। बड़ी सावधानी के साथ वह पूरे रनिवास का चक्कर लगाकर आया और जैसे ही चक्रवर्ती के पास पहुँचा, इससे पहले कि वह कुछ कहे, चक्रवर्ती ने पूछा बताओ तुमने क्या-क्या देखा ? उसने कहा महाराज तलवार और दीपक के अलावा और कुछ नहीं देखा। तो चक्रवर्ती ने कहा कि "यही है मेरे जीवन का रहस्य। तुम्हें ये भोग और विलास दिखते हैं मुझे अपनी मौत की तलवार दिखती है।" यदि मौत की तलवार देखते रहोगे तो जीवन में कभी अनर्थ घटित नहीं होगा। हर व्यक्ति को ऐसी प्रतीति करना चाहिए, हर व्यक्ति को अपने अंदर ऐसा विवेक जागृत करना चाहिए, ऐसा बोध हमारे अदंर प्रकट होता है तभी पाप से अपने आप छुटकारा मिल सकता है।

अंत में मैं सिर्फ इतना ही कहना चाहता हूँ कि बड़ी दुलर्भता से यह मानव

पर्याय मिली है, इसे पाकर कुछ सुकर्म करें क्योंकि हमें अपने ही कर्मों का फल यहाँ भोगना पड़ता है। करनी का फल बड़ा विचित्र होता है मीठा भी लगता है, कड़वा भी लगता है, कड़वा बोने वाले को कड़वा खाना पड़ता है मीठा बोने वाले को मीठा खाने मिलता है। इसलिए आचार्य कहते हैं पाप से अपने आप को बचाने की कोशिश करो, क्योंकि पाप हमारी आत्मा का पतन कराता है। पाप वही है जो ***"पाय यति आत्मनं इति पापम्"*** जो आत्मा का पतन करा दे वह पाप है, या जो आत्मा के पुण्य का शोषण करे वह पाप है। हमारे सारे पुण्य भावों का शोषण कराने वाला पाप है, हमारी आत्मा के चादर को मलिन बनाने वाला यह पाप है। जन्म-जन्म तक हम पाप के दास बने, इससे हमारी आत्मा पर मल चढ़ता रहा। एक बार हम अपने विवेक को जागृत करने की कोशिश करें, एक बार सही समझ विकसित करें और पाप से बचने की कोशिश करें। इसी शुभ भावना के साथ अपनी वाणी को विराम देते हैं।
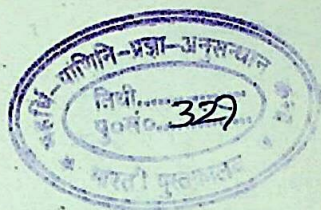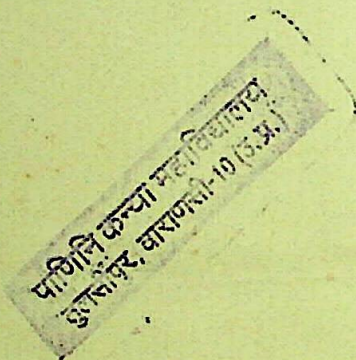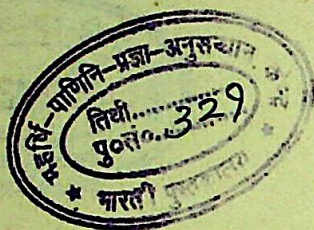
१०८ मुनि श्री प्रमाणसागर जी

जन्म - २७ जून १९६७

वैराग्य - ०४ मार्च १९८४

मुनि दी[illegible] - ३१ मार्च १९८८

[illegible]म - नवीन कुमार जैन

पिता - श्री सुरेन्द्र कुमार जैन

माता - श्रीमती सोहनी देवी

कृतियां

- जैन धर्म और दर्शन
- जैन सिद्धान्त शिक्षण
- अन्तस् की आँखें (प्रवचन संग्रह)

बिहार प्रान्त के हजारीबाग शहर में जन्में मुनि श्री
सागर जी, संत शिरोमणी आचार्य श्री विद्यासाग
महाराज के प्रमुख शिष्यों में से एक हैं। अल्पवय में ही अन्तंर्यात्रा की ओर उन्मुख होने वाले मुनि श्री साधना-संयम और सृजन के सशक्त हस्ताक्षर हैं। आपका चिन्तन और अभिव्यक्ति कौशल हजारों-हजार श्रोताओं को मंत्र मुग्ध कर भाव-विभोर कर देता है। धारा प्रवाह प्रवचन में शब्द सौष्ठव एवं प्रस्तुतिकरण की मोहकता मधुवन में बांसुरी की भांति प्रभावी है। आप हिन्दी, संस्कृत-प्राकृत, एवं अंग्रेजी के अधिकारी विद्वान के रुप में बहु आदरित हैं। अध्ययन प्रियत्ता आपका पथ, संयम आपकी शैली एवं साधना आपकी गुण धर्मिता है। आप आगम के गूढ़तम ज्ञाता, जिनवाणी के प्रखर प्रस्तोता हैं। आपकी बहु प्रशंसित कृति 'जैन धर्म और दर्शन' विचार अध्यात्म व चिन्तन जगत् में अनूठे अनुदान की भांति सर्वमान्य है। जैनागम के गूढ़ तत्त्वों की सहज-सरल-सुबोध प्रस्तुति इस कृति का अनुपम वैशिष्ट्य है। 'जैन सिद्धान्त शिक्षण' आपके तत्त्वान्वेषी मानसिकता का स्पष्ट प्रमाण है।